तीर्थंकर

विचार मासिक

सद्विचार की वर्णमाला में
सदाचार का प्रवर्तन

वर्ष ३, अक १२ अप्रैल १९७४
वीर निर्वाण सवत् २५००
वैशाख २०३१

सपादन डॉ नमीचन्द जैन
प्रबन्ध प्रेमचन्द जैन
सज्जा सतोष जडिया
सयोजन बाबूलाल पाटोदी

वार्षिक	दस रुपये
विदेशो मे	अठारह रुपये
एक अक	एक रुपया
प्रस्तुत अक	पाँच रुपये

☐

इस अक का मुद्रण
नई दुनिया प्रेस, इन्दौर

☐

प्रकाशक
हीरा-भैया-प्रकाशन,
१४, भोपाल कम्पाउण्ड,
सरवटे बस-स्टेशन के सामने,
इन्दौर ४५२००१, म. प्र

एक कला-समीकरण

तीर्थंकर के सज्जाकार श्री सतोष जडिया से जब यह कहा गया कि उन्हें मुनिश्री विद्यानन्द-विशेषाक के लिए आवरण तैयार करना है तब उन्होंने एक ही अहम सवाल किया जैन मुनि या मुनिश्री विद्यानन्द ?' मैं जडिया के कला-मर्म को पहिचान गया। उनकी आँखो ने मुनिश्री विद्यानन्दजी मे जैन मुनि के साधारणीकरण के ही दर्शन किये थे। वे मुनिश्री म तीर्थंकर की वीतरागता, जिसका न तो बैल चिह्न है और न ही बन्दर, अपितु जो सामान्य है जिसमे भेद-विज्ञान तो है किन्तु भेदक कुछ भी नही है, ही देख सके। उन्होंने एक समीकरण प्रस्तुत किया मुनिश्री विद्यानन्द=मोक्ष-मार्ग अर्थात् रत्नत्रय+शिलाखण्ड+मुनित्व के सामान्य प्रतीक पिच्छी और कमण्डलु, और इन सबको परम्परित रगो के सयोजन मे बाध दिया। इस तरह सपूर्ण आकृति आकार होने के साथ ही निराकार भी है, वह सामान्य मुनित्व की परिदर्शिका होने के साथ ही मुनिश्री विद्यानन्दजी के व्यक्तित्व की, उनकी आधी सदी की विचार एव साधना-यात्रा की प्रतिनिधि भी है। हिमालय से लेकर मैदानो तक हुए उनके मगल विहारो की प्रतिच्छाया तो वहाँ है ही, साथ ही पुद्गल से आत्मतत्त्व के विखण्डन की साधना भी इन रगो और आकारो मे प्रकट हुई है। सम्यक्त्व का त्रिक भी अपने समग्र वैभव के साथ शीर्ष पर स्थापित है। जैन सिद्धान्तो का इतना सूक्ष्म अकन, जो मोक्षमार्ग के सपूर्ण माध्यमो को व्यक्त करता हो, इस तरह कही और देखने को नहीं मिलता। रग और रेखाओ के कलश मे जैन तत्त्वदर्शन को जिस कौशल के साथ यहाँ सजोया गया है, वह स्मरणीय है। —सपादक

क्या/कहाँ

विद्यानन्द-खण्ड (७-१२२)

महावीर-खण्ड (१२३-१७०)

जैनधर्म-खण्ड (१७१-२२४)

सालगिरह : एक गुलदस्ते की

मुनिश्री विद्यानन्दजी का पच्चासवा वर्ष सपन्न करना और इक्यावनवें वर्ष मे पग रखना एक लोकमगलकारी प्रसग तो है ही, मानवता के लिए शुभ शकुन भी है। उनका आधी शताब्दी का यह जीवन एक समर्पित व्यक्तित्व का वैविध्य से भरा जीवन है। उनकी बाल्यावस्था से लेकर अबतक के जीवन की प्रमुख घटनाओ की समीक्षा जब हम करते है तब लगता है जैसे वे केवल जैनो के ही नही देश की शताब्दियो मे विकसित आध्यात्मिक मान्यताओं के जीवन्त इतिहास हैं। उनकी अबतक की विचार-यात्रा का हर पडाव लोकजीवन को कोई-न-कोई दिशा देने के लिए प्रकाशस्तम्भ बनकर प्रकट हुआ है, उसका सबल बना है। उनके विभिन्न नगरो मे हुए प्रवचनो ने भारत की अन्तरात्मा को जगाया है और लोकजीवन को प्रबुद्ध किया है। गौर से नजर डालने पर हम देखते हैं कि मुनिश्री का अबतक का जीवन मात्र व्यक्तिगत उठान पर केन्द्रित नही है अपितु एक समरस आध्यात्मिक साधना के साथ ही अनासक्ति और अपरिग्रह की उत्तम प्रयोगशाला भी सिद्ध हुआ है। ज्ञान को लेकर भी उन्होंने ग्रन्थीय और स्वानुभविक प्रयोग किये हैं। निर्ग्रन्थ होकर ग्रन्थो का जो अभीक्ष्ण पारायण उन्होंने किया है और परम्परा की जो युक्तियुक्त व्याख्याएं की है उनसे अन्धविश्वासो की नीव हिली है और आदमी को प्रखर मनोबल प्राप्त हुआ है। भारतीयता को जो नयी वितति मुनिश्री के उदार चिन्तन से प्राप्त हुई है, उसे राष्ट्र का इतिहास कभी भूल नही पायेगा।

सत्रस्त लोकजीवन और सुलगती समस्याओ के बीच मुनिश्री की यह सालगिरह कई दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। इन सुनहले क्षणो मे हमे मुनिश्री के जीवन-तथ्यो और उनके विचार-मन्थन को गौर से देखना चाहिये। उनकी अनैकान्तिनी मुद्रा निश्चय ही हमे कई समाधान दे सकती है और कई कठिनाइयो के बीच भी किसी आसान राह को हम पा सकते हैं।

मुनिश्री की कुछ आस्थाएँ है जो उन्हे लीक-लीक चलने वाले मुनियो से अलग करती है। वे दिगम्बर परम हस हैं, अनासक्त, अपरिगृहीत। उन्हे ससार से चाहिये ही कितना ? बिन्दु-सा आदान और सिन्धु-सा प्रदान उनकी जीवन-सन्तति है। अजलि लेना और दरिया देना उनकी रोजमर्रा की चर्या है। यही कारण है कि इस उदारचेता सन्त के माध्यम से शताब्दियो से पक रहा विश्वधर्म आज पूरी समर्थता से आकार ग्रहण करना चाहता है। उनके द्वारा उद्घोषित विश्वधर्म नया नही है शाश्वत है। धर्म के पास नया कभी कुछ होता ही नही, जो होता है सनातन होता है। किसी भी वस्तु का नया होना कई खतरो से घिरा है, जिनमे से एक है उसका पुराना होना। यही वजह है कि मुनिश्री के सारे प्रवर्तन "उत्पादव्ययध्रौव्य' के सूत्र-चत्र पर चढ़े हुए हैं, न नये, न गये, सदैव, सनातन एक-जैसे। उनकी तत्त्वदृष्टि का मर्म यही है, यही है। एक गहरी निर्ग्रन्थता और आकिंचन्य उनकी हर सास मे बुने हुए है। इस निर्लिप्तता के साथ गहरे-गहन सामाजिक

वात्सल्य का निर्वाह लोगो को आश्चर्य मे डाल देता है, किन्तु जो सघन वत्सलता और करुणा मनिश्री के आचरण मे दिखायी देती है वह उनके भीतरी अँवे मे पक रही निर्ममता की ही परिणति है। ममत्व का शन्य पर पहुँचना ही उसका अधिक प्रगाढ और विस्तृत होना है। मनिश्री की ममता एक नये आयाम पर आकर विश्व-वात्सल्य मे आकृत हुई है। अपार करुणा के कारण ही अब उनका अपना जीवन उनका अपना कहाँ है वह तो सपूण विश्व म व्याप्त जीवन जैसा कुछ हा गया है। हिमालय पर चढकर जिसने सपूण भारत और विश्व के भाग्य विधान को देखा हो उसके विश्वव्यापी होने की स्थिति को हम किसी कोशिश पर नकार नही सकते।

जैनाचार्यो और मुनियो की परम्परा मे मुनिश्री विद्यानन्द की ओर जब हम देखते है ता एसा लगता है मानो इस महामुनि की जीवन-यात्रा म सारे आचाय उपाध्याय और मुनि समवत प्रतिच्छायित हुए हैं। मनिश्री यदि मात्र जैना के ही हो तो हम उनकी चर्चा करना भी पसन्द न कर किन्तु वे अपने जीवन चिन्तन मे जैन होने मे पूव अत्यन्त मानवीय है और इसीलिए भिन्न भी है। ऐसे कई उदाहरण है जब कोई मुनि तो है किन्तु मानवीय नही है एसे म मुनित्व की पराजय है। जब मुक्ति क लिए मानवत्व अवश्यम्भावी है ता मुनित्व क लिए तो वह है ही। विद्यानन्दत्व की महत्ता इसम है कि वह अपनी चर्या और विचार यात्रा मे केवल जैन नही है सपूण भारतीयता के समवत पुज है। १९७० ई म मनिश्री ने हिमालय की जो पद यात्रा की और सास्कृतिक समन्वय की जिस गगात्री को उन्मुक्त किया वह अविस्मरणीय है। उसने वतमान युवापीढी को मानव के चान्द्र तल-आरोहण स भी अधिक प्रभावित किया है। विस्मयकारी यह है कि मुनिश्री कभी यह देख ही नही पात कि उनका सन्निधि मे जा बैठा है वह जैन है हरिजन है खतिहर है श्रमिक है प्राध्यापक है या कुलपति है। उनकी दृष्टि इतनी पारगामी है कि वह हर आदमी म बैठ आदमी को देख लेती है और वही पहचकर उसे प्रभावित करती है। वह तलाशन ही यह है कि जो पास बैठा है वह क्या चाहता है उसकी मानवीय ऊर्जा कितनी है और उस मानवता के कल्याण म कितना मोडा जा सकता है इसीलिए उनकी दृष्टि म भेद विज्ञान तो निवास करता है भेद नही ठहरता जैनधम म भी भेदविज्ञान का महत्त्व है भेद महत्त्वहीन है। मनि विद्यानन्द परम जैन श्रमण है हर तरह स फकीर यानी निग्रन्थ। उनकी वैश्विक दृष्टि मुसलमान हिन्दू सिक्ख ईसाई और पारसी म कोई फक नही कर पाती। उनकी विचार-यात्रा सप्रदायातीत है सकीणताओ को अतिक्रान्त करती अत्यन्त पावन।

उनकी विचार-यात्रा की प्रमख विशषता यह है कि वे विकास की महत्ता को स्वीकार करते है। उन्हे जडता और प्रमाद अस्वीकार है। वे किसी एक स्थिति का जिसका विकास सभव है सजर नही कर पाते इसीलिए विकास को वे धम मानते है और हर अस्तित्व को पुरश्चरण की प्ररणा देत रहते है। वे अनुक्षण ऊर्ध्वग है अत जीवन की उदात्त ऊध्वगामी शक्तियो म उनकी गहन आस्था है। समय के एक-एक क्षण और समय (आत्मा) के एक-एक ऊर्जाकण का व उसकी सपूणता मे उपयोग करना चाहते है यही कारण है कि उन्हे वे लोग बिलकुल नापसन्द है जो समय के मल्य को नही समझते और जिन्हे समय की शक्तियो की पहिचान नही है। व समय की सही पकड को विकास की आत्मा मानते हैं

और उसका उसकी समग्र ऊर्जस्विता मे इस्तेमाल करना चाहते हैं । प्रवचन में उनका विश्वास है, भाषण में नही, वे अपना कहा हुआ जीवन में ज्यों-का-त्यो घटित देखना चाहते हैं, यानी जो घटा चुकते हैं उसे ही वाणी पर लाते हैं । उनकी अनैकान्तिनी वाणी मे भारत की विगत ढाई हजार वर्षों की चिन्तन-यात्रा की एक सार-पूर्ण झलक दिखायी देती है । उनके प्रवचनो मे होने वाली भीड़ें उल्लेखनीय हैं, कोई भी वक्ता इतनी बडी भीड को पाकर उन्मादी हो सकता है, किन्तु मुनिश्री की वाग्मिता इसलिए महत्त्व की है कि वह भीड मे भी उन्हें अकेला रखती है और अकेले मे भी समुदाय के बीच रख सकती है । वे वाग्मी-निर्लिप्त-निष्काम सन्त हैं । दिगम्बरत्व की यही तो विशेषता है कि वह एकान्त मे भी अनेकान्त की आराधना कर सकता है और अनेकान्त मे भी एकान्त का अनुभव कर सकता है । वह बह्वर्थवादी होता है, किन्तु किसी एक अर्थ, या मुद्दे पर रुक जाने को वह सार्थक नही मानता । मुनिश्री शब्द की अपेक्षा उसके अर्थ और सदर्भ पर ध्यान रखते हैं, इसीलिए "एकान्त" "भीड" "अनेकान्त" इत्यादि सारे शब्द उन्हे दिक्कत मे नही डाल पाते । भला जो शब्द को परेशानी मे डाल सकता हो, उसे शब्द परेशानी मे कैसे डाल सकते हैं ? गहरी पैठ होने के कारण मुनिश्री हर स्थिति को अपने अनुरूप और हर स्थिति मे यदि आवश्यक हुआ तो उसके अनुरूप होने-ढलने की क्षमता रखते हैं । उनकी वैचारिक सहिष्णुता उदाहरणीय है ।

एक अजीब बात है । यह जानते हुए भी कि विद्यानन्दजी जैन मुनि हैं सभी सम्प्रदाय वर्ग और पेशे के लोग उनसे पूरी उन्मुक्तता के साथ मिलते है और जी-खोलकर विचार-विमर्श करते हैं । मुनिश्री भी प्राय सबसे बिना किसी भेदभाव के स्थित्यतीत होकर मिलते है । यह नही कि उनसे मिलने या उनके दर्शन करने कोई एक प्रदेश या भाषा आती हो प्राय सारा भूगोल और सस्कृतियाँ उनके दर्शनार्थ पहुँचती हैं । इसके पीछे उनके व्यक्तित्व का यही चुम्बक काम करता है कि वे रूढ या परम्परावादी नही हैं, स्वाभाविक हैं और हर आदमी को स्वाभाविक होने की सलाह देते हैं । स्वभाव ही धर्म है । इस वाक्य को मुनिश्री के जीवन मे चरितार्थ देखा जा सकता है ।

मुनिश्री की इस इक्यावनवी सालगिरह को हम एक गुलदस्ते की सालगिरह कह सकते है । वे गुल नही है, एक सम्मोहक गुलदस्ते है रगबिरगे फूलो के स्तवक । अनेकान्त और गुलदस्ते मे कोई फर्क नही है । दोनो वैविध्य को मानते है और उसे एक ही बन्धन मे समेटने की क्षमता रखते है । जिस तरह एक गुलदस्ता कई महकीले-सुरभीले रगो और आकृतियो के फूलो को एक साथ लेकर अपने व्यक्तित्व की रचना करने मे समर्थ है ठीक वही स्थिति मुनिश्री की है, वे वैविध्य की पर्याय-सत्ता को मानते हैं और अपनी अनैकान्तिनी प्रतिभा से उसे समायोजित रखते हैं । वे कई परस्पर-विरोधी शक्तियो और दृष्टिकोणो के समायोजन है, इसलिए हमने उनकी सालगिरह को एक स्तवक की वर्षग्रन्थि का सबोधन दिया है ।

हो सकता है कुछ लोगो को ऐसा लगे कि मुनिश्री विद्यानन्द सबको प्रसन्न रखने के लिए हर हमेश किसी फारमूले की खोज मे रहते है , और उनका विश्वधर्म इसी तरह का कोई फार्मूला हो । यह उन लोगो का भ्रम है । सचाई यह है कि आप चाहे जो कीजिये, सब लोग प्रसन्न कभी हो ही नही सकते, और फिर मुनिश्री को ऐसी कौन-सी गरज है जो वे दुनिया-भर के धर्मों को इकट्ठा करके अलग से कोई खिचडी पकाये । वे तो इस बात के उज्ज्वलतम प्रतीक है कि जब हम दुराग्रह से विरक्त हो जाते हैं और अपनी स्वाभाविक ऊर्जा मे श्वास लेने लगते है तो जो धर्म करवट लेकर सामने आता है, वही विश्वधर्म है । विश्वधर्म कोई सम्मिश्रण नही है, वह समझौता भी नही है । वह 'कुछ इससे, और कुछ उससे' की परि-

णति भी नही है वस्तुत वह आत्मा की निर्मल अवस्था का ही उद्रेक है । यदि आप स्वभाव मे आ जाएँ तो ऐसी स्थिति मे आत्मा का जो विकिरण (रेडिएशन) होगा वही विश्वधर्म की आधार भूमियाँ तैयार करेगा ।

मुनिश्री जिस परम्परा की सन्तति हैं उसमे अन्धविश्वासो और आडम्बरो के लिए कोई स्थान नही है । वहाँ जो जिया गया है वही कहा गया है और आगे चलकर वही पूरी तरह उपलब्ध भी हुआ है । इस परम्परा मे सिद्धान्त के साथ जीना ही महोपलब्धि है । आज जो अराजकता छायी हुई है वह सिद्धान्त के साथ न जीने के कारण है यानी सिद्धान्त है किन्तु उसके साथ जीने की कोई स्थिति नही है । वस्तुत विधायक के लिए आज सिद्धान्त है ही नही जब विधान या शास्त्र की यह अपगावस्था थी तब महावीर उठे थे और उन्होने शास्त्रकारो को इस द्वैत के लिए ललकारा था अत आत्मक्रान्ति ही मूल मे समाज क्रान्ति है इस मम की खोज ही मुनिश्री की इक्यावनवी सालगिरह है ।

मुनिश्री का जीवन सूरज की तरह का निष्काम और तेजोमय जीवन है । व दृष्टा है दृष्टि है वे देखते हैं और अन्यो को समग्रता मे सामने खडी स्थिति को देखा जा सके इतना माज देते है । सूरज उष काल से सायकाल तक अरुक यात्रा करता है । वह अपनी किरण अगुलियो से छूता भर है किन्तु यदि आप उसकी इस छुहन से अस्पृष्ट रह जाते हैं तो वह रोष नही करता वह तो निष्काम अपनी राह निकल जाता है । ए से मे भी उसके मन मे न कोई आकुलता होती है और न काई रोष इसके विपरीत होता है दुगना उत्साह । इसी तरह धरती पर अरुक चलते रहना मुनिश्री का काम है । व अपनी तीथयात्रा पर अविराम चल रहे हैं अधरे को अस्वीकारते और उजले की अगवानी करते । जीवन के मध्याह्न म आज उनकी प्रखरता बराबर बढती जाती है । उनकी कामना है कि लोग आगे आय और प्रकाश को झलने के लिए अपना व्यक्तित्व बनाय । मुनिश्री प्रकाश पर न्योछावर व्यक्ति है उनका सारा जीवन आत्मानुसन्धान पर समर्पित है । व जा भी लोककल्याण करते हैं या उनसे होता है वह छाछ-मात्र है उनकी अखट-अविराम साधना की असली नवनीत तो उनका आत्ममन्थन है जो लगभग उन तक ही सीमित है । हमे जो मिलता है वह मठा है नवनीत जो उनके पास है जो हम मिल सकता है अक्सर शब्दातीत ही होता है । इसलिए आज हम जो उनका उदग्रीव पग देखरहे हैं इक्यावनव वष की ओर वह उनकी आत्मकल्याण-साधना का ही एक निष्काम अध्याय है ।

विश्वधम मनिश्री विद्यानन्दजी का कोई पृथक प्रतिपादन नही है । वह भारतीय परम्परा म सदिया से आकार ग्रहण कर रहे विश्व-कल्याण का नव्यतम सस्करण है । तीथकरो न जिन तथ्यो को प्राणिमात्र की हितकामना स जो उनक आत्मकल्याण की ऊर्जा का एक भाग थी प्रकट किया था विश्वधम उसी का रूपान्तर है । अत इन स्वर्णिम क्षणा म हम चाहग कि मुनिश्री के विश्वधम को उसकी सपूण गहराइयो मे तलाशा जाए ताकि हम उसकी सूक्ष्मताओ को जान सक । यदि हम थोडा प्रयास कर तो पायगे कि यह विश्वधम महावीर का प्राणतन्त्र ही है । महावीर ने तीर्थकरो की परम्परा म चलकर प्राण मात्र का सम्मान करने की बात कही थी व जनतन्त्र नही प्राणतन्त्र के प्रतिपादक थे उस प्राणतन्त्र के जिसकी नीव मे करुणा अपनी सपूर्ण प्रखरता के साथ धडक रही है । मुनिश्री का ५१ व वष मे प्रवश इसी प्राणतन्त्र की वर्षग्रन्थि है । चूँकि यह तन्त्र अमर है अनन्त है अत विद्यानन्दत्व भी उतना ही अमर है अनादि है अनन्त है । हम आत्मदीप की इस अकम्प अखण्ड लौ को प्रणाम करत है ।। □ □

ऐसे थे सुरेन्द्र

लोगो ने प्रश्न पूछ, समझाने-बुझाने की अनगिन कोशिशे की, रोकने के असफल प्रयत्न किये, लेकिन उगते सूरज को भला कौन रोकता ?

—वासुदेव अनन्त मांगळे

मुनि विद्यानन्दजी के नाम से विख्यात महात्मा का जन्म २२ अप्रैल १९२५ के दिन कर्नाटक के शेडवाल नामक एक छोटे-से गाँव मे हुआ था। माता-पिता ने प्यार से बालक का नाम सुरेन्द्र रखा । आज सुरेन्द्र नाम का वह बालक देवताओ का सिरमौर सुरेन्द्र ही नही मानवो का सिरमौर मानवेन्द्र बन गया है।

शेडवाल मे पाँच सौ वर्ष पुराने जिन-मन्दिर के प्रमुख पुजारी श्री आण्णाप्पा उपाध्ये सुरेन्द्र के बाबा थे। उनके दो पुत्र श्री भरमप्पा और श्री कालप्पा शेडवाल गाँव की पुरानी पर हवा और रोशनीदार हवेली मे रहते थे। सारा गाँव श्री आण्णप्पा और उनके दोनो पुत्रो की विद्वत्ता और मृदु व्यवहार का कायल था। सुरेन्द्र की माता सौभाग्यवती सरस्वतीदेवी सुशील स्नेहमयी और अतिथि-सत्कार करने वाली थी। ऐसे सात्विक, सदाचारी और सुसस्कृत माता-पिता का और ऐसे सुरुचिपूर्ण वातावरण का प्रभाव बालक पर पडना ही था।

सुरेन्द्र बचपन से ही सबकी आँखो के तारे थे। उनका व्यक्तित्व बरबस ही सबको आकर्षित कर लेता था। नाना-नानी, दादा-दादी सभी उन पर लाड बरसाते थे। उनको

डाँटने की किसी की इच्छा ही नहीं होती थी। कुछ हद तक इसी लाड-प्यार मे आरंभिक पढाई की शुरूआत भी देर से हुई। पिताजी के स्थानान्तर से भी कुछ कठिनाइयाँ आयी।

पढाई तो एक दिन शुरू होनी ही थी। सुरेन्द्र का पहला विद्यालय था दानबाड ग्राम का मराठी प्राथमिक विद्यालय। गाँव मे अधिकतर लोग जैन थे। पुजारी होने के नाते परिवार का निवास मन्दिर में ही था और मन्दिर सदा साधु-सतो का केन्द्र बना रहता था। बालक सुरेन्द्र पर भी उस वातावरण का प्रभाव पडा। धर्म-सभा कथा-पुराण, भजन-कीर्तन सदा ही होते। बालक सुरेन्द्र संगीत मे रुचि लेने लगे।

सुरेन्द्र ५-६ वर्ष के होंगे तभी की यह बात है। चातुर्मास मे एक दिगम्बर मुनि मन्दिर मे ठहरे थे। सुरेन्द्र सदा उनके पास रहते और सेवा का अवसर ढूढते। मुनिजी के लिए गरम पानी ले जाते। इतने छोटे बालक की इतनी लगन देखकर मुनिजी उन्हे आशीर्वाद देते और बड़े स्नेह से उन्हे पिच्छि से छूते। पिच्छि से सुरेन्द्र को यो भी बडा प्रेम था। सदा पिच्छि के रंगीन पख निहारते और देर तक उसे हाथ मे लिये रहते। माँ कहती, "इसके हाथ मे पिच्छि ही है।" कितने सही थे वे शब्द!!

पिताश्री कालप्पा को सदा यही चिन्ता सालती रहती कि बार-बार तबादलो से बालक सुरेन्द्र की पढाई का नुकसान न हो, अत उन्होने शेडवाल गाव म सरकारी कानडी विद्यालय मे बालक को भरती करवा दिया। मराठी विद्यालय से कानडी विद्यालय मे आने के कारण सुरेन्द्र का मन उसमे नही लगा। खेलने का शौक तो था ही खिलाडी साथी भी मिल गये। डाँटने वाला कोई था नही इसलिए पढाई-लिखाई की बजाय घूमने-फिरने म ही समय बीतने लगा। आखिर एक दिन इसका समाधान ढूँढना ही था और वह हुआ श्री शान्तिसागर छात्रावास म सुरेन्द्र का प्रवेश!

शेडवाल के 'शान्तिसागर छात्रावास मे पढाई का माध्यम मराठी होने के कारण सुरेन्द्र का मन वहाँ लग गया। दस वर्ष के सुरेन्द्र आश्रम के कार्यक्रमो मे रुचि-पूर्वक भाग लेने लगे। काम कोई भी हो—झाड़ू लगाना या फूल तोडना, मन्दिर के बर्तन माँजना या चन्दन घिसना सुरेन्द्र सदा अगआई करते। बागवानी का उन्हे बहुत शौक था। बडी मेहनत से क्यारी तैयार की उसमे बीज डाले पानी दिया खाद दिया। औरो की क्यारियो के पौधे बढने लगे मगर इस क्यारी के पौधे बढते ही नही थे। सब लोग हैरान थे। आखिर पता चला कि सुरेन्द्र छोटे-छोटे अकुरो का उखाड-उखाड कर देखते कि वे कितने बढ रहे है! इसीसे उनकी अनुसधानात्मक वृत्ति का सहज परिचय मिल गया।

बचपन से ही सुरेन्द्र म अनेक गुण प्रकट होने लगे। छोटे साथियो की मदद करना, बीमारो की सेवा करना दीन-दुखियो को ढाढस बधाना, ये काम वे सदा करते। एक

(बाये से खड) सरेन्द्र के पितामह श्री आण्णाप्पा मातामह श्रीमती उमाताई (बैठ) बड चाचा श्री भरमप्पा, पिताश्री कालप्पा आण्णाप्पा उपाध्य छोट चाचा श्री आदिनाथ ।

बार एक बुढिया के सिर पर सब्जी की टोकरी रखवानी थी। बडे-बडे लड़के तो उसकी मदद करने नही आये पर छोटे सुरेन्द्र ने सडक पर गडे मील के पत्थर पर खडे होकर उसके सर पर टोकरी रखवा दी।

सुरेन्द्र के तर्क सब से अलग होते। एक बार काम पूरा न करने पर गुरुजी ने बेंत लगाने के लिए सीधा हाथ आगे करने को कहा। सुरेन्द्र ने दोनो हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा--- गलती है तो दोनो हाथो की है मारना हो तो दोनो को मारिये। वैसे ही एक बार अच्छी नेकर गीली होने के कारण सुरेन्द्र फटी नेकर पहने थे। गुरुजी नाराज हुए। अगले दिन सुरेन्द्र वही नेकर उलटी पहन आये। गुरुजी के पूछने पर उनका जवाब था कि नेकर फटी है मगर उसमे से कुछ दिखायी नही दे सकता। भविष्य मे जिसे कुछ पहनना ही नही था उसे फटी नेकर की क्या चिन्ता ?

खलने मे और वक्तृत्व के कायक्रमो मे सुरेन्द्र सदा आगे रहते। सुरेन्द्र की टीम हार जाने पर विरोधी दल के नेता से झगडा हो जाने के बाद भी गल लगाकर बधाई देने का काम सुरेन्द्र ही कर सकते थे। जहाँ उनमे यह उदारता थी वहाँ नियमो के प्रति हठ भी था। तडके उठने मे देर हो जाने के कारण एक बार सुरेन्द्र को गुरुजी की डाँट सुननी पडी। बस उन्होने उसी दिन निश्चय कर लिया कि व ही सब से पहले उठग और बच्चो का उठाने की घटी खुद ही बजायगे। रात को घटी के नीचे इसलिए सोय कि देर न हो जाए और रात मे तीन चार बार उठकर घडी देखी। गुरुजी को उस दिन किसी कारण से उठने म देर हो गयी मगर घटी समय पर ही बजी क्योकि सुरेन्द्र तो सही समय का इतजार ही कर रहे थ।

शारीरिक कष्ट सहन करने की उनकी क्षमता भी अदभत थी। एक बार सुरेन्द्र के कान के पास एक बहुत बडा फोडा हो गया। उन्होने उसे फोडकर मवाद निकाल देने के लिए कहा। यही किया भी गया। मवाद निकालते समय देखने वाले दद से विचलित हो गये पर सुरेन्द्र के मुह स उफ तक न निकली। इन्ही दिनो सुरेन्द्र म देशभक्ति की भावना का उत्स भी फट निकला। वह १९३०-३१ का समय था। महात्मा गाधी का आन्दोलन जारी था और उस आन्दोलन का प्रभाव बालक सुरेन्द्र पर भी गहरा पडा।

सन १९३७ मे सुरेन्द्र व गुरुजी आश्रम छोडकर चल गये। सुरेन्द्र ने भी आश्रम छाड दिया। सगीत सीखने की उनकी इच्छा थी। एक ब्राह्मण सगीतज्ञ के यहाँ चार माह रहकर उन्होन सगीत सीखा और फिर घर चले आय। पिताजी को यह बात पसन्द नही आया। अब सुरेन्द्र ने एक दोस्त की चक्की पर काम करना शुरू कर दिया और फिर एक दिन पुन सगीत सीखने जाने की बात कहकर घर छोडकर पूना चले गये।

सुरेन्द्र का व्यक्तित्व इतना आकषक था कि कोई भी उनसे प्रभावित हुए बिना नही रहता। उन्हे पूना की एम्यूनीशन फैक्टरी मे काम मिल गया। कोरे किताबी

ज्ञान से कहीं ज्यादा रस मशीनों के काम में था। मगर नौकरी के इस जीवन में रम जाने पर भी अन्दर से मन में कुछ और ही विचार आते, कुछ और ही खोज करने की अकुलाहट मन में हमेशा बनी रहती।

एक बार अपने एक मित्र के साथ सुरेन्द्र सिनेमा देखने पहुँच गये। फिल्म का नाम था 'ससार'। परिवार के लोगो के बीच भेद-भाव, लोभ-मोह, ईर्ष्या-द्वेष आदि के चित्रण देख सुरेन्द्र के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। दोस्तो मे सिनेमा की बाते होतीं। बातो ही बातो मे एक दोस्त उन्हे 'प्रभात स्टुडियो' तक ले गया। सुरेन्द्र काम के लिए चुन भी लिये गये, मगर वहाँ जब कहा गया कि पहले स्टूडियो मे झाड़ू देनी होगी, कुर्सियाँ उठानी होगी, तो सुरेन्द्र उलटे पैर लौट आये और उस ओर फिर कभी उलट कर नहीं देखा।

स्टुडियो के चक्कर मे एम्यूनीशन फैक्टरी की नौकरी भी जाती रही थी। उन्ही दिनो एक मित्र के घर चाय पर बिस्किट खाते समय उन पर अकित 'साठे बिस्किट' शब्द पढ़कर सुरेन्द्र साठे बिस्किट कपनी मे पहुँच गये। सुरेन्द्र काम के लिए पहुँचे और काम न मिले यह सभव ही नहीं था। सुरेन्द्र वही काम करने लगे।

पूना नगर के इस निवास में सुरेन्द्र ने बहुत से देशभक्तो के भाषण सुने। गांधीजी के सिद्धान्तो और विचारो का मनन किया। जुलूसो और दूसरे कार्यक्रमो मे भाग लिया। देशभक्ति का व्रत लिया। बचपन मे आश्रम-जीवन से जो सस्कार मन पर दृढ़ हुए थे उन्हे अब बल मिला। अपना जीवन साधु-सतो, विद्वान्-महात्माओ-जैसा हो ऐसे विचार सुरेन्द्र के मन मे बार-बार आने लगे। बिस्किट फैक्टरी मे कुछ दिन काम करने के बाद सुरेन्द्र को उसमे अरुचि हो गयी और वे पूना छोड़कर घर आ गये।

सुरेन्द्र का सारा समय अब मनन-चिन्तन मे बीतने लगा। राह की खोज जारी थी। कर्त्तव्य का निश्चय करना था। तभी सन् १९४२ का "भारत छोड़ो आन्दोलन आरभ हुआ। देशभक्ति की तरगे जिनके हृदय मे हिलोरे लेती हो वे चुप कैसे बैठ सकते थे? सुरेन्द्र ने साथी युवको के साथ मिलकर एक योजना बनायी। एक बाँस, कुछ रस्सी और तिरगा झण्डा इकट्ठा करना था। इतना काम हो जाने के बाद एक रात गाँव की चौपाल के सामने एक पेड़ पर तिरगा फहरा कर युवको की यह टोली 'भारत माता की जय' के नारे लगाकर घर चली गयी।

सवेरा हुआ। तिरंगा लहराने की खबर सुनकर गाँव के पटेल का माथा ठनका। पूछताछ हुई। सुरेन्द्र के नेतृत्व की जानकारी मिल गयी। सुरेन्द्र पटेल के यहाँ बुलाये गये। डाँट-डपट हुई जेल का डर दिखाया गया, और अगले दिन तक झण्डा उतार लेने की धौंस दी गयी। मगर सुरेन्द्र तिरंगा उतारने के लिए तैयार नहीं थे।

उस रात सुरेन्द्र सो न सके। झण्डा उतारने का तो सवाल ही नहीं था। परिणाम भुगतने की पूरी तैयारी भी थी मगर डर एक और था। इस घटना से सरकार घर के लोगों को भी तंग कर सकती है यह उन्हें मालूम था। दूसरे के कष्ट दूर करने वाले वे, परिजनों के लिए कष्ट के कारण कैसे बन सकते थे? अतः सुरेन्द्र ने घर छोड़ देने का फैसला कर लिया। स्वजनों को राज-कोप से बचाने के लिए उन्होंने प्रेम के रज्जु तोड़ डाले।

ध्वजारोहण की यह घटना उनके अज्ञातवास का कारण बनी। उन्हें कित्तूर की शुगर फैक्टरी में तुरन्त काम भी मिल गया। तकनीकी कामों में रुचि और गति तो थी ही काम अच्छा चलने लगा। दिन और महीने बीतते गये। घर जाने का या अपना पता सूचित करने का विचार भी मन में न आता। मोह-माया के बंधन तो तोड़ ही दिये थे। विवाह की बात भी जब चली थी तो सुरेन्द्र ने सदा मौन ही रखा था और किसी ने सीधे विवाह करने के लिए कहने की हिम्मत भी न की थी।

माता-पिता अवश्य परेशान थे। हर जगह सुरेन्द्र ढूढ़े जा रहे थे। माँ-बाप द्वारा भी और अंग्रेज सरकार द्वारा भी! लेकिन सिखों के वेश में रहने वाले सुरेन्द्र को कौन पहचान सकता था? तिरंगा फहराकर कोई भारी देश-सेवा कर डाली हो ऐसा सुरेन्द्र बिलकुल नहीं समझते थे। उल्टे यह विचार उन्हें सदा सताता कि लोग यही समझते होंगे कि झण्डा लगाने के कारण डर से भाग गया। उनकी उन्नत आत्मा सदा आगे बढ़ने की प्रेरणा देती। कुछ अच्छा करने का मन्त्र रटती। मगर अब भी मार्ग नहीं मिल रहा था ध्येय का निश्चय नहीं हो पाया था। इसी दौरान ऐनापुर के पटेल परिवार के एक युवक से दोस्ती हो गयी। छुट्टियों के दिन उसके घर बीतते। ऐनापुर महामुनि कुंथुसागरजी का जन्म-स्थान था। सुरेन्द्र वहाँ पर कुंथुसागरजी के ग्रंथ पढ़ सके। धीरे धीरे उनके विचारों को दिशा मिलने लगी।

यही दिनचर्या शायद और चलती मगर नियति में कुछ और ही बदा था। सुरेन्द्र मातीझरे से बीमार हो गये। मित्र ने उन्हें घर पहुँचा दिया। माँ-बाप भी बीमारी की दशा देखकर रो पड़े मगर इन आँसुओं में पुत्र मिलने की खुशी भी शामिल थी। तबीयत काफी खराब थी। लोग चिन्तित थे। मगर सुरेन्द्र के मन में कुंथुसागरजी का अध्यात्म छाया हुआ था। णमोकार मन्त्र का मनन जारी था। रुग्णशैया पर पड़े-

पड़े ही उन्हें श्री शान्तिनाथ भगवान का दर्शन होता। वे नमस्कार करते। अन्त में विचारों के मन्थन से संकल्प उभरा ! संकल्प था—"हे प्रभो ! आप ही मुझे इस विषम ज्वर से बचावेंगे यदि मैं बच गया तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूंगा, महात्मा गाधी जैसा मेरा वेश होगा । धर्म-सेवा और राष्ट्र-सेवा मेरा अविचल व्रत होगा।"

श्री जिनेश्वर की कृपा और संतों के आशीर्वाद से सुरेन्द्र ठीक हो गये। बीमारी मे खान-पान का पथ्य पालते-पालते सुरेन्द्र मन से ही सयमी बन गये। ईश्वर-भक्ति मे अतर्मुख बन गये। ससार के अनुभवो के कारण विषय-वासनाओ से अनासक्त बन गये। जो सस्कार मन पर पहले से ही थे, जो सस्कार बीज रूप में विद्यमान थे, वे अब फल-फूलकर लहलहाने लगे। अनुभव-कोंपलें बढने लगी। ज्ञान-रूपी कलियाँ खिलने को उद्यत हो उठी।

फिर एक चातुर्मास आया ! सन् १९४६ का चातुर्मास !! संयम-मूर्ति, ज्ञान-सूर्य महामुनिराज श्री महावीरकीर्तिजी ने शेडवाल मे मगल-विहार किया। रोग से जर्जर सुरेन्द्र को मानो अमृत मिल गया। आत्मिक शान्ति की सजीवनी से सुरेन्द्र का पुनर्जन्म हुआ ।

सुरेन्द्र प्रतिदिन मुनिजी के उपदेश सुनते। रोज उपदेश सुनकर वे कर्मफलों के आवरणो से उबरने लगे। आत्मा के आनन्द मे मग्न सुरेन्द्र, मुनिजी के सान्निध्य मे बने रहते। अपटूडेट वेशभूषा मे रहने वाले सुरेन्द्र ने बिलकुल सादा वेश धारण कर लिया। माता-पिता और इष्ट मित्रो को चिन्ता हुई, मगर सुरेन्द्र ने अपने मन की बात औरो पर प्रगट नही की। सारे ग्राम वासियो ने इस परिवर्तन को देखा। सासारिक सुख, मोह-माया को त्याग कर सुरेन्द्र दूसरा ही मार्ग चुन रहे है, यह देखकर माता-पिता को गहरी चिन्ता होती। सुखो के स्वर्ण-पिजरे मे बन्द मन का हीरामन, पिजरे से उड़ने के लिए तैयार था, वीतरागी बनने के लिए कृत-सकल्प था।

प्रतिदिन नियम से उपदेश सुनने के लिए आने वाले सुन्दर युवक की ओर मुनि महावीरकीर्तिजी का आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। सुरेन्द्र की ज्ञान-पिपासा ने उन्हे प्रभावित किया। वे बड़े प्रेम से सुरेन्द्र से बाते करते और उनके बिचारों को सुनकर आनन्दित हो उठते ।

ऐसे ही एक दिन सुरेन्द्र ने स्वामीजी से जात-रूप की दीक्षा की याचना की। मुनिजी प्रसन्न थे, मगर सुरेन्द्र की छोटी अवस्था देखकर माता-पिता से अनुमति लेने

के लिए कहा गया। माता-पिता विचलित होने लगे। युवा पुत्र दीक्षा लेगा ? मगर सुरेन्द्र अपने निश्चय पर अटल थे। धीरे-धीरे दो महीने बीत गये। सुरेन्द्र का अधिकांश समय मुनिजी के साथ बीतता। कई बार वे मुनिजी के साथ उनका कमडलु लेकर जाते तो किसी भक्त के यहाँ ही भोजन कर लेते। कभी-कभी भोजन के लिए घर पहुँचते। पुत्र-प्रेम के कारण मुनिजी की यह सगति पिता को बुरी लगती। एक दिन पिताजी ने कह दिया, घर किस लिए आते हो ? खाने के लिए ? तो किसी स्वामीजी के पीछे-पीछे घूमते रहो। पेट भरने लायक भिक्षा कोई भी डाल देगा।" यह सुनना था, कि सुरेन्द्र उलटे पाँव लौट पडे। माँ से नहीं रहा गया। उन्होंने जबरदस्ती भोजन कराया। उस दिन माँ के प्रेमाग्रह के कारण आधा पेट खाकर उठने वाले सुरेन्द्र आज तक एक समय भोजन का व्रत पाल रहे है। वह भोजन कर घर से निकले, तो हमेशा के लिए !

माता-पिता और परिजनो ने सुरेन्द्र को तरह-तरह से समझाने की कोशिश की, मगर जिसने माया, मोह और ममत्व के बधन तोड दिये हो, उस पर दुनियादारी के तर्क का क्या असर होता ? सुरेन्द्र यही कहते कि "मैं स्वामीजी के साथ रहता हूँ, तो किसी का कुछ बुरा तो नही करता।" आखिर लोग चुप रहते।

मुनिजी भी इन दिनो अपने इस शिष्य को परख रहे थे। आखिर उनके विहार का दिन आ गया। ग्रामवासियो के लिए उनका अन्तिम उपदेश हुआ। मुनिजी ने चरित्र-बल और आत्मधर्म की व्याख्या की। उपस्थित लोगो मे कुतूहल था कि अब सुरेन्द्र क्या करेंगे ! मुनिजी की पदयात्रा आरम्भ हुई। शिष्य सुरेन्द्र उनके अनुगामी बने ! गुरु मौन थे, शिष्य मौन थे !! लोगो ने प्रश्न पूछे, समझाने की कोशिशे की, रोकने के प्रयत्न किये, लेकिन ऊगते हुए सूर्य को कौन रोक पाया है ?

(मराठी से अनूदित)

आस्था की दीवट पर, चिन्तन का दीप धर,
रहस्य की मावस को अनुभूति की पूनम कर।

—सेठिया

संस्कार और वैराग्य

सुरेन्द्र को बचपन से ही जिनेश्वर की सेवा मे रुचि थी। आरम्भ से ही उनकी वृत्ति मे अनासक्ति थी। इसका कारण था पूर्वजन्मो के सुसस्कारो से युक्त उन्नत आत्मा !

सुरेन्द्र के पिताजी ने बचपन से सुरेन्द्र को मिथ्याचारो और आडम्बरो से दूर रखा।

अपने ताऊ से सुरेन्द्र ने सीखा प्रेम और अनुशासन-युक्त जीवन।

श्री शान्तिसागर छात्रावास मे रहकर सुरेन्द्र पर विश्वबन्धुत्व के सस्कार पडे। जन्मजात गुणो को विकसित होने का अवसर यही मिला।

कच्ची उम्र मे ही घर छोडा। स्वावलम्बी बने। ठोकरे खायी मीठे कडवे अनुभव लिये, और उन सब अनुभवो से ससार के प्रति विरक्ति और सासारिक सुखो के प्रति अनासक्ति हो गयी।

"अन्यथा शरण नास्ति" भाव से श्री शान्तिनाथ भगवान की गुहार की, रोग-मुक्त होने पर श्री जिनेश्वर मे भक्ति बढती गयी।

पिछले पुण्यकर्मों से ही स्वय साक्षात्कार हुआ। लम्बी बीमारी मे "यह शरीर नश्वर है, जीवन क्षण-भगुर है कोई किसी का नही" यह दुर्लभबोधि प्राप्त हो गयी।

वैराग्य-वृत्ति तो उनमे जन्मजात थी। सस्कारों से यह वृत्ति दृढ होती गयी। साधु-सगति से दीक्षा लेने की इच्छा अदम्य हो उठी। ऐसे समय मुनिराज श्री महावीर-कीर्ति शेडवाल पहुँचे और सुरेन्द्र की मनोकामना पूरी हो गयी।

दीक्षा-ग्रहण आचार्य महावीरकीर्तिजी; स्थान तमदड्डी, सन् १९४६, नाम हुआ—पार्श्वकीर्ति !

मुनि-दीक्षा-ग्रहण आचार्य देशभूषणजी; स्थान दिल्ली, तिथि—२५-७-१९६३, नाम हुआ—विद्यानन्द !! □

संयुक्त पुरुष : श्रीगुरु विद्यानन्द

विराट् प्रकृति मे से अनायास उठ कर चला आ रहा है निसर्ग पुरुष । पृथा के निरावरण वक्षोज का नग्न सुमेरु जैसे चलायमान है । उसी की कोख मे से जन्म लेकर यह उसका विजेता और स्वामी हो गया है । नदी, पर्वत, समुद्र, वन-कान्तार, नर-नारी, सकल चराचर ने इस सयुक्त पुरुष मे रूप-परिग्रह किया है । इसी से यह नितान्त नग्न, निर्ग्रंथ, निष्परिग्रही है । इसी को वेद के ऋषि ने 'वातरशना' कह कर प्रणति दी है । मयूर-पीछी और कमण्डलुधारी दिगम्बर मुनि को देख कर बचपन से ही मुझे उस वातरशना का ध्यान आता रहा है। कही भी उसे विहार करते देख कर, मैं रोमाचित हो उठता हूँ, आँखे सजल हो आती हैं । निपट बालपन से ही यह फ़ितरत मुझ मे रही है । आज स्पष्ट यह प्रतीति हो रही है, कि यह कोई निरा कुलजात रक्त-सस्कार नही है । यह मेरे जन्मजात कवि की चेतनागत सौन्दर्य-दृष्टि का विज़न-साक्षात्कार है ।

योगीश्वर शकर, ऋषभदेव, भरतेश्वर, महावीर की 'इमेज' तो इस तरह सामने आयी, पर उसका आन्तर वैभव और प्रकाश कही देखने को नही मिल रहा था । साम्प्रदायिक दिगम्बर जैन मुनि के सामीप्य में आने पर मेरा वह विज़न अधिकतर भग ही होता रहा है। किन्तु अवचेतना मे उसकी पुकार और खोज चुपचाप निरन्तर चलती रही ।

○

सन् ७१ मे मौत से जूझ कर नये जीवन के तट पर आ खडा हुआ था । वातावरण मे भगवान् महावीर के आगामी महानिर्वाणोत्सव की गूज सुनायी पड रही थी । नये जीवन की ऊष्मा से प्रफुल्लित मेरे हृदय मे कुछ ऐसा भाव जागा, कि क्यो न भगवान् महावीर पर एक महाकाव्य लिखूं । पर ऐसे सृजन मे तो समाधिस्थ हो जाना पडता है । भोजन और उसकी व्यवस्था को भूल जाना होता है । भौतिकवादी पश्चिम मे सृजन की ऐसी भाव-समाधि सम्भव हो तो हो, आध्यात्मवादी भारत मे उसकी कल्पना करना भी अपराध है, किन्तु वह अपराध मैंने शुरू से ही किया है,और नतीजे मे सदा बर्बादी के आलम का सुल्तान हो कर रहा हू । महावीर के आवाहन से जब दिगन्त गूंज रहे थे, तो सौ गुना ज्यादा वह गुनाह करने को मैं बेचैन हो उठा । बदले मे सर्वत्र पायी अवज्ञा, उपेक्षा, अपमान । निर्वाणोत्सव के झडाधारी नेताओ को ऐसे किसी महाकाव्य मे दिलचस्पी नही थी । वे किसी भी किराये के लेखक से सस्ते दामो पर नारों के तख्ते (प्लेकार्ड्स) और प्रचार-पोथियाँ लिखवाने में ही अपने कर्तव्य की पूर्णाहुति समझ रहे थे । या फिर क़दीमी ज़माने से चले आ रहे ढर्रे पर, शोध-अनुसधान के विद्वानो से जैनधर्म की प्राचीनता और महिमा पर लेख लिखवाने और निर्वाण-शती-ग्रंथ निकालने के आयोजन मे बहुत व्यस्त थे ।

बिस्मय से अवाक् रह गया मैं, आज तक ऐसा कोई जैन साधु वर्तमान में देखा-सुना नहीं था, जो मुग्ध हो सकता हो, जो 'रसो वै स' के मर्म से परिचित हो। कठोर तप-वैराग्य में लीन और जीवन-जगत् की नि:सारता को साँस-साँस में दुहराने वाला जैन श्रमण, साहित्य का ऐसा रसिक और विदग्ध भावक भी हो सकता है, ऐसा कभी सोचा ही नहीं था।

—वीरेन्द्रकुमार जैन

एक नेता बोले—'हमारे फलाने भाई फलाने चन्द सेठ को अद्भुत बात सूझी है। १००) इनाम, लिख दो महावीर की जीवनी सारांश मे—सिर्फ पच्चीस पृष्ठो मे खुली प्रतियोगिता है जिसका लेख कमीटी पास कर देगी, उसे १००) का नक़द पुरस्कार। वीरेन्द्र भाई, इस मौके का लाभ उठाने मे चूके नही।' सुन कर मेरे हृदय मे उमड रहे महावीर रो आये। और उन भगवान् ने साक्षात् किया कि उनके धर्म-शासन के आज जो स्तम्भ माने जाते हैं, उन्हे महावीर से अधिक अपने अहकार, व्यापार और जयजयकार मे दिलचस्पी है। वे परम्पर पुष्पहार-प्रदान, सत्कार-सम्मान मे ही अधिक व्यस्त है। महावीर से उनका कोई लेना-देना नही। वह मात्र उनकी प्रतिष्ठा और प्रतिष्ठान का साइन बोर्ड और विज्ञापन है। चतुर-चूडामणि गाधी भी जाने-अनजाने अपनी अहिसा की ओट, ऐसे ही साइन बोर्ड बनने को मजबूर हुए थे। बक़ौल उन्ही के, शोषण के अशुद्ध द्रव्य (साधन) से लायी गयी आजादी (साध्य) हिन्दुस्तान के दरिद्रनारायण की मुक्ति सिद्ध न हुई, वह मुट्ठी भर सत्ता-सम्पत्ति-स्वामियो का स्वेच्छाचार होकर रह गयी।

महावीर मेरे सृजन मे उतरने को, मेरी धमनियो मे उबल रहे थे। अपने रक्त की बूंद-बूंद मे धधक रहे इस वैश्वानर का क्या करूँ ? भीतर बेशक आस्था अटल थी कि वे विश्वभर स्वयम् ही सर्वसमर्थ है, सो वे यज्ञपुरुष अपने अवतरण के हवन-कुण्ड कवि को ठीक समय पर हव्य प्रदान करेगे ही। पर मनुष्य होकर अपना प्रयत्न-पुरुषार्थ किये बिना चुप कैसे बैठ सकता था। अपनी कोशिशो के दौरान शासकीय उत्सव-समिति के एक समर्थ 'निर्वाण-नेता' से मैंने पूछा 'महानुभाव, क्या आपकी महद योजना मे भगवान पर कोई मौलिक सृजन करवाने की व्यवस्था है ?' दो टूक उत्तर मिला 'नही साहब, ऐसी कोई व्यवस्था नही।' मैंने कहा 'आप तो साहित्य-मर्मज्ञ है, साहित्य के क़द्रदाँ है, क्यो न ऐसी कोई व्यवस्था करवायें ?' बोले कि 'कई अदद कमेटियाँ निर्णायक है, उनमे कहाँ पता चल सकता है आदि' अधिक पूछताछ करने पर पता चला कि कमेटियो के सामने कई बडे-बड़े काम है—मसलन महावीर का स्मारक-मदिर, महावीर-उद्यान, उसमे तीर्थंकर-मूर्तियो की स्थापना और जिनेश्वरो के उपदेशो का शिलालेखन, राष्ट्रव्यापी मेले और जलसे, महावीर-झडा, महावीर-डायरी, महावीर-ग्रीटिंग निर्माण। अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह के उपदेशक आगम-वचनो के तख्ते गाँव-गाँव मे और झाड-झाड पर लटका देना है। आदि-आदि।' ठीक ही तो है, इस धुआँधार मे महावीर-काव्य का बेचारे का क्या मूल्य हो सकता है ?

और उसके मूर्ख कवि की वहाँ कहाँ पूछ है ? क्योकि उसका कोई प्रदर्शनात्मक मूल्य तो है नही । प्रजा के रक्त मे वह सचरित हो भी सकता है, पर कही दिखायी तो नही पडेगा । जिसका प्रतिफल प्रत्यक्ष होकर दाता का यश-विस्तार न करे, उस दान की क्या सार्थकता?

एक मजिल पर कवि की सृजन-योजना पर विचार-कृपा हुई भी, लेकिन रूप यह कि कुल इतने पृष्ठो मे निमटा-सिमटा देना है, कुल इतना पारिश्रमिक प्रतिमास इतने पृष्ठ लिख देने होगे, प्रतिमास इतना रुपया मिल सकेगा । कांट्रेक्ट पर कवि हस्ताक्षर करेगा ही । मेरे भीतर उठ रहे महावीर वह्निमान हो उठे । कॉमर्स और काण्ट्रेक्ट के कारागार मे प्रकट होने से उन दिगम्बर पुरुष ने इनकार किया । मैंने पूछा 'तो भगवन्, आखिर रचना कैसे होगी ?' वीतराग प्रभु अपने स्वभाव के अनुसार मौन रहे और मुस्कुरा आये । मेरे हृदय मे एक प्रचण्ड सकल्प और आत्मविश्वास प्रकट हुआ 'नही, नही चाहिये व्यावसायिक व्यवस्था का भरण-पोषण । आकाश-वृत्ति पर अपने को छोडकर आकाश-पुरुष का चरितगान करूँगा । चरितार्थ तब महाजन का मुखापेक्षी न रहेगा । स्वय विश्वभर मेरा चरितार्थ बनेगे । '

तब अपने प्रयत्नो की अब तक की मूर्खता पर हँसी आये बिना न रही । मन-ही-मन अपने को उपालम्भ दिया 'अरे कवि, तू कैसा मूढ है ! वणिक्-कुल मे जन्म लेकर भी वणिक्-वृत्ति से तू इतना अनभिज्ञ ? महाजन के महावीर हृदय मे विराजित नही, वे सुवर्ण कलश वाले मन्दिर के भीतर, रत्नो के सिहासन पर पाषाण-मूर्ति मे प्रतिष्ठित है । वे सृजन म जीवन्त होकर, मानव के रक्त मे सचरित हो जाएँ और पृथ्वी पर चलते दिखायी पड जाएँ, तो सत्ता-सम्पत्ति-स्वामियो के प्रतिष्ठाना मे भूकम्प आ जाए, ज्वालामुखी फूट पडे ! , समझता भी कैसे अपने स्वकुल की यह रीति ? वणिक्-वश म जन्म लेकर भी, हूँ तो आत्मा से ब्राह्मण और आचार से क्षत्रिय । अपने ही यदुवश को प्रभुता-प्रमत्त होते देखकर लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण ने स्वय ही अपने वश विनाश का आयोजन किया था । उन्ही मधुसूदन का आत्मज, प्रेमिक और सखा हूँ निदान मै अपनी अन्तश्चेतना मे ।

अपने ही भीतर से मन्त्र प्राप्त हो गया । महावीर सम्पत्तिभत मन्दिरो की पाषाण-मूर्ति मे बन्दी न रह सके । वे मेरे रक्त की राह मेरी कलम पर उतर आये हैं । और अब जल्दी ही वे वैश्वानर विप्लव-पुरुष हिन्दुस्तान की धरती पर फिर से चलने वाले है । जीवन्त और ज्वलन्त होकर वे भारतीय राष्ट्र की शिराओ मे सचरित होने वाले है । वासुदेव-सखा वणिक्-वशी कवि ने स्व-वशनाश का पाचजन्य फूँका है । स्वय विदेह-पुत्र महावीर वैशाली के वैभव के विरुद्ध उठे हैं, अपनी ही नसो के जडीभूत रक्त पर उन्होने प्रहार किया है, अपने ही आत्म-व्यामोह के दुर्ग मे उन्होंने सुरगे लगा दी हैं । इस जीवन्त और चलते-फिरते महावीर की क्या गति होगी, हिन्दुस्तान के चौराहो पर, सो तो वे प्रभु स्वय ही जानें । कवि की कलम तो महज उन अनिर्वार क्रान्ति-पुरुष के पग-धारण का वाहन बनी है । कर्तृत्व मेरा नही, उन यज्ञेश्वर का है । मैं तो उनके यज्ञ की आहुति ही हो सकता हूँ । सो तो धरती पर जन्म लेने के दिन से होता ही रहा हूँ । ○

·· लेकिन यह तो आज की बात है। तब तो कवि अपने विश्वभर की खोज मे बेताब भटक ही रहा था। · योगायोग, कि दिल्ली से 'डि-लक्स' मे बम्बई लौटते हुए, आधी रात तूफान के वेग से भागती ट्रेन की खिडकी मे से एक सुनसान प्लेटफॉर्म पर ये अक्षर चमक उठे 'श्री महावीरजी'। बिजलियाँ लहरा गयी नसो मे। आँखो मे आँसू भर आये। ओह, प्रभु ने मुझे छू दिया! थाम लिया।

स्पष्ट प्रतीति हो गयी, चाँदनपुर के श्री महावीर ने कवि को बुलाया है। अनायास ही उनके अनुग्रह का सस्पर्श प्राप्त हुआ है। भागवद् धर्म की परम्परा मे, इसीको तो अहैतुकी भगवद्-कृपा कहा गया है। श्री भगवान् का अनुगृह पाये बिना, उनका साक्षात्कार सम्भव नही और उनका साक्षात्कार हुए बिना, उनकी लीला का गान करने मे कोई निरा मानुष कवि समर्थ नही हो सकता।

और १९ अक्तूबर १९७२ की बडी भोर हमारी 'बस' चाँदनपुर के श्री महावीर मन्दिर के सिहपौर पर आ खडी हुई। साथ आयी थी सौ अनिलारानी और चि डॉक्टर ज्योतीन्द्र जैन। यथाविधि व्यवस्थित होने पर, स्नानादि से निवृत्त होकर जिनालय के निज मन्दिर म प्रभु के श्रीचरणो मे उपस्थित हुआ। एक दृष्टिपात मे ही समूचा अस्तित्व, मानो किसी ऐसे अगाध मार्दव की ऊष्मा मे पर्यवसित हो गया, कि मन मे कसक रहे सारे प्रश्न और प्रतिक्रियाएँ कपूर की तरह उस वातावरण मे विगलित हो गये। आँखो से अविरल बह रहे आँसुओ मे, जिस परम आश्वासन और आलिगन की अनुभूति हुई, उसे कौन भाषा कहने मे समर्थ हो सकती है? उस क्षण के बाद उस तीर्थ-भूमि मे विचरते हुए सर्वत्र एक अनिर्वच उपस्थिति-बोध से चेतना सुख-विभोर होती रही, और देह, प्राण, इन्द्रियाँ तथा मन, एक अपूर्व एकाग्रता मे शान्त और विश्रब्ध हो गये-से लगे। ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे किसी दिव्य लोक मे अतिक्रान्त हो गया हूँ। भोजन मे ऐसा रस और स्वाद, जो मानो महज रसना इन्द्रिय के विषय से परे का हो।

विश्राम के बाद तीसरे पहर, मन्दिर-प्रागण मे बने एक विशाल पण्डाल मे श्रीगुरु-प्रवचन का आयोजन था। ठीक समय पर पहुँचकर श्रोता-मण्डल मे चुपचाप जा बैठा। पण्डाल के शीर्ष पर निर्मित एक ऊँचे व्यासपीठ के सिहासन मे विराजमान थे श्रीगुरु। उस ओर दृष्टि पडते ही हठात् मैं जैसे कला-शिल्प की किसी अज्ञात नैपथ्यशाला मे सक्रान्त हो गया। दिव्य शिल्प के उस मुहर्त-क्षण को साक्षात् किया, जब शताब्दियो पूर्व, शिल्पी के एक ही रत्नबाण के आघात से विन्ध्यगिरि पर्वत की चट्टान मे गोमटेश्वर आकार लेते चले गये थे।

और अगले ही क्षण मानो विश्व-विख्यात कलाकार पिकासो की घनत्वदर्शी कला के चित्रलोक मे से गुजरा । जहाँ सामने के एक ही मर्त स्वरूप मे से अमूर्त सौन्दर्य की जाने कितनी ही आकृतियाँ और आयाम खुलते चले जाते है । प्रतिमासन मे अवस्थित यह दिगम्बर योगी आखिर कोई मनुष्य ही तो है । फिर भी एक सुदृढ चतुष्कोण मे जडित यह मानवाकृति कितनी निस्पन्द और निश्चल है । मन, वचन काय की सारी हलन-चलन उसमे इस क्षण स्तभित है । आँखो की दृष्टि अपलक, अनिमेष एकाग्र होकर भी सर्व पर व्याप्त है, लेकिन आश्चर्य कि मेरे हृदय मे उठ रही लौ के उत्तर मे, वह दृष्टि मानो एकोन्मुख भाव से मुझे ही देख रही है। मेरे अन्तर मे जिनेश्वरो द्वारा कथित सत्ता का स्वरूप प्रस्फुरित हुआ 'उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त मत्व' । इस मानव-मूर्ति मे ध्रुव के भीतर उत्पाद और व्यय के निरन्तर परिणमन की तरगे प्रत्यक्ष अनुभूयमान हुईं । चिर दिन से 'वातरशना' का जो विजन मेरी चेतना मे झलक रहा था आज उसे प्रत्यक्ष आँखो-आगे देखा । मन्दिर की वेदी पर सवेरे श्री भगवान की जिस जीवन्त प्रेममूर्ति के दर्शन हुए थे, उसीके 'यै शान्तिरागरुचिभि परमाणुभिस्त्व '—सौन्दर्य-परमाणुओ को यहाँ एक जीवित मनुष्य मे आकार लेने की प्रक्रिया मे देखा ।

अच्छा तो यही हैं मुनिश्री विद्यानन्द स्वामी, जिनकी अधुनातन कही जाती वागीश्वरी की ख्याति जैन-जगत् से चिर निर्वासित मेरे कवि के कानो तक भी पहुँची थी । शोलापुर की बालयोगिनी प सुमतिबाईजी ने इन्ही के नाम एक परिचय-पत्र देने हुए मुझसे कहा था 'आज के पूरे जैन ससार मे एक वही तो है जो तुम्हारा मूल्य आँक सकता है जो तुम्हारी हर जिज्ञासा और अभीप्सा का उत्तर दे सकता है ।' सुमति दीदी की वह वत्सल वाणी उस दिन मेरे हृदय को छू गयी थी फिर भी मेरे अपन सन्देह अपनी जगह पर थे। पर यहाँ आज एक दृष्टिपात मात्र मे मेरे सन्देहो के वे सारे जाले सिमट गये ।

प्रवचन के उपरान्त मुनिश्री श्रीमहावीर-मर्ति के प्राकटय-तीर्थ सुरम्य पादुका-उद्यान मे एक शिलासन पर आ बिराजमान हुए । उनके सन्मुख ही लॉन मे उपस्थित कुछ श्रावक-मडल के बीच मै भी जा बैठा । अपराह्न की कोमल ललौंही धूप मे प्रभाविल उस सौन्दर्य-मर्ति को देखकर जाने कैसे आत्मीयता-बोध से मैं तरल हो आया । मलयागिरि चन्दन-सी काया । कमल-सी कोमल, लता-सी लचीली फिर भी चट्टान की तरह अभेद्य और अविचल । उस तप पूत ताम्र देह मे से पवित्रता की अगुरु-कपूरी गन्ध बहती महसूस हुई । ऐसी सघन कि अपने सस्पर्श से वह मेरे भीतर के चिद्घन को पुलकाकुल किये दे रही थी ।

मैंने मौका देखकर, आगे आ प्रणाम किया और सुमति दीदी का पत्र मुनिश्री के सम्मुख प्रस्तुत किया । पलक मारते मे उस पर निगाह डालकर, पत्र उन्होने चुपचाप

महावीर सम्प्रतिभूत मन्दिरों की पाषाण-मूर्ति में बन्दी न रह सके। वे मेरे रक्त की राह, मेरी कलम पर उतर आये हैं। और अब जल्दी ही वे वैश्वानर विप्लव-पुरुष हिन्दुस्तान की धरती पर फिर से चलने वाले हैं। जीवन्त और ज्वलन्त होकर वे भारतीय राष्ट्र की शिराओं में संचरित होने वाले हैं।....स्वयं विदेह-पुत्र महावीर वैशाली के वैभव के विरुद्ध उठे हैं; अपनी ही नसों के जड़ीभूत रक्त पर उन्होंने प्रहार किया है; अपने आत्म-व्यामोह के दुर्ग में उन्होंने सुरंगें लगा दी हैं।

अपने सेवक को थमा दिया। वीतराग आनन्द के स्मित के साथ मेरी ओर टुक देखा। एक अजीब अनबूझ-सी पहचान थी उन आँखो मे। फिर भी केवल इतना ही कहा

'यह परिचय-पत्र अनावश्यक था आपके लिए। कल सवेरे नौ बजे, आवास पर एकान्त मे बात होगी। केवल आप होगे, अकेले।'

जिस युक्त पुरुष का अपने लेखन मे नाना प्रकार से भावन-अनुभावन, आलेखन करता रहा हूँ उसे देखा। जैन जगत् मे अपने जाने ऐसा कोई मुनि तो पहले देखा नही था। यहाँ एक परम्परागत सन्यासी मे से आधुनिकता-बोध को प्रसारित (रेडियेट) होते देखा। O

रात भर एक मुस्कान मुझे हॉण्ट करती रही। कवि का अनुरागी चित्त एक साधु के प्रेम मे पड जाने के खतरनाक तट पर व्याकुल भटक रहा था। और वह भी एक कठोर विरागी जैन श्रमण पर अनुरक्त होने की जोखिम यो एकाएक कैसे उठायी जा सकती है? एक अजीब असमजस मे पडा था मेरा मन।

सवेरे तैयार होकर ठीक नियत समय पर एक रमणीय उद्यान से आवेष्ठित आवास के अहाते मे, बन्द द्वार खटखटाने पर ही, प्रवेश मिल सका। बताया गया कि आहार-बेला से पूर्व के इस अन्तराल मे मुनिश्री किसी से मिलते नही हैं। आज केवल मैं ही इस समय का एकमात्र प्रतीक्षित अतिथि हूँ। शिलाधारो पर स्थापित कई प्राचीन जैन शिल्पो से सज्जित इस परिसर उद्यान के कलात्मक सौन्दर्य-लोक को देखकर मैं मुग्ध और चकित था। जैन जगत् मे ऐसा दृश्य पहले कभी नही देखा था।

सहसा ही पाया कि एक मुस्कान मेरी राह मे बिछी, मेरे पैरो को खीच रही है। आवास के बरामदे मे कल सन्ध्या की वही मलय-मूर्ति सस्मित वदन मेरे स्वागत मे शान्त भाव से स्थिर दीखी। चरण-स्पर्श का लोभ सवरण न कर सका। फिर भूमिष्ठ प्रणाम कर, विनम्र भाव से सामने बैठ गया।

'आ गये तुम? कितने बरसो से तुम्हें खोज रहा हूँ। 'मुक्तिदूत' के रचनाकार वीरेन्द्र की मुझे तलाश रही है। पन्द्रह वर्ष तुम्हारे उस ग्रथ को सिरहाने रखकर सोया। उसके वाक्य मेरे हृदय मे गूँजते रहे। उसे पढ़कर मैंने हिन्दी सीखी। ठीक समय पर आये तुम। मुझे इस क्षण तुम्हारी जरूरत है?'

इस धन्यता को, देह की सीमा में समाहित रखना कवि के लिए कठिन हो गया। दु साध्य साधन करके ही, आँखो के जल किनारो मे थामे रख सका। इतना भर आया था कि, बोल सम्भव न हो रहा था। रुद्ध कण्ठ-स्वर से इतना ही कह सका

'कृतार्थ हुआ मै और मेरा शब्द ।'

'सुनो वीरेन्द्र, भगवान् महावीर के आगामी परिनिर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य मे तुम्हें 'मुक्तिदूत' जैसा ही एक सर्वमनरजन उपन्यास भगवान् के जीवन पर लिखना होगा ।

मैं विस्मित। अपनी ओर से कुछ भी तो नही कहना पडा। तन-मन की सब मानो ये राई-रत्ती जानते हैं। योगी ने ठीक मेरे मनोकाम्य पर उँगली रखकर अपनी पारदृष्टि से उसे अभीष्ट रूप दे दिया। वल्लभ और किसे कहते है ?

'महाराजश्री, कवि को भी उसकी खोज थी जो इस माया-राज्य मे चिर उपेक्षित, अनपहचानी उसकी आत्मा को पहचान सके। श्रीगुरु को पाकर मैं धन्य हुआ। '

अस्पृष्ट अनासक्त वात्सल्य से वे मुझे हेरते रहे। फिर बोले

'महावीर तुम्हारी कलम से जीवन्त प्रकट होना चाहते है। उपन्यास का आरम्भ शीघ्र कर देना होगा।'

'भगवन् जो साध मन मे लेकर आया था, वह तो बिन कहे ही आपने पूरी कर दी। लेकिन एक निवेदन है '

'बोलो !'

'उपन्यास नही महाकाव्य लिखना चाहता हूँ महावीर पर। मुक्तिदूत की नियति को दुहराना नही चाहता। वह हिन्दी उपन्यासो के अम्बार मे खो गया। साहित्य मे वह घटित ही न हो सका।'

'क्या कह रहे हो ? जो मेरे हृदय मे बस गया वह उपन्यास खो गया ? जो हजारो नर-नारी के मन प्राण पर छा गया वह साहित्य मे घटित न हुआ ? तो फिर साहित्य मे घटित होना और किसे कहते है ? साहित्य की और कोई परिभाषा तो मै जानता नही? ।'

विस्मय से अवाक् रह गया मै। आज तक ऐसा कोई जैन साधु वर्तमान मे देखा-सुना नही था, जो मुग्ध हो सकता हो, जो 'रसो वै स' के मर्म से परिचित हो। कठोर तप-वैराग्य मे लीन और जीवन-जगत् की नि सारता को सास-सास मे दुहराने वाला जैन श्रमण, साहित्य का ऐसा रसिक और विदग्ध भावक भी हो सकता है ऐसा कभी सोचा नही था।

जिस मुक्त पुरुष का अपने लेखन में नाना प्रकार से भावन-अनुभावन, आलेखन करता रहा हूँ, उसे देखा। जैन-जगत् में अपने जाने ऐसा कोई मुनि तो पहले देखा नहीं था। यहाँ एक परम्परागत सन्यासी मे से आधुनिकता-बोध को प्रसारित (रेडिएट) होते देखा।

अपनी कुल-रक्तजात आर्हती परम्परा मे ही, वीतराग और अनुराग की ऐसी सुमधुर सयुति उपलब्ध कर सकूँगा, ऐसी तो कल्पना भी नही की थी । श्रीमहावीर कवि के मनभावन होकर सामने आ गये । भूतल पर जन्म-धारण सार्थक अनुभव हुआ ।

'महाराज, अहोभाग्य, इस अकिंचन कवि को आपने पहचाना । अपने ही धर्म-रक्त में साहित्य का ऐसा मर्मज्ञ और कहाँ पा सकूँगा । आपका आदेश शिरोधार्य है । पर अनुमति दें, इस बार पहले महाकाव्य ही रचूँ । यह मेरा चिर दिन का स्वप्न है । उपन्यास का विस्तार समय चाहेगा, और वैसी सुविधा ।

मैं अटक गया । तपाक् से मुनिश्री ने पूर्ति की

' समय तुम्हारा होगा स्वाधीन । और साधन-सुविधा की चिन्ता तुम्हारी नही, हमारी होगी ।'

अन्तर्यामी के सामने था । मेरे कथन से अधिक मेरे हर मनोभाव को यह जानता है । सृजन की समाधि मे खो जाने की छुट्टी यह मुझे दे सकता है । अपनी शर्तों पर नही, कवि के अपने स्वभाव की शर्तों पर । जैन ससार मे ही नही पूरे भारत मे मेरे साथ तो ऐसा पहली बार हुआ । वातरशना का चिरकाम्य विग्रह तो साकार देखा ही, पर वह विश्वभर भी स्वय ही मुझे खोजता मेरे सामने आ खडा हुआ, जिसकी खोज मे इन दिनो मै भटक रहा था । याद हो आया आधी रात का वह लग्न-क्षण, जब तूफानी मेल की खिडकी पर हठात् बिजली-सा चमक उठा था 'श्री महावीरजी । चाँदनपुर के बाबा को लेकर जो हजारो नर-नारी के चमत्कारिक अनुभवो की कथाएँ बालपन से सुनता रहा हूँ उसके सत्य की साक्षी पा गया । सुमति दीदी की भावमूर्ति आँखो मे छलछला आयी । उनके प्रति मेरी कृतज्ञता का अन्त नही था ।

महाराज उपन्यास आज के अराजक साहित्य-परिदृश्य मे अवहेलित हो जाए तो कोई ताज्जुब नही, किन्तु महाकाव्य विशिष्ट और विरल होने से आज के साहित्य मे भी मूल्यांकित हुए बिना न रह सकेगा ।'

'साहित्यकार नही, लोक-हृदय होगा तुम्हारे साहित्य का मानदण्ड और निर्णायक । जान लो मुझसे, इस देश के लक्ष-लक्ष नर-नारी के हृदय मे बस जाएगा तुम्हारा यह उपन्यास । इस मुहूर्त मे मुझे भगवान् के लोकरंजनकारी, सर्वहृदयहारी स्वरूप का रचनाकार चाहिये । और वह तुम 'मुक्तिदूत' मे सिद्ध हो चुके । वर्तमान मे लोक-मानस पर उपन्यास ही छा सकता है, काव्य नही । पहले उपन्यास लिखकर दो, फिर महाकाव्य भी लिखवाऊँगा । वह मुझ पर छोड दो ।"

छोड़नेवाला मैं कौन होता हूँ ? जब छुड़ा लेने वाला ऐसा समर्थ सामने बैठा हो। यह गाडीव-धनुर्धर अर्जुन के वश का नहीं रह गया था कि वासुदेव कृष्ण के अगुलि-निर्देश पर वह शर-सन्धान न करे। सारी व्यवस्था और विधान का जो स्वामी है, वह मुझसे अधिक मेरे अभीष्ट और कल्याण को जानता है। उसके आगे वितर्क कैसा ? उसके प्रति तो समर्पित ही हुआ जा सकता है।

'सुनो वीरेन्द्र जब तक कहूँ नही, जा नही सकोगे। बताऊँगा फिर। मेरे एकान्तवास के समय मे भी चाहे जब आ सकते हो। बहुत कुछ कहना-सुनना है, लेना-देना है ।'

'भगवन् पत्नी और पुत्र भी साथ आये है। एकान्त मे दर्शन-लाभ चाहते हैं।'

अरे तो उन्हे ले क्यो नही आये ? वे क्या तुम से अलग है ? कहना, उनसे मिलना चाहता हूँ।

मैने महाराजश्री के घुटने पर सर डाल दिया। मयूर-पिच्छिका का वह सहलाव, किसी कोमलतम हथेली के दुलार से भी अधिक मृदु मधुर और गहरा लगा।

○

अगले दो-तीन दिनो मे दूर से पास से मुनिश्री की चर्या और क्रिया-कलाप को देखा। मयक्त पुरुष (इण्टीग्रेटेड मेन) की प्रवृत्ति सम्भवत कैसी हो सकती है, उसका एक जीता जागता स्वरूप सामने आया। घड़ी के कॉटे पर उनका सारा कार्यक्रम अनायास चलता रहता है। जो अपने को 'अल्ट्रा-मॉडर्न' समझते है वे मुझे तो कही से भी 'मॉडर्न नही दीखते। अत्याधुनिक और अप-टू-डेट हैं स्वामी विद्यानन्द, जो वस्तु-स्वभाव की क्षणानुक्षणिक तरतमता मे जीते है। काल को अपनी स्वभावगत चिदक्रिया मे बाँधकर वे अपने चैतन्य-देवता के जीवन-व्यापार का सवाहक और दास बना लेते हैं। इस प्रकार वे समय को समयसार मे रूपान्तरित कर लेते है। यही तो आत्मजय और मरणजय की एकमात्र सम्भव प्रक्रिया है। और मुनिश्री विद्यानन्द की जीवन-चर्या इस प्रक्रिया का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

प्रात काल मन्दिर मे देव-दर्शन को जाते हुए पूर्वाह्न बेला मे आहार के लिए गोचरी करते हुए प्रवचन के समय पडाल मे आते-जाते मैंने मुनिश्री की भव्य विहार मूर्ति देखी। पुलक-रोमाच के साथ बार-बार स्मरण हो आया, आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व एक ऐसा ही नर-शार्दूल आसेतु-हिमाचल भारतवर्ष मे विचरता दिखायी पड़ा था। अपनी सत-सन्धानी सिंह-गर्जना से उसने तत्कालीन आर्यावर्त की असत्य, अन्याय, शोषण और अत्याचार की आसुरी शक्तियो के तख्ते उलट दिये थे। उसकी 'ऊँकार' ध्वनि और पगचापो से दिक्काल कम्पित होकर आत्मसमर्पण कर देते थे। चिरकाल

जो अपने को 'अल्ट्रा माडर्न' समझते हैं, वे मुझे तो कहीं से भी 'माडर्न' नहीं दीखते। अत्याधुनिक और 'अप-टू-डेट' हैं स्वामी विद्यानन्द, जो वस्तु-स्वभाव क्षणानुक्रमिक तरतमता में जीते हैं। काल को अपनी स्वभावगत चिद्क्रिया में बाँधकर वे अपने चैतन्य-देवता के जीवन-व्यापार का संवाहक और दास बना लेते हैं। इस प्रकार वे समय को समयसार मे रूपान्तरित कर लेते हैं।

के त्रिताप-सन्तप्त सकल चराचर उसके श्रीचरणो मे अभयदान और मुक्ति-लाभ करते थे। प्रशम-मूर्ति स्वामी विद्यानन्द को चलते देखकर, उसी दिगम्बर नरकेसरी की विहार-भगिमा बार-बार मेरी आँखो मे झलकी है। उनके विश्व-धर्म के प्रवचन को सुनकर लगा है कि उनकी वाणी मे आर्य ऋषियो का वैश्वानर मूर्तिमान हुआ है।

सिद्धसेन दिवाकर के बाद मैंने पहली बार एक ऐसे जैन श्रमण को देखा जो मात्र जैन दर्शन तक सीमित सकीर्ण पदावलि मे नही बोलता बल्कि जो किसी कदर, अधिक मुक्त और मौलिक भाषा मे विश्वतत्त्व का प्रवचन करता है। मुनीश्वर विद्यानन्द एक सास मे वेद उपनिषद गीता धम्मपद बाइबिल कुरान जन्दवस्ता और समयसार उच्चरित करते है। ससार के आज तक के तमाम धर्मों का मौलिक भाव ग्रहण करके उन्हे उन्होने अपनी अनैकान्तिनी विश्व-दृष्टि मे समन्वित और समापित किया है। समस्त ब्राह्मण वाङमय उनके कण्ठ से निर्झर की तरह बहता रहता है। वेद उपनिषद्, गीता वाल्मीकि वेदव्यास वैष्णवो की भगवद-वाणी शैवागम शाक्तागम आदि उनकी मौलिक धर्म-चेतना म सर्वात्मभाव की रासायनिक प्रक्रिया से तदाकार हो गये है।

इस सन्दर्भ मे यह ध्यातव्य है कि भगवान् महावीर ने वैदिक परम्परा का विरोध और खण्डन नही किया था। अपनी कैवल्य-ज्योति से उसके मर्म को प्रकाशित कर, उसके मिथ्या स्वार्थी रूढार्थों का भजन कर उसे भूमा के सत्यलोक मे पुनर्प्रतिष्ठित किया था। यह सच है कि आदिनाथ शकर ऋषभदेव भरतेश्वर राम कृष्ण महावीर बुद्ध की सयति का ही दूसरा नाम भारतवर्ष है। पर इसी अर्थ मे यह भी सत्य है कि भगवान् वेद व्यास के बिना आर्यों की आदिकालीन प्रज्ञा-धारा और भारतीय सस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। दक्षिण कर्नाटक के ब्राह्मण-कुलावतस विद्यानन्द ने इस देश की आत्मा के इस मर्म को ठीक-ठीक पहचाना है। उन्हे यह पता है कि वर्तमान जिनशासन के सारे ही मूर्धन्य युगन्धर आचार्य ब्राह्मणवशी थे। भगवान् महावीर के पट्ट-गणधर इन्द्रभूति गौतम तथा अन्य दस गणधर भी तत्कालीन आर्यावर्त के ब्राह्मण-श्रेष्ठ ही थे। और उनकी वैदिक सरस्वती ही जिनवाणी के रूप में प्रवाहित हुई थी। मुनिश्री विद्यानन्द सच्चे अर्थ मे महावीर की उसी गणधर परम्परा के एक प्रतिनिधि महाब्राह्मण हैं।

आज तक के तमाम भारतीय वाङमय मे उपलब्ध रामकथा का रासायनिक सदोहन करके, मुनिश्री ने अपनी एक स्वतन्त्र रामायण-कथा तैयार की है। इन्दौर के

गीता-मन्दिर मे जब उन्होने अपनी इस रामायण-कथा का प्रवचन किया, तो उसे सुनकर हजारो हिन्दू श्रोता भाव-विभोर हो गये। ऐसी निर्विरोधिनी और सर्वसमावेशी है मुनिश्री की वागीश्वरी। अनैकान्तिनी जिनवाणी का एकमात्र सच्चा स्वरूप यही तो हो सकता है। मुनिश्री की इस सर्वहृदयजयी मोहिनी से आकृष्ट होकर इन्दौर के मुसलमानो ने भी उन्हे अपनी धर्मसभा मे प्रवचन करने को आमन्त्रित किया था। रसूलिल्लाह हजरत मोहम्मद के इस भारतीय सस्करण को सुनकर, इन्दौर की मुस्लिम प्रजा गद्गद् हो गयी। उन दो-तीन दिनो के सत्सग मे, ये सारे विवरण जान-सुनकर मुझे प्रतीति हुई कि वर्तमान जैन सघ ने पहली बार मुनिश्री के रूप मे, महावीर के सर्वोदयी और सर्वतोभद्र व्यक्तित्व का अनुमान प्राप्त किया है।

एकान्त अवकाश के समय ही मुझे मुनिश्री से मिलने का सविशेष सौभाग्य तब मिलता रहा। बातो के दौरान उनकी विविधमुखी प्रवृत्तियो का परिचय भी मिला। उनमे एक मौलिक आविष्कारक और चयन-सचयनकारिणी प्रतिभा के दर्शन हुए। जैन वाडमय मे उपलब्ध सगीत-विद्या को आकलित और एकत्रित करके उन्होने जैन सगीत की एक युगानुरूप प्राजल धारा प्रवाहित की है। इससे पूर्व जैन सस्कृत-स्तुतियो और भजनो को अत्याधुनिक 'ऑर्केस्ट्रा' (वृन्द-वाद्य) की सगत मे सगीतमान करने का कार्य कभी हुआ हो, ऐसा मुझे याद नही आता। इतिहास, पुरातत्त्व, चित्रकला, शिल्पकला, स्थापत्य तथा ज्योतिष और अनेक प्रकार की योगविद्याओ मे एव मत्र-तत्र-शास्त्र मे उनकी गहरी रुचि तथा व्यापक अनुसधानपूर्ण अध्ययन देखकर मैं चकित रह गया।

काव्य और साहित्य के वे एक अन्यन्त तन्मय भावक और पारखी है। जैनाचार्यो के स्तुति-काव्यो के विशिष्ट चुने अशो को जब वे उद्धृत करते है या उनका सस्वर गान करते हैं तो लगता है कि पहली बार जैन महाकवियो की महाभाव वाणी को हम सुन रहे है। ऐसा विलक्षण होता है उनका यह चुनाव, कि उन श्लोक-पक्तियो मे हम वेद-उपनिषद् वेद व्यास, कालिदास की सरस्वती का समन्वित आस्वाद पा जाते है।

हर बार मिलने पर अपने लिखे कई ग्रथ भी एक-एक कर वे मुझे देते रहे। डेरे पर ले जाकर जब मैं उनमे से गुजरा, तो उनका मौलिक भाषा-सौष्ठव देखकर आनन्द-विभोर हो गया। स्पष्ट ही लगा कि अपनी आत्माभिव्यक्ति की आन्तरिक आवश्यकता मे से ही अपने लिए उन्होने एक नयी भाषा का आविष्कार किया है, नया मुहाविरा रचा है। जैन वाडमय के रत्नाकर मे से, अपनी सूक्ष्म, रस-भावग्राही अन्तर्दृष्टि द्वारा चुन-चुन कर, ऐसे भाव शबल और अर्थ-शबल शब्द-रत्न उन्होने खनित किये है और अपनी भाषा मे नियोजित किये है, कि उन्हे पढते हुए चिरनव्य सारस्वत आनन्द की अनुभूति होती है।

उनके व्यक्तित्व, वर्तन, व्यवहार, चर्या और भगिमा, सब मे एक प्रकृष्ट सौन्दर्य-बोध के दर्शन होते हैं। परम वीतरागी होकर भी वे सहज ही भाविक और अनुरागी हैं।

दक्षिण कर्नाटक के ब्राह्मण-कुलावतंस विद्यानन्द ने इस देश की आत्मा के मर्म को ठीक-ठीक पहचाना है।…उन दो-तीन दिनों के सत्संग में मुझे प्रतीति हुई कि वर्तमान ने पहली बार मुनिश्री के रूप मे महावीर के सर्वोदयी और सर्वतोभद्र व्यक्तित्व का अनुमान प्राप्त किया है।

नितान्त मोहमुक्त होकर भी वे परम सौन्दर्य-प्रेमी हैं। जैनो के धर्म-वाङमय मे प्रेम, सौन्दर्य, अनुराग, भाव-सम्वेदन जैसे शब्द किसी अभीष्ट पारमार्थिक अर्थ मे खोजे नही मिल सकते, पर मुनिश्री के व्यक्तित्व मे सच्चिदानन्द भगवान् आत्मा की जीवोन्मुखी अभिव्यक्ति के व्यजक ये सारे ही उदात्त गुण, एक अद्भुत आध्यात्मिक सुरावट के साथ प्रकाशमान दिखायी पडते है। वे एकबारगी ही आत्म-ध्यानी मौनी मुनि है, मितवचनी है, प्रचण्ड वक्ता है, अध्यात्मदर्शी हैं, तत्त्वज्ञानी हैं, कवि-कलाकार है, सौन्दर्य के दृष्टा और स्रष्टा महातपस्वी हैं। सयम तप, तेज, ज्ञान भाव, रस और सौन्दर्य का ऐसा समन्वित स्वरूप किसी जैन मुनि मे इससे पूर्व मेरे देखने मे नही आया।

○

इसी बीच अपराह्न के मिलन मे सौ अनिलारानी और चि डॉक्टर ज्योतीन्द्र जैन भी मेरे साथ रहते थे। अनिलारानी मे मुनिश्री को कवि की सती गृह-लक्ष्मी दिखायी पडी स्नेहपूर्वक उन्होने उनका सम्मान किया। ज्योतीन को पाकर तो वे मुग्ध और भाव-विभोर हो गये। वियेना विश्व-विद्यालय मे नृतत्त्व-विद्या पर उसके पीएच डी के अध्ययन, यूरप मे उसके तीन वर्षव्यापी प्रवास तथा उसके विविध खोज-अनुसन्धानो की साहस-कथा को सुनकर वे वात्सल्य से गद्गद् हो आये। एक दिन प्रसगात् अनिला को और मुझे लक्ष्य करके बोले

'यह लडका हमको बहुत पसद आ गया। इसका उठना-बैठना, बात-व्यवहार सब बहुत विनीत और मधुर है। इसे हमको दे दो न ?'

मेरी आँखे भर आयी। मैंने कहा

'आपका ही तो है। मैं उस दिन को अपने जीवन का परम मगल-मुहूर्त मानूँगा, जब ज्योतीन आपका कमडल उठाकर, आपकी देशव्यापी लोक-यात्रा मे आपका पदानुसरण करता दिखायी पडे।'

महाराजश्री एकटक ज्योतीन की ओर निहारते हुए हँसते रहे। उनकी वह हृदयहारिणी दृष्टि भूलती नही है।

मुनिश्री की हिमालय-यात्रा का वृत्तान्त सुनकर सहस्राब्दियो पूर्व भगवान् ऋषभ-देव के हिमवान-आरोहण की नारसिंही मुद्रा मेरी आँखो मे झलक उठी। मैंने उसी प्रसग मे निवेदन किया ·

'भगवन्, आप तो नूतन युग के श्रमण हैं। क्या पश्चिमी गोलार्द्ध और विश्व-भ्रमण के बिना आपकी धर्म-दिग्विजय-यात्रा सम्पन्न हो सकेगी? यूरप और अमेरिका आपको पा कर धन्य हो जाएँगे।'

महाराजश्री मुस्कुरा आये। धीर, शान्त भाव से उन्होने उत्तर दिया.

'नही वीरेन्द्र, हिमालय मे जाना चाहता हूँ।'

'क्या आप भी परापूर्व के योगियो की तरह हिमालय की हिमानियो मे जाकर समाधिस्थ हो जाना चाहेंगे? अवसर्पिणी की पतनोन्मुखी और पीडित मानवता के त्राण का भार फिर कौन उठायेगा? आज का त्राहिमाम् पुकारता विश्व, लोक-वल्लभ विद्यानन्द को अपने बीच धुरी के रूप मे पाना चाहता है।'

'उसी आह्वान का अन्तिम उत्तर खोजने के लिए हिमालय मे जाना होगा। वह उत्तर पा सका, तो लोक के पास लौटना ही होगा। तीर्थंकर तक लौटे बिना न रह सके, तो मेरी क्या हस्ती?'

मुनिश्री के भावी आत्मोत्थान की अदृष्ट श्रेणियो का किंचित् आभास पा सका, मैं इस उत्तर मे। एक गहरे आश्वासन का अनुभव हुआ।

इसी बीच एक दिन, श्री महावीरजी की इस तीर्थ-भूमि का जो कृपा-प्रासादिक अनुभव मुझे हुआ था, उसका ज़िक्र मैने प्रसगात् महाराजश्री से किया। वे बोले

'यह स्थान हमे बहुत प्रिय है। इस कारण कि यहाँ एक दिन, किसी दीन-दलित चमार के हाथो श्री भगवान् ने प्रकट होना स्वीकार किया था। लक्ष-कोटि सम्पत्ति के स्वामी और इस मन्दिर के निर्माता भी प्रभु के रथ का हिला तक न सके, किन्तु चमार का हाथ लगते ही रथ के पहिये चल पडे।'

मैं स्तब्ध रह गया सुनकर। मेरा भगवद्परायण वैष्णव हृदय भर आया। स्पष्ट प्रतीति हुई कि मुनिश्री ने श्री भगवान के नानामुखी, अनैकान्तिक स्वरूप का साक्षात्कार किया है। वे निरे शुष्क कठमुल्ला जैन तत्त्वज्ञानी नही हैं किन्तु भगवदानुभव से भावित एक मुक्त योगी हैं। उनके अरिहन्त केवल निर्वाण के कपाटो मे बन्द हो रहने का उद्यत सिद्धात्मा ही नही है वे दीन-दलित के परित्राता पतित-पावन जनार्दन भी है। वे केवल परब्रह्म नही अपेक्षा विशेष से लोक के धाता-विधाता नियन्ता, त्राता, अरिहन्ता--ब्रह्मा. विष्णु और महेश भी हैं। ○

मुझे यहाँ से जयपुर और दिल्ली जाना था। मैने दो दिन बाद मुनिश्री से निवेदन किया

'आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा मे हूँ। यहाँ से जयपुर होते हुए दिल्ली भी जाना है।'

गोपालदास बरैया और गणेशप्रसाद वर्णी की जनेता धर्म-कोख आज बाँझ होने की हद पर खड़ी है। क्या समाज के सर्वेश्वरो को इसकी चिन्ता कभी व्यापी है ? कतई नही। कान पर जूँ तक नही रेंगती, क्योकि यह व्यवस्था गैर सामाजिक और गैर जिम्मेवाराना है। यह समाज है ही नही, केवल व्यक्त स्वार्थों के पारस्परिक गठबन्धन की दुरभिसन्धि है।

'अवश्य जाओगे। पर क्या खाली हाथ जाओगे ? हमारे गत वर्षावास मे इन्दौर मे श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ-प्रकाशन समिति की स्थापना हुई थी। उसके तत्त्वावधान मे ही तुम्हें महावीर-उपन्यास लिखना है। उसके मंत्री बाबूलाल पाटोदी कल सबेरे यहाँ पहुँच रहे हैं। उनके आने पर यह व्यवस्था उन्हें सहेज दूंगा। उनसे मिलकर चले जाना।'

....अद्भुत दैवयोग सामने उपस्थित हुआ। मैं चकित रह गया। बाबूभाई तो मेरे इन्दौर-काल के स्नेही और मित्र रहे हैं। युग बीत गये, उनसे भेट न हुई। पिछले बीस-पच्चीस वर्षों मे वे अपनी तेजोदृप्त वाणी से मध्यप्रदेश की राजनीति के तख्ते हिलाते रहे और मैं अपने सृजन की चोटियो पर आरोहण करने के संघर्ष के दौरान, अनेक अवरोधो की अन्धी घाटियो मे अकेला टकराता रहा। बाबूभाई आखिर राजनीति की वारागना को तिलाजलि देकर, उसके अनेक प्रेमियो के व्यग्य-बाणो की अवहेलना करते हुए भगवान महावीर के धर्म-शासन की सेवा मे समर्पित हो गये। और मैं द्विजन्म पाकर उन्ही भगवान् के चरितगान का सकल्प लेकर श्री महावीरजी आया था।

अगले दिन सबेरे ही, चाँदनपुर के त्रिलोक-पिता के श्रीवत्सल चरणो मे, जब बरसो बाद हम दोनो भाई आलिंगनबद्ध हुए, वात्सल्य-प्रीति का वह लग्न-क्षण मेरी चेतना की शाश्वती मे अमर हो गया है। ऐसे मिले मानो जनम-जनम के बिछुड़े मिले हो। इसी को तो कहते है दिव्य सयोग, और श्रीगुरु-कृपा। हमने मिलकर जाने कितने पुराने सस्मरण दोहराये। बाबूभाई उन्मेषित होकर बोले 'वीरेन भाई, केवल तुम्ही वह लिख सकते हो, जो महाराजश्री चाहते है। और सुनो मेरी बात, 'मुक्तिदूत' से बहुत-बहुत आगे जाएगा, तुम्हारा यह उपन्यास। मैं जानता हूँ, तुम्हारी यह कृति तमाम दुनिया मे जाएगी, विश्व-विख्यात होगी।' मैं सर से पैर तक रोमाचित हो आया, अपने एक स्नेही भाई की यह वात्सल्य-गर्वी वाणी सुनकर। लगा कि जैसे स्वयम् मेरी नियति बोल रही है।

आज जब उपन्यास समाप्ति की ओर है, बाबूभाई के वे ज्वलन्त शब्द स्मरण करके कृतज्ञता से मूक हो जाता हूँ। विश्व-ख्याति की बात मैं नहीं जानता, वह मेरा लक्ष्य भी नही। पर भगवान् महावीर ने मेरी क़लम से उतरकर धरती पर चलना स्वीकार

किया है, ऐसा तो मुझे अचूक प्रतीयमान हो रहा है। मेरा इसमे कोई कर्तृत्व नही ' यह केवल उन प्रभु की जिनेश्वरी कृपा का खेल है।

मुनिश्री के आदेशानुसार, तीसरे पहर हम दोनो उनके निकट उपस्थित हुए। व्यवस्था की बात पर मैं विचित्र असमंजस मे पड गया। दूध का जला छाछ को भी फूंककर पीता है। इसी सन्दर्भ मे जैन समाज से सम्बद्ध अपने कई विगत अनुभव मुझे स्मरण हो आये। मेरे भीतर अवज्ञा और अपमान के कई पुराने जख्म टीस उठे। मै झिझकता-सा बोला

महाराज श्री कुछ कहना चाहता हूँ ।.. '

'दिल खोलकर कहो दिल मे कुछ दबा रहे यह ठीक नही।'

आश्वस्त हुआ और भावाविष्ट होकर बोला

भगवन इस आना-पाई-सिक्के हिसाब-किताब की वणिक् व्यवस्था से, मेरी कभी बनी नही और बनेगी भी नही। मैं ठहरा आत्मजात ब्राह्मण, किसी ऋणानुबन्ध से योगात् वणिक्-वश म जन्म पा गया। पर वणिक नही हो सका, ब्राह्मण ही रह गया। और इमे मैं अपने मानव-जन्म की धन्यता मानता हूँ।'

मुनिश्री शान्त, समाहित भाव से बोले

'सो तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। इसमे सन्देह की कहाँ गुजाइश है। इसी से तो मुझे तुम्हारी जरूरत है। ब्राह्मण-श्रेष्ठ इन्द्रभति गौतम की प्रतीक्षा मे तीर्थंकर महावीर की दिव्यध्वनि तक रुकी रही ?'

मुझे सुदृढ सम्बल प्राप्त हो गया। मैंने निर्भीक भाव से निवेदन किया

' हिसाब-किताब से चलना मेरे वश का नही। यहाँ तो दान भी ठीक-ठीक गिनकर दिया जाता है बही-खाते मे पाई-पाई लिखा जाता है, और उस पर दाता के नाम का शिलालेख जडकर, उसमे ठीक-ठीक रकम आँकी जाती है। और बदले मे अगले जन्म मे मिलने वाले पुण्य का इन्श्योरेंस और बक-बलस भी चक्रवृद्धि-ब्याज सहित गिन लिया जाता है ।'

'जानता हूँ कहे जाओ अपनी बात। तुम्हारे दर्द को सुनना चाहता हूँ।'

'इस समाज ने जिन-शासन की परम्परा के एकमात्र ज्ञान-सवाहक पडितो को अपने द्वार के भिखारी भामटे (ब्राह्मण के लिए महाजनो का तिरस्कार सूचक शब्द) बनाकर छोड दिया है। उदर-पोषण की उनकी विवशता का दुरुपयोग करके हमने उन्हे श्रीमन्तो के चाटुकार और भाट बना दिया। बुन्देलखण्ड की पडित-रत्न-प्रसविनी धरती इसकी साक्षी है। बुन्देलखण्ड की पडित-जनेतृ माओ के आँसू और जख्म इसके साक्षी है। ' नतीजा आखिर यह हुआ कि आज के जागृत बुन्देलखण्ड का जैन युवा धर्म-शास्त्र

(शेष पृष्ठ ९२ पर)

रोशनी का इतिहास

□ उमेश जोशी

दशन धम कला साहित्य और सस्कृति की
अखण्ड ज्योति है युगपुरुष श्री मुनि विद्यानन्द
जो अपनी दिव्य रश्मियों म प्रकाशित कर रह है
धुधलकों की गहन घाटियों को
आत्मिक सौन्दय की उज्ज्वल ज्योत्स्ना को
धरती पर विकीण करत हुए।
प्रज्ञा जहां दम तोड चुकी हो
कमठता का शव पडा हुआ सड रहा हो
युग के पौरुष का अभिमन्यु
प्रवञ्चनाओं क चक्रव्यूह मे फँसकर
जहाँ मरता है रोज
पक्षपाती कौरवो के सभागार मे
लालची नीतियों के शकुनि क इगितों पर
व्यभिचारी दु शासन शिष्टता को कर रहा हो नग्न
अपनी हैवानियत के शिला खण्ड पर बैठकर
और जहाँ समाज को ब्रेन-कैंसर ने दबोच लिया हो
सम्वेदनाओं को जडता के चौखट मे जडते हुए।
वहाँ इन्द्रधनुषी आलोक के शीषस्थ हस्ताक्षर

मुनि विद्यानन्दजी का दिव्य प्रवचन
अखण्ड ज्ञान का अमृत कलश हाथ म थामे हुए
ऊपर उठता है धरती के सम्पूर्ण कुहरे को
अनल मे ढकनते हुए
उस सतह तक---
जहा स यम शिवम सु दरम अपना मस्तक
गौरव के साथ ऊँचा किये खड है
जीवन के प्रागण म
दिव्यता की खिडकी खोलत हुए।
ज्ञान सृष्टि के विस्तारक !
तिरस्कृत अर्थो के सरक्षक
युग क सस्थापक
रोशनी क प्रस्ताता
मुनि विद्यान दजी तुमको कोटि कोटि प्रणाम !
ओ मनुज त्व क सगम !
तुम सदैव अर्थो को दते रहे जीवन
जीवन को देत रहे पथ
तुमने कभी नही स्वीकारी लक्ष्मण रेखाओ की मर्यादा
और सजन क पहिये को घुमाते हुए
तुम निरन्तर बढ़त जा रह हो खाली घटा की भीड म
युग का कटी बाहा को जोडते हुए।
आ रोशनी क इतिहास !
तुम आस्था की सास बनकर
हर देहरा पर पहरा द रहे हो
जागरण की मीनार बनाते हुए।
विधाता के अछूते ग्रन्थ !
तुम हमशा सत्य सौन्दय क माथ पर
वसुधैव कुटुम्बकम को चिपकाते रहे
अवनि पर धम की विराटत्व का चोगा पहनात हुए।
मेरे अन्तम क महान सौन्दय !
तुम्हारे प्रवचन सकल्पो क जनक है
द्रवित और अदम्य
हजार हजार दरों पर अमद्य
अपराजय प्रहरी।

○ ○

वे युग-दृष्टा मुनि हैं

मुनिजी अतीत के उत्तम, शाश्वत, सदा उपयोगी विचारो को छाँट लेते हैं, कुछ जो मैले हो गये हैं, उन्हें झाड-पोछते हैं और जो सड-गल गये हैं, उन्हें हटा देते है। यह है अतीत को वर्तमान के साथ जोडना ताकि वह उज्ज्वल भविष्य का पोषक बन सके, वर्तमान को अस्वस्थ करने वाला न रहे।

□ कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

मुनि विद्यानन्दजी को मेरे नगर मे आये काफी दिन हो गये थे। जैन समाज मे उनके आने से एक मांगलिक त्योहार-सा हो रहा था। जो भी जैन बन्धु कही मिलता उच्छ्वास के साथ उनकी चर्चा करता और अन्त मे कहता-- आप नही गये उनके दर्शन करने ? उनके प्रवचन मे तो हजारो आदमी प्रतिदिन आते हैं।

इसके बाद भी उनके प्रवचन मे जाने की मेरी इच्छा नही हुई। मेरा बचपन दयानद के रूढि विद्रोही वातावरण मे बीता और मेरी जवानी एक नयी सामाजिक क्रान्ति के लिए गाधीजी की छाया मे सघर्ष करते पनपी। मैने अपने जीवन मे अनेक रूढियो को तोडा और उसके लिए समाज के पुराणपथी वर्ग के साथ टक्कर ली। इन सब कारणो से धर्म के कर्म-काण्डी रूप मे मेरी कभी आस्था नही हुई और जैन मुनियो की नग्नता मेरे मन के निकट एक कर्मकाण्डी रूढि-सी ही रही, दिगम्बरत्व की विश्वात्म भावना नही बन पायी। एक

कारण और भी था । मैं भारतीय दिगम्बर जैन परिषद के एक अधिवशन मे हरिजनो के मदिर प्रवश पर एक जैन मुनि की प्ररणा से आयोजित आक्रोशपूण उपद्रव देख चुका था और प्रधानमत्री के कन्ध पर हाथ रख कर एक दूसरे जैन मुनि के फोटो खिचाने के शौक की चर्चा भी सुन चुका था । इसलिए भी जाने की प्ररणा नही हुई पर एक सयोग ने एक दिन अचानक मुझ उनके निकट पहुँचा दिया ।

मरे परम बन्धु श्री साहू शातिप्रसादजी जैन और श्रीमती रमा जैन अचानक मेरे घर पधारे । व दिल्ली स मनिजी के दशन करने आये थे और जैन बाग जा रहे थ । मुझ उनका साथ सदा सुख देता है इसलिए उनके कहते ही मैं भी साथ हो लिया । ढलते पहर का समय था तब भी वहाँ नगर के काफी जैन बन्धु थे । मै उनसे बात करने लगा और साहू दम्पत्ति मुनिजी के पास कमरे मे चले गये । थोडी देर म मुझ भी बुलावा आया तो मैं भीतर गया । मुनिजी लकडी के लम्ब पटरे पर बैठ थे । कानो न सुना— आइये प्रभाकरजी !

मैं गभीरता के अभद्य शिखर की भावना से कमर मे घुसा था पर यहाँ तरल-तरगित गगा थी भावना ही बजर नही महकता उपवन था । वाणी मयत पर बहद मधुर वाता वरण एकदम सौम्य । मैने मुनिजी की तरफ देखा उनकी मस्कान बिखरी कि मै श्रद्धा के बोझ से दबते दबते बचा—परम आत्मीय परम स्नेहिल परम पारदर्शी एक परम मानवात्मा आत्मसाधक मेरे सामने थ । उनकी नग्नता की नही मझ समग्रता की ही अनभूति हुई । साहूजी और रमाजी उनसे बात करत रह पर मेरा ध्यान उनम नही था । मै जीवन भर अकिचनो की सेवा का यज्ञ करता रहा हू अकिचनता की दीनता मैने देखी है भोगी है पर मेरे सामने एक एसी अकिचनता इस समय थी जिसके चरणा मे प्रणत हो कुबर का कचन अपने जीवन की कृतायता अनभव करता है ।

चलत समय उन्हान आप ही कहा— और किसी दिन आपस बात हागी। और फिर वही मुस्कान । देश के अधिकाश सत और नता दोनो ही प थकना बाध को दूसरा से अपनी श्रष्ठता क दम्भ का अपनी शक्ति मान कर अपने जीवन-व्यवहार मे उसका प्रदशन करते रहे है पर मुनि विद्यान दजी की सन्निधि म तो मझ भदभाव की भनक भी नही मिली । मझ लगा ही नही कि मै उनसे आज पहली बार मिला ह । मझ लगा कि मैं उनके साथ जाने कब से मित्रता और तन मन की बात करता रहा हूँ जबकि अभी तक उनस मेरी कोई बात ही नही हुई थी मैने अपने से कहा— विद्यान दजी को धर्म के गढ सिद्धान्ता म लाख दिल चस्पी हो उनके लिए मनष्य का महत्व कम नही है वह उनकी दष्टि म पूणतया मह वपूण है और वही व दूसरे मुनियो से भिन्न है ।

फिर ता बार-बार उनकी निकटता मिली प्रवचनो मे भी और वार्तालाप म भी । जब वे प्रवचन के लिए अपने आसन पर बैठते है तो उससे पहले श्रोताओ की भीड अपना स्थान ग्रहण कर चकी होती है । बैठते ही सब पर व एक दृष्टि डालते हैं और आश्चर्य है कि

एक-एक को पहचान लेते हैं। एक दिन मैं जरा देर से गया और अपने नागरिक सस्कार के अनुसार सबसे पीछे बैठ गया। मेरे और उनके बीच मे दूरी भी काफी थी और मानव-मुण्डो की कमी न थी, पर उनके आसन पर आने के थोडी देर बाद ही एक सज्जन ने आकर कहा–"महाराज आपको उधर बुला रहे हैं। मैं चकित रह गया।

एक दिन आकर बैठते ही व्यवस्थापक से बोले–"घडी रखते ही हो यहाँ, उसे देखते नही?" घडी बन्द थी। वे समय का पूरा ध्यान रखते है। प्रवचन आरभ करने से पहले तीन बार ओम् का उच्चारण करते हैं, जैसे स्वय भी ध्यान को केन्द्रित करते हो और श्रोताओं के ध्यान को भी। मैंने बहुतो से ओम् का नाद सुना है पर ऐसा कही नही, कभी नही–सचमुच एक बार तो मनुष्य बाहर से भीतर सिमट जाता है।

अपने मच के वे प्रवक्ता भी होते है और अध्यक्ष भी, जरा भी अव्यवस्था उनकी सभा मे नही हो सकती। वे इस अर्थ म कठोर व्यवस्थापक है कि जरा भी अव्यवस्था नही सहते पर उनका यह असहन सहन से भी अधिक मधुर होता है। बीच-बीच मे वे श्रोताओ को हँसाते भी खूब है जैसे-चतुर माता रोगी बालक का दवा खा लेने के बाद बताशे देती है।

उनके मच पर आने के और प्रवचन आरभ करने के बीच मे कुछ समय हो तो उसम भी वे पढते रहते है और पढते-पढते भी मेरी-भावना' का पाठ आरभ हो जाए तो वे पुस्तक भी पढते रहते हैं और मेरी भावना के पाठ मे बोलते भी रहते है-मधुर और तल्लीन स्वर। प्रवचन के अन्त मे भी भजन गाते है गवाते है जैसे वे सबको जीवन मे साथ लिये चल रहे हो। ठीक भी है-आत्म मगल मे लोकमगल ही तो उनकी साधना है। प्रवचन के बाद श्रोता शान्त स्फूर्ति लेकर लौटते है।

ईसाई शिष्टाचार के अनुसार धर्मगुरु पोप के लिए नागरिको के अभिवादन का उत्तर देना आवश्यक नही है पर पोप तृतीय सबके अभिवादन का उत्तर देते थे। किसी ने उनसे कहा कि आप ऐसा क्यो करते हैं? उनका उत्तर था–"अभी मुझे पोप बने इतने अधिक दिन नही हुए कि मै आदमी ही न रहूँ!" मुनि विद्यानन्द जी दिगम्बरता तक पहुँचने के बाद भी आदमी हैं। वे सबके अभिवादन को कभी अभय मुद्रा से और कभी मुस्कान से अपनी हार्दिक स्वीकृति देते है, सक्षेप मे मानव मे उनकी आस्था है और असाधारणता से साधारणता मे उतर आना उनकी सहजता है। वे विशिष्ट है, वे शिष्ट है और यही वे सबको इष्ट है।

उनका अध्ययन उनके प्रवचनो से सिद्ध है कि बहुत व्यापक है। जितना उन्होने पढा, बहुत कम ने उतना पढा होगा। जब उनके विराट अध्ययन की झाकी मुझे मिली तो मुझे

अपने ही देश के एक सज्जन याद आ गये जिन्होने एक दर्जन से अधिक विषयो मे एम ए किया है । मैं जब जवान था तब मे पत्रो मे समाचार पढता रहा हूँ कि उन्होने इस वर्ष इस विषय मे एम ए पास किया है और अब वे इतने विषयो मे एम ए हो गये । पढ़ते-पढते मेरी उम्र ढलान पर आ गयी । आरम्भ म तो एक दो बार उनके अध्यवसाय मे आदर हुआ, पर बाद मे लगा कि यह एक झक है । पढना पटना पढना यह कोई कृतार्थता नही है जीवन की । दूसरे शब्दो मे यह एक बौद्धिक जडता भी है । मेरे मन का प्रश्न था—क्या मुनि जी के लिए पढना भी एक हाबी है ?

निकटता म मैंने देखा परखा कि उनके अध्ययन का एक गहरा लक्ष्य है । वे अपने अध्ययन म पुस्तक की नयी पर्ते उन गाटो को खोलते है जिनमे जन मानस उलझा हुआ है । वे इस उलझन का मूलज्ञान है स्पष्टता पाकर स्पष्टता देते है । क्या इतना ही ? नही इससे भी आगे हम कभी-कभी अपने सब कपडे निकाल कर सामने रखते है । फिर उनका सावधानी से वर्गीकरण करते हैं । अच्छे कपडो को साफ तह करके उन्हे एक तरफ लगाते है जिन्हे अच्छे समय पर पहनेगे नम्बर दो के कपडो को धुला कर घरेल उपयोग के लिए एक तरफ करते है और कुछ को एक तरफ रखते हैं कि ये अब हमारी रुचि के उपयोग के योग्य नही रहे ।

मनिजी भी अतीत के उत्तम शाश्वत सदा उपयोगी विचारो को छाँट लेते है कुछ जो मैले हो गये है उन्हे झाड पोछते है और कुछ जो सड गल गये है उन्हे हटा देते है । यह सब यही नही है यह है अतीत को वर्तमान के साथ जोडना ताकि वह उज्ज्वल भविष्य का पोषक बन सके वर्तमान को अस्वस्थ करने वाला न रहे । महापुरुष नयी बात नही कहते वे पुराने की नयी व्याख्या करते है । मनि विद्यानन्दजी का अध्ययन भी अतीत के विचारो की नयी व्याख्या की खोज है ।

क्या इस खाज का उद्देश्य जैनधर्म के प्रति उनकी कट्टरता का पोषण देता है । दूसरे शब्दो म क्या उनका जीवन-क्रम साम्प्रदायिक है ? और भी साफ-साफ कहूँ क्या वे प्रचारक श्रेणी के मनुष्य हैं ? उनके साथ गहरी एकता साध कर मैंने इन प्रश्नो पर अध्ययन विवेचन किया है और जाना है कि व जन्मजात जैन नही है । उनका जन्म वैष्णव ब्राह्मण वश मे हुआ था जैनधर्म उन्होने जानबूझ कर अपनाया है यह उनके जीवन की क्रान्ति है जो व्यक्तित्व को जडमूल से बदलती है ।

इस क्रान्ति म पहले उनका मानस राज्य क्रान्ति से ओतप्रोत था । वे इधर न आते तो उधर जाते । १९४० म उनकी गिरफ्तारी के लिए वारट निकला था । उसे पुलिस वाले के हाथ से छीन कर फाड फेक कर व भीड म गायब हो गये थ और थानेदार इस किशोर की चतुर चपलता को देखता ही रह गया था ।

वे प्रचारक नही है, साम्प्रदायिक नही हैं और सच कहूँ, वे राष्ट्रीय भी नही है, वे तो मानवता के मार्ग-साधक है। कहूँ, विश्व-धर्म के अन्वेषक है, उस विश्व-धर्म के, जो मानव को युद्ध के त्रास से त्राण दे सके। इसके लिए उनके चिन्तन का मध्यबिन्दु अहिंसा है; अहिंसा यानी आचरण की शुद्धता, सहिष्णुता यानी सम्यक् चारित्र। वे विश्वात्मा मानव हैं दिगम्बर हैं, उनका जीवन-क्षेत्र जैन समाज है, और कर्म-क्षेत्र भारत है। वे धर्म के साथ देश की चर्चा करते हैं और देश को वैचारिक रूप मे विश्व से जोडते हैं। उनका उद्घोष है–विश्वधर्म की जय हो।

उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है युक्तियुक्त है, उनका जीवन परम्परा का प्रतीक है, उनका चिन्तन अन्धश्रद्धा के अन्धकार में प्रदीप है। उनकी वाणी अर्थगर्भ होती है, फिर भी ज्ञान की जटिलता से दूर, अनुभव की सरलता से भरपूर।

एक दिन मैं-वे बातें कर रहे थे। मैंने कहा–"मैं सिद्धि से साधना को अधिक महत्व देता रहा हूँ, क्योंकि साधना ही मानव की सीमा है, सिद्धि तो फल है, जो उसके हाथ नही।" बोले–"लक्ष्य से कर्तव्य की दिशा बनती है।" मैं विमुग्ध हो उन्हें देखता रहा। ठीक ही है साधना की गति सिद्धि-अभिमुखी ही तो होगी। रात में भोजन न करने को जैन लोग बडा व्रत मानते है, पर मुनिजी की दृष्टि मे इस महत्त्व का आधार स्वास्थ्य ही है।

एक दिन राम पर बोले, तो अतीत की नयी व्याख्या की चाँदनी ही छिटक गयी, रामायणो की प्रदर्शनी हो गयी रामायण का युग-संस्करण ही तैयार हो गया।

○ शबरी ने झूठे बेर राम को नही दिये थे। उसने बेर खा-खा कर राम के लिए उत्तम वृक्षो से मीठे बेर चुने थे, जैसे हम टोकरे मे से एक आम खाकर आम खरीदते है कि हाँ, इस वृक्ष के आम मीठे हैं।

○ हनुमान पवन के पुत्र नही थे 'पवन-सुत' नाम का अर्थ है वे पवनजय के पुत्र थे, उनका सूर्यपुत्र नाम उनके मामा के कारण पडा।

○ हनुमान बंदर नही थे। उन्होने नगर मे भिक्षु का रूप धारण कर भ्रमण किया था और बाद मे बंदर का रूप ग्रहण किया था। वे वेश बदलने मे प्रवीण थे।

○ हनुमान पहाड उठा कर नही लाये थे जडी-बूटियो का ढेर उठा लाये थे। बात मुहावरे की है–'अरे तू तो पहाड ही उठा लाया!' मतलब है ढेरो सामान उठाना।

○ रावण के दस सिर नही थे। उसके कण्ठे मे दस रत्न थे। उनमे उसका सिर चमकता देख, उसे किसी ने लाड मे दशानन कहा। हमारी भाषा मे वैसा दृश्य जैसा मुगले आज़म फिल्म मे शीश महल का था।

और पूर्वाग्रहो से मन की, विचार की, चिन्तन की मुक्ति का चमत्कार ही सामने आ गया, जब उन्होने कहा—"रावण भी महान् था कि उसने नाक काटने के बदले नाक नही काटी।"

मुनि विद्यानन्द एक मुक्ति-साधक, एक मुक्त साधक, एक समन्वयी मानवात्मा, यानी आध्यात्म के साथ कलाकार। कलाकार, जिसके हर कर्म मे व्यवस्था, हर व्यवहार मे व्यवस्था, जिसके पास कुछ नही, पर सब कुछ, जो किसी का नही, पर सबका, जिसका कोई नही, पर जिसके सब अपने, संक्षेप मे जीवन के सौंदर्य-बोध और शक्ति-बोध से अनुप्राणित युग-सन्त। □□

एक सन्त
एक साहित्यकार
एक सूत्रकार

शब्द-कोशो मे 'सूत्र' शब्द के अनेक अर्थ दिये गये है, सूत, तागा, जनेऊ, नियम, व्यवस्था, रेखा, थोडे शब्दो मे कहा हुआ पद या वचन, जिसमे बहुत और गूढ अर्थ हो मुनिश्री हर दृष्टि से एक सफल सूत्रकार हैं।

☐ नरेन्द्रप्रकाश जैन

सरल शान्त एव सौम्य व्यक्तित्व के धनी पूज्य मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज सही अर्थों मे एक उत्कृष्ट सन्त है। आचाय समन्तभद्र स्वामी की कसौटी पर व खरे उतरते हैं। वे निर्विकार निराकरण और नि मग है। ज्ञान ध्यान और तपस्या उनकी दिनचर्या है। उनकी मनोहर मुखमुद्रा एव प्रकृष्ट प्रवचन कला म चुम्बकीय प्रभाव है। उनकी धम-सभा या ज्ञान-गोष्ठी मे पहले पहल जो भी गया उसका एक ही अनभव रहा——

यह न जाना था कि उस महफिल म दिल रह जाएगा
हम यह समझत थ चल आयेग दमभर दखकर

उनक चेहरे मे ज्ञान का तेज टपकता है तथा वाणी मे बहता है अध्यात्म रस का निझर। मौन रहकर भी अपनी आँखा से वे बहुत कुछ बालते से जान पडते है। पूज्यपाद स्वामी न किमी निग्रन्थ सन्त का वणन करत हुए लिखा है– अवाग्विसग वपुषा मोक्ष-माग निरूपयन्त –अर्थात वचन से बोले बिना शरीरमात्र स माक्ष-मार्ग का निरुपण कर रह थे। पूज्य मुनिश्री एस ही अलौकिक सन्त के पर्याय है। उनकी मगति मे रहकर लगता है माना हम भूतबलि पुष्पदन्त या उमास्वामी सरीख किसी चमत्कारी पूर्वाचाय के पास बैठे हा। न जाने उनम ऐसा कौन-सा जादू है कि बच्चे और बूढ तथा जवान और प्रौढ सब उनके पास बैठकर अपने को कृतकृत्य समझने लगत है!

जैन साहित्य एव सस्कृति अपने पूर्वगौरव को पुन कैसे प्राप्त हो, बस यही एक चिन्ता उन्हे चौबीसो घण्टे अति व्यस्त रखती है। वे एकान्तप्रिय आत्म-साधक हैं। ज्ञान की भूख उनमे बहुत है। ज्ञान-चर्चा मे उन्हें आनन्द आता है 'अज्झयणमेव झाण'—पूज्य कुन्दकुन्दस्वामी की इस उक्ति को उन्होंने अपने जीवन मे उतार लिया है। तीर्थंकरो की वीतराग वाणी के प्रचार-प्रसार की जैसी धुन उन्हें है, वैसी इस सदी के किसी भी दिगम्बर जैन सन्त मे शायद ही रही हो। बहुमूल्य दस्तावेजो (दुर्लभ हस्तलिपियो, रेखाचित्रो, पुस्तको, गवेषणात्मक टिप्पणियो आदि) के ढेर मे बैठे हुए वे साक्षात् सरस्वती-पुत्र ही लगते हैं। कुछ क्षणो के उनके साहचर्य से ही ज्ञानीजनो का ज्ञान अधिक समृद्ध हो जाता है। उनके चरणो मे पहुँचकर तत्त्वज्ञान-शून्य किन्तु श्रद्धालु लोगो को भी लगने लगता है कि उनके भीतर से कोई प्रकाश-किरण मानो बाहर आने के लिए मचल रही है। 'दीप से दीप जले' की क्रिया घटित हुई सबको अनायास ही अनुभूत होती है। यही इस सन्त के दिव्य व्यक्तित्व का कमाल है।

सन्त वह व्यक्ति कहलाता है जिसकी कथनी और करनी मे कोई अन्तर शेष नही रह जाता। मुनिश्री जो कहते है वही करते है। करते पहले है, कहते बाद मे है। वे शान्त स्वभावी है। उन्होने क्रोध को जीत लिया है। माया-मोह से वे कोसो दूर है। मान उन्हें छू भी नही गया है। चोटी से एडी तक वे सदाचरण के रस मे डूबे हुए हैं इसीलिए उनमे माधुर्य है। वे 'मनस्येक, वचस्येक, वपुस्येक महात्मनाम्' की कोटि मे आते हैं। मराठी मे एक कहावत है—"जैसा बोले तैसा चाले त्याची वदावी पाउले'—जैसा बोले वैसा यदि चले भी तो उसके चरणो की वन्दना करना चाहिये। इस दृष्टि से पूज्य मुनिश्री नि सन्देह एक वन्दनीय सन्त है।

एक साहित्यकार

मुनि वह है जो मनन करता है। पूज्य विद्यानन्दजी महाराज का पूरा समय तत्त्व-ज्ञान के मनन-मथन मे ही बीतता है। इस मथन से जो मोती निकलते है, उन्हे वे अपने पास न रखकर सारी दुनिया को बाँट देते हैं, यह ठीक भी है, क्योकि वे उन थोडे-से लोगो मे से हैं, जिनका जीवन अपने लिए नही, सर्वहिताय सकल्पित है।

चिन्तन-मनन के हितकारी परिणाम को शब्द-बद्ध करने वाला व्यक्ति साहित्यकार कहलाता है। पूज्य मुनिश्री भी अपने विचारो को समय-समय पर शब्द-बद्ध करते रहते है। वे वाणी और लेखनी दोनो के धनी है। एक ओर जहाँ उनकी वक्तृता मे सरलता, एव प्रवाह पाया जाता है, वही दूसरी ओर उनकी रचनाओ मे ओज एव प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं। उनकी भाषा प्राञ्जल तथा शैली मधुर है। उन्होने बहुत-कुछ लिखा है और जो भी लिखा है वह स्थायी महत्त्व का है। उनकी कलम युग की निर्णायक रेखा है। भावी जैन इतिहासकार वर्तमान काल को 'विद्यानन्द-युग' के नाम से अकित करेंगे, यह बात सन्देहातीत है।

लखन चिन्तन की छाया है। मनिश्री न अपन तप पूत चिन्तन स समुदभत विचारो को लिपिबद्ध किया है। पिच्छि कमण्डल तीथकर वद्धमान विश्वधम की रूपरेखा अनेकान्त-सप्तभगी स्याद्वाद कल्याण मुनि और सिकन्दर आदि उनकी महत्वपूण रचनाए है। मत्र मूर्ति और स्वाध्याय गुरु सस्था का महत्व अपरिग्रह स भ्रष्टाचार उन्मलन दैव और पुरुषाथ माने का पिजरा अभीक्ष्णज्ञानोपयाग सुपुत्र कुलदीपक श्रमण सस्कृति और दीपावली इश्वर क्या और कहाँ है पावन पव रक्षाबन्धन सप्त व्यसन आदि उनके अनेक सारगर्भित निबन्ध भी पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुक है। अमृत वाणी मे उनक मगल प्रवचन सगृहीत है। दिगम्बर जैन साहित्य म विकार शीषक उनकी एक लघ पुस्तिका म समीक्षा की स्वस्थ विधा का निवाह हुआ है। परिष्कृत लेखनी से प्रसूत इन सभी कृतियो से मुनिश्री के गहन स्वाध्याय अभिव्यक्ति कौशल एव बहुज्ञता का परिचय मिलता है। उनकी रचनाओ म उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनका चिन्तन सम्यक चारित्र से अनप्राणित है। यही वजह है कि उनक द्वारा रचित साहित्य को पढते समय सामान्य पाठक एक मानसिक क्रान्ति के दौर से गुजरता है तथा पढने के बाद स्वय को पहल स अधिक शान्त और निराकुल अनुभव करने लगता है। मुनिश्री के तात्त्विक निष्कर्षों स भव भ्रमजाल म फँसे हुए प्राणियो को समाधान मिलता है। उनकी साधना की कुजी मुक्ति का द्वार खोलन म समथ है।

मुनिश्री न जितना स्वय लिखा है उससे कई गुना दूसरो से लिखवाया है। व एक व्यक्ति नही सस्था है। साधका क लिए व प्ररणा के पुज है। उनका चिन्तन निष्पक्ष

एव सम्प्रदायातीत है । इसीलिए अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार जैन-जैनेतर का भेद भलकर उनके मार्गदर्शन मे सृजन-रत हैं तथा अपने महत्वपूर्ण कृतित्व से जैन भारती का भण्डार भर रहे है ।

मुनिश्री बहुमुखी प्रतिभा के धनी है । साहित्य की सभी विधाओ के विकास मे उनकी रुचि है । काव्य,निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, सस्मरण , रेडियो-रूपक, रिपोर्ताज के साथ ही साथ कला, सगीत और इतिहास के लेखन एव अनुसधान पर भी उनका विशेष ध्यान है । उनकी पावन प्रेरणा से स्थापित श्रमण जैन भजन प्रचारक सघ, दिल्ली, वीर निर्वाण-ग्रन्थ-प्रकाशन समिति, इन्दौर, विश्वधर्म ट्रस्ट, कोटा वीर निर्वाण भारती, मेरठ आदि सस्थाओ की रचनात्मक प्रवृत्तियो मे इसका प्रमाण निहित है । दिगम्बर जैन समाज म आज तक साहित्य-सृजन के प्रति घोर उपेक्षा का भाव व्याप्त रहा है, मुनिश्री अब इस अभाव को आँधी की गति से दूर करना चाहते है । सम्प्रति समाज मे साहित्यिक जागरण की जो लहर दिखलायी पड रही है, उसका सम्पूर्ण श्रेय मुनिश्री को ही है ।

नि मन्देह पूज्यश्री साहित्य एव चरित्र के यशस्वी स्नातक है । वे एक अद्वितीय शब्द-शिल्पी है । उन्होंने शब्दो की उपासना की है, आज शब्द उनकी उपासना के लिए प्रस्तुत हो रहे है ।

एक सूत्रकार

शब्द-कोष मे सूत्र शब्द के अनेक अर्थ दिये हुए है--सूत, तागा, जनेऊ नियम, व्यवस्था रेखा तथा थोडे शब्दो मे कहा हुआ पद या वचन जिसमे बहुत और गूढ अर्थ हो । मुनिश्री हर दृष्टि से एक सफल सूत्रकार है । तागा फटे वस्त्र को जोडता है, कतरनो से उपयोगी परिधान बनाता है । मुनिश्री ने मानव-हृदयो को परस्पर जोडा है । भाषा, जाति एव सम्प्रदायजनित भेद-भावो को भुलाने पर वह हमेशा जोर देते हैं । 'मनुष्यजाति रेकैव जातिकर्मोदयोदभवा'– जाति नाम कर्म के उदय मे उत्पन्न हुई मनुष्य-जाति एक है-- पूज्यपाद स्वामी के इस सन्देश को वे निरन्तर दुहराते रहते है । तागा रग-बिरगे फूलो को गूंथकर माला के रूप म प्रस्तुत करता है और वह माला देवता के गले का आभूषण बनती है । मानवमात्र के शुभचिन्तक मुनिश्री ने नानावर्णजाति-सम्प्रदाय के लोगो को एकता का सन्देश दिया है और इस एकता से मानवता का शृगार हुआ है । उनकी विराट धर्म-सभा उस उद्यान का दृश्य प्रस्तुत करती है , जिसमे भाँति-भाँति के आकार-प्रकार वाले बहुरगी मुकुलित पुष्प अपनी सुगन्ध से पर्यटको का मन मोह लेते है ।

मुनिश्री ने समाज को एक व्यवस्था-रेखा (मर्यादा) दी है । वह स्वय सयम के पुजारी है, दूसरो को भी सयम का पाठ सिखाते है । मनुष्य की दैनदिन क्रियाओ मे सयम की

महत्ता का प्रतिपादन वे नित्य करते है । वे नियमो के पालक है। नियमो से बँधा हुआ जीवन ही मुक्ति-लाभ करता है। जो सरिता कूल तोड देती है, वह महाविनाश का कारण बनती है। किनारो के बधन मे चलने वाली नदी सागर की गोद मे पहुँच जाती है।

मुनिश्री के मुख मे निकला हुआ एक-एक शब्द सार्थक है, निरर्थक कुछ उनके मुँह से निकलता ही नही। उनका हर शब्द एक सूत्र है। कहा गया है—

"अल्पाक्षरमसन्दिग्ध सारवद् गूढनिर्णयम् ।
निर्दोष हेतुमत् तथ्य सूत्रमित्युच्यते बुधै ।।"

अर्थात्–विद्वानो ने सूत्र का लक्षण करते हुए उसे अल्पाक्षर सन्देहरहित, सारग्राही, गूढअर्थयुक्त दोषरहित सोद्देश्य और तथ्यसहित निरूपित किया है।

मुनिश्री नपा-तुला बोलते है लाग-लपेट की बाते नही करते, सकल्प-विकल्पो से दूर रहते है सरल परिणामी है और व्यर्थ के वाद-विवादो मे अपना समय नष्ट नही करते। जिस गाव को जाना नही उसकी वे राह भी नही पूछते। हर अच्छी बात को चाहे वह जैन शास्त्रो की हो अथवा बाइबिल कुरान या वेद की स्वीकार करने के लिए वे हर समय उद्यत रहते हैं। किसी भी बात पर यह मानकर अड जाना उनका स्वभाव नही कि यही सत्य है तथा बाकी लोग जो कहते हैं वह सब का सब झूठ और निराधार है। उनके पास जमीन का एक टुकडा भी नही है लेकिन उनके दिल का रकबा बहुत बडा है। वे सम्पूर्ण विश्व को कुटुम्ब के समान समझते है। उन्होने सभी धर्मों को एक सूत्र मे पिरोया है। वे एक महान् सूत्रकार है। उन्हे शतश प्रणाम! ☐☐

'स्वाध्याय' का महत्व सर्वविदित है। स्वाध्याय ज्ञान की उपासना है। ज्ञानवान होकर चारित्र्य का पालन यथाशक्ति करना मानव का कर्त्तव्य-धर्म है। ससार और ससार स परे का ज्ञान-विज्ञान ग्रथों मे सजोया हुआ है। जो प्रतिदिन उस ज्ञान मे से थोडा भी सचय करता है वह श्रीमान्, बहुश्रुत, स्व-समयी, ज्ञानी और वाग्मी बन जाता है।

—मुनि विद्यानन्द

वाग्मी मनोज्ञ निर्ग्रन्थ

'वाग्मी' का विरुद बहुत कम वक्ताओ को प्राप्त होता है सौभाग्य की बात है कि वह आज मुनिश्री को उपलब्ध है ।

—डा दरबारीलाल कोठिया

महातपस्वी गृद्धपिच्छाचाय ने आत्मा को शुद्ध एव अकलक बनाने के लिए तप क महत्त्व और उसकी आवश्यकता पर बल दते हुए बारह तपो का विशेष नथा विस्तृत निरूपण किया है। इन तपो म एक वैयावृत्त्य तप है जा इस प्रकार के निग्रन्थो की परिचर्या द्वारा सम्पाद्य है। दस निग्रन्थो मे जहाँ आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल मघ और साधु इन नौ प्रकार के मुनियो की वैयावृत्त्य का उल्लख है वहाँ मनाज्ञ मुनियो का भी निर्देश है। तत्त्वार्थसूत्र के व्याख्याकारो ने इन दसो प्रकार के निर्ग्रन्थो की उनके गण-विशेष की दृष्टि से, निर्ग्रन्थत्व समान होते हुए भी पारस्परिक भेदसूचक परिभाषाएँ प्रस्तुत की है। इनमे **'मनोज्ञ'** निर्ग्रन्थ की परिभाषा निम्न प्रकार दी गयी है —

मनोज्ञोऽभिरूप. ।१२। अभिरूपो मनोज्ञ इत्यभिधीयते। सम्मतो वा लोकस्य विद्वत्ता-वक्तृत्व-महाकुलत्वादिभिः।१३।

विद्वान् वाग्मी महाकुलीन इति यो लोकस्य सम्मत स **मनोज्ञ**, तस्य ग्रहण प्रवचनस्य लोके गौरवोत्पादनहेतुत्वात् ।

तत्त्वार्थवार्तिक व तत्त्वार्थवार्तिक-भाष्यकार अकलक देव **'मनोज्ञ'** निर्ग्रन्थ की व्याख्या देते हुए कहते है कि जो अभिरूप है वह मनोज्ञ है, अथवा जो विद्वान्–विविध विषयो का ज्ञाता, वाग्मी–यशस्वी वक्ता और महाकुलीन आदि रूप से लोक मे मान्यता प्राप्त है उसे मनोज्ञ कहा जाता है, क्योकि उससे शासन की प्रभावना और गौरव-वृद्धि होती है।

आचार्य विद्यानन्द स्वामी ने भी तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक व भाष्य मे अकलकदेव द्वारा अभिहित 'मनोज्ञ' निर्ग्रन्थ की परिभाषा को दोहराकर उसका समर्थन किया है।

मुनि विद्यानन्दजी निश्चय ही वर्तमान काल के मनोज्ञ **निर्ग्रन्थ** है। वे विविध विषयो के ज्ञाता है, यशस्वी वक्ता है, महाकुलीन है और सुयोग्य लेखक-ग्रन्थकार है। जिन-शासन की उनके द्वारा जो आश्चर्यजनक प्रभावना एव गौरव-वृद्धि हो रही है वह सर्व-विश्रुत है। उनकी व्याख्यान-सभा मे सैकडो-हजारो नही, लाखो श्रोता उपस्थित होते और उनके प्रवचन को शान्तिपूर्वक सुनते है। उनका ऐसा प्रभावक भाषण होता है कि जैन-अजैन, भक्त-अभक्त सभी मुग्ध एव चित्रलिखित की भाँति उनके भाषण को सुनने तथा पुन पुन सुनने के लिए उत्सुक रहते है। उनका प्रवचन हित मित और तथ्य की सीमाओ से कभी बाहर नही जाता। तथ्य को वे बडी निर्भीकता और शालीनता से प्रस्तुत करते है। इन्दौर, दिल्ली, मेरठ आदि की उनकी व्याख्यान-सभाओ को जिन्होने देखा-सुना है वे जानते है कि उनका प्रवचन लाखो श्रोताओ पर जादू जैसा प्रभाव डालता है। ऐसे ही प्रवक्ता को **'वाग्मी'** कहा गया है। आचार्य जिनसेन ने युग-प्रवर्त्तक आचार्य समन्तभद्र को उनकी अन्य विशेषताओ के साथ **'वाग्मी'** विशेषता का भी सश्रद्ध उल्लेख किया है। **'वाग्मी'** का विरुद बहुत कम वक्ताओ को प्राप्त होता है। सौभाग्य की बात है कि वह विरुद आज मुनिश्री को उपलब्ध है।

मुनिजी अध्यात्मशास्त्र के ममज्ञ तो है ही, भूगोल, इतिहास, सगीत, चित्रकला आदि लोक-शास्त्र के विविध विषयो के भी विशेषज्ञ है। जब मुनिजी क्षुल्लक थे और पार्श्वकीर्ति उनका सुभग नाम था तब आपने **'सम्राट् सिकन्दर और कल्याण मुनि'** नामक जो ऐतिहासिक पुस्तक लिखी थी और जिसका सब ओर से स्वागत हुआ था, उससे स्पष्ट है कि मुनिश्री भूगोल और इतिहास मे रुचि ही नही रखते, वे उनके वेत्ता भी है। सगीत कला के आप पण्डित है यह इसीसे विदित है कि उन्होने इस विस्मृत और उच्च कोटि की कला को **'श्रमण-भजन-प्रचारक संघ'** जैसी विशिष्ट सस्था की स्थापना द्वारा सप्राण ही नही किया, अपितु उसके द्वारा इस कला के ज्ञाता और उस पर कार्य करने वाले विद्वानो को पुरस्कृत एव सम्मानित भी कराया है।

भगवान् महावीर की २५०० वी निर्वाण-शती अगले वर्ष मनायी जाने वाली है। इस अवसर पर विभिन्न योजनाओ को आपके चिन्तन ने जन्म दिया है भगवान्

महावीर के जीवन से सबधित अनेक चित्रो का अन्वेषण और निर्माण आपकी चित्र-कला-प्रतिभा का सुपरिणाम है। जैन-ध्वज का निर्धारण आपकी ही अनोखी सूझ-बूझ है, जिसे जैन-परम्परा के सभी वर्गों ने स्वीकार कर लिया है। चन्द्रप्रभ का सप्तमुखी चित्र, जो जैन दर्शन के प्रसिद्ध सिद्धान्त सप्तभगी का चित्र है, सगम देव के साथ क्रीड़ारत भगवान् महावीर का चित्र, राजकुमारावस्था मे ध्यानरत महावीर का चित्र जैसे दुर्लभ चित्र खोज निकाले और समाज के सामने पहली बार प्रस्तुत किये। अपनी कृति **'तीर्थंकर वर्द्धमान'** मे जो महावीर-कालीन भारत का मान-चित्र दिया है, वह उनके भूगोल-विज्ञान का प्रदर्शक तो है ही, चित्र-विज्ञान का भी प्रकाशक है।

पूज्य विद्यानन्दजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा यही तक सीमित न रही, वह आगे भी बढी और उसने उन्हे योग्यतम लेखक तथा ग्रन्थकार भी बना दिया। फलत. 'निर्मल आत्मा ही समयसार', 'आध्यात्मिक सूक्तियाँ', 'अहिमा-विश्वधर्म', 'तीर्थंकर वर्द्धमान', 'समय का मूल्य', 'पिच्छी-कमण्डलु', **'सम्राट् सिकन्दर और कल्याण मुनि'** जैसी कृतियाँ उनकी प्रतिभा से प्रसूत होकर 'सर्वजनाय' और 'सर्वहिताय' ख्यात हो चुकी है।

इस तरह मुनि विद्यानन्दजी को जो लोकमान्यता और लोकपूज्यता प्राप्त है उससे उन्हे आचार्य गृद्धपिच्छ के शब्दो और आचार्य अकलकदेव तथा विद्यानन्द की व्याख्याओ मे **'मनोज्ञ निर्ग्रन्थ'** स्पष्टतया कहा जा सकता है।

हम मुनिजी से तभी से परिचित है जब वे क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति थे और चिन्तन-लेखन मे सदा निरत थे। दिल्ली के लाल मन्दिर मे वे विराजमान थे, तभी उनमे साक्षात् भेट हुई थी। हमे अपनी 'सम्राट् सिकन्दर और कल्याण मुनि' कृति भेट करते हुए मेरी तत्काल प्रकाशित नयी पुस्तक **'न्यायदीपिका'** की आपने बार-बार प्रशसा की। क्षुल्लक, मुनि जैसे पूज्य एव उच्च पद पर रहते हुए भी आपकी गुण-ग्राहिता सदा अग्रसर रहती है। विद्वानो के प्रति आपके हृदय मे अगाध मान है। उनकी स्थिति और स्तर को उन्नत करने के लिए उनके चित्त मे जो चिन्ता और लगन है वह अन्यत्र दुर्लभ है। शिवपुरी मे विद्वत्परिषद् द्वारा की गयी "जैन विद्या-निधि" की स्थापना से पूर्व कई वर्षों से उनके हृदय मे ऐसी योजना का विचार चल रहा था, जिसे आपने गत महावीर-जयन्ती पर अलवर मे आमत्रित कराकर व्यक्त किया और मथुरा मे पुन आने का आदेश दिया। यहाँ भी महाराज ने अनेक लोगो के समक्ष मेरी **'जैन तर्कशास्त्र में अनुमान-विचार'** कृति की उल्लेखपूर्वक सराहना की। डा. ए एन. उपाध्ये, डा हीरालाल जैन, डा स्व महेन्द्र कुमारजी, डा स्व नेमिचन्द्रजी शास्त्री आदि विद्वानो के साहित्य-सेवा-कार्यो का सोल्लास उल्लेख करते है। यह उनकी हार्दिक गुणग्राहिता ही है।

इस गुणग्राहिता को उन्होने क्रियात्मक रूप देना आरम्भ भी कर दिया है। इन्दौर, मेरठ और कोटा मे विद्वानो को सम्मानित कर पुरस्कृत किया जाना उनको इसी गुणग्राहिता का प्रतिफल है। समाज मे विद्वत्सम्मान का जो भाव जागृत हुआ उसका एकमात्र श्रेय मुनिजी को है। मथुरा मे विद्वत्परिषद् के तत्त्वावधान मे **महावीर-विद्यानिधि** का जन्म उन्ही की हार्दिक प्रेरणा से हुआ है।

श्री बाबूलाल पाटोदी इन्दौर के शब्दो मे 'मुनिश्री अविराम दौड़ती सदासद्य उस नदी की भाँति है जो हर घाट-वाट पर निर्मल है और जो किंचित् भी कृपण नही है वे अनेकान्त की मगलमूर्ति हैं और इसीलिए प्रत्येक दृष्टिकोण का सम्मान करते है और उसमे से प्रयोजनोपयोगी निर्दोष तथ्यो को अगीकार कर लेते है।' और 'तीर्थंकर' के यशस्वी सम्पादक डा नेमीचन्द जैन की दृष्टि मे 'दर्शनार्थी जिनके दर्शन के साथ एक हिमालय अपने भीतर पिघलते देखता है, जो उसके जनम-जनम के सौ-सौ निदाघ शान्त कर देता है। वन्दना से उसके मन मे कई पावन गगोत्रियाँ खुल जाती हैं। इस तरह मुनिश्री के दर्शन जीवन के सर्वोच्च शिखर के दर्शन है, परमानन्द के द्वार पर 'चत्तारि मगल की बन्दनवार है।'

आज हम मुनिजी के ५१ वे जन्म-दिन पर अपने श्रद्धा सुमन उनके पद-पंकजो मे इस मगल कामना मे अर्पित करते है कि व्यक्ति-व्यक्ति समाज-समाज और राष्ट्र-राष्ट्र मे घन की तरह व्याप्त हिसा अशान्ति असदाचार भ्रष्टाचार छल अ-विश्वास आदि मानवीय कमजोरियाँ दूर हाकर अहिसा, शान्ति, सदाचार पवित्रता और विश्वास जैसी मनुष्य की उच्च सदवृत्तियो का सर्वत्र मगलमय सुप्रभात हो। मुनिश्री दीर्घकाल तक हमे मगल पथ का प्रदर्शन करते रहे। □□

भीड़ में अकेले

निर्विकारी मन, दिगम्बर तन
भीड मे तुम हो अकेले।
सस्कृति का शोर, कोलाहल
तुम्ही मे आज मेले ।।
ऋषभ से महावीर तक की
सस्कृति के सूत्र जोडे ।

जिस दिशा मे मिले तीर्थंकर
चरण के चिह्न, तुमन पथ मोड ।।
देह नश्वर तुम न नश्वर, मग
नश्वर खेल खेले।
निर्विकारी मन दिगम्बर तन
भीड मे तुम हो अकेले ।।

—मिश्रीलाल जैन

मनिश्री विद्यानन्द ग्रम गडवाल (कनाटक) अग्रल ।

अधरो पर दुखियों को कविता
आखो मे सारे तीअकर

श्रीमती सरस्वती उपा ध

मा सरस्वती

सरस्वती पुत्र

शिक्षागुरु श्री वासुदेव अनन्त सागर और मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज

स्व आचाय श्री महावीर कीर्तिजी महाराज जिन्होन
१ म इ सुरेन्द्र क नमदडी मे क्षुल्लक
पाश्वकीर्ति क रूप म दीक्षा दी

आचाय श्री देशभषणजी महाराज जिन्होन
2 जलाई 1963 को दिल्ली म क्षल्लक श्री
पाश्वकीर्तिजी को मनिश्री विद्यानन्दजी क रूप म
दीक्षित किया।

नाथकर शान्तिनाथ की गडवाल स्थित वह मनाज्ञ प्रतिमा जिसके सम्मुख सन ।।१५ के पयषण-पव का अनन्त चतुदशी का युवा मुनीन्द्र उपाध्य न आजावन ब्रह्मचय का सकल्प किया। सकल्प था प्रभा आप ही मुझ इस विषम ज्वर स बचायग। यदि म बच गया ता आजावन ब्रह्मचय व्रत धारण करूगा महात्मा गाधा जैसा मरा वश हागा धम-सवा और राष्ट्र-सवा मरा अविचल व्रत हागा। भगवान शान्तिनाथ का कृपा छाया म मुनीन्द्र स्वस्थ हुए और तब स उन्हान आत्मकल्याण और मानव हित म स्वय का समर्पित कर दिया।

विद्या का आनन्द — **आनन्द की विद्या**

मनिश्री विद्यानन्दजी जन्म शडवाल (कर्नाटक) वशाख कृष्णा 4 वि म ९८

श्री कानजी स्वामी जन्म उमराला ग्राम (काठियावाड) वशाख शक्ला वि म 46

समयसार और सम्यग्दर्शन ज्ञान एकानप्रविष्ट समानार्थी शब्द-यगल है जो समयसार है वही सम्यग्दर्शनज्ञान है यह समयसार केवलज्ञानादि अनन्त गण का पज है

—मनिश्री विद्यानन्द निमल आत्मा ही समयसार
प 32 जनवरी 1972

चिदानन्द ध्रुवस्वभावी अवा समयसारमा समाए जवा मागीअ छीअ बाह्य के अनर सयाग स्वप्न पण जाइता नथी बहारना भाव अनतकाल कर्या हव अमारु परिणमन अदर वल छ अप्रतिहतभाव अतरस्वरूपमा वलया त वल्या हव अमारी शद्ध परिणतिन राकवा जगतमा कोई समर्थ नथी

—श्री कानजीस्वामी हीरक जयन्ती अभिनन्दन-ग्रन्थ
पृ 268 मई 1964

मुनिश्री विद्यानन्दजी के चरण-युगल दीक्षा के सामायिक 1963

जिधर दिगम्बर पग धरते है
उधर बुझे दीपक जल जाते

यात्रा : विद्या के, आनन्द की

आज वह जो बोलते हैं, सीधा हृदय में उतरता है, और उनकी शैली का निजी माधुर्य मोहित करता है । उनकी साधना और उनके ज्ञान की गहराई ने अभिव्यक्ति का माध्यम पा लिया है, अर्थात् उन्हे जन-जन ने पा लिया है ।

○ श्रीमती रमारानी

मुनिश्री विद्यानन्दजी से मेरा पहला साक्षात्कार उस समय हुआ जब आचार्य श्री देशभूषणजी के सान्निध्य में वे धार्मिक साधना की उस मंजिल पर पहुँच गये थे जहाँ से उस पथ पर आगे ही बढ़ा जाता है, पीछे लौटना या स्थिर खड़े रहना सभव नही होता। मेरे पति (साहूजी) उन्हे बहुत पहले से जानते थे। एक विशेष प्रकार की सहज आत्मीयता दोनो के बीच स्थापित है, यह मैं दोनो के वार्तालापो से जान चुकी थी। साहूजी को मैंने उस समय के व्रती-ब्रह्मचारी विद्यानन्दजी से यह कहते सुना कि "आप मुनिव्रत धारण न करे। सामाजिक चेतना को जगाने और सामाजिक उन्नति के कार्यों को दिशा देने का महत्वपूर्ण काम मुनिपद की कठोर मर्यादा के कारण सीमित हो जाएगा।" यह बात उनके द्वारा शायद, पहले भी कही गयी होगी, क्योंकि दूसरी ओर से जो उत्तर आया उसमे आकुलता की गहराई थी · "साहूजी, आप मुझ से जब-जब यह कहते हैं, मै एक असमंजस मे पड जाता हूँ, क्योकि आप की भावना को मैं समझता हूँ, और उसका आदर भी करना चाहता हूँ, लेकिन अन्दर की प्रेरणा अब इतनी बलवती है कि वह तो होना ही है। आप ऐसी सलाह देकर क्यो कर्म बाँधते है ?" साहूजी फिर कुछ न बोले। मुझे उस सयमी व्यक्ति की यह सब बात अच्छी लगी। यद्यपि मेरे मन ने भी साहूजी की बात का समर्थन किया था।

जहाँ तक सामाजिक चेतना को जागृत करने की बात का सम्बन्ध था—मुझे लगा कि जैन समाज के साधु-व्रती 'सामाजिक चेतना' को जागृत करने का जो अर्थ समझते है, उसकी सीमा सामान्य रूप से बहुत तग होती है। साहूजी की अपेक्षाएँ उससे आगे जाती है। मुझे यह भी लगा कि श्री विद्यानन्दजी की दीक्षा की भावना तो वास्तव मे तीव्र है, किन्तु सामाजिक चेतना को जागृत करने के लिए जिस प्रकार की वाक्शक्ति, शैली मे प्रभाव और भाषा मे प्रवाह होना चाहिये वह कमतर है, लगता है जैसे सोचते किसी और भाषा में हैं, कहते हैं किसी दूसरी भाषा मे जिसका मुहावरा उनकी पकड में नही है। इसलिए तपस्या और संयम का मार्ग पकड़कर पूरी लगन के साथ आत्म-

कल्याण तो कर सकते हैं, किन्तु सामाजिक चेतना का प्रयत्न कितना सार्थक हो पायेगा ? आज जब मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज के दर्शन करती हूँ और उनका प्रवचन सुनती हूँ तब अपनी प्रारम्भिक नादान धारणा पर स्वय ही लज्जित हो जाती हूँ।

मुनि-दीक्षा धारण करने के बाद से श्री विद्यानन्दजी महाराज ने ज्ञानार्जन की यात्रा पर बहुत सधे पग बढाये। जितना पढा, उससे अधिक उस पर मनन किया। उस ज्ञान का भडार जितना अधिक बढता गया, उसे जनता तक ठीक-ठीक प्रभावकारी ढग से पहुँचाने की साध भी उसी मात्रा मे बढ़ती गयी। इसके लिए उन्होने स्वय को अपना ही शिष्य बनाया और एक छात्र की भाँति एक-एक कदम मजिल तय की। भाषा, भाषण और शैली के कितने ही प्रयोग किये और एक दिन वह आ गया कि मुनिश्री की वाणी साकार सरस्वती बन गयी। आज वह जो बोलते है, सीधा हृदय मे उतरता है, और उनकी शैली का निजी माधुर्य मोहित करता है। उनकी साधना और उनके ज्ञान की गहराई ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम पा लिया है—अर्थात् उन्हे जन-जन ने पा लिया है।

मुनिश्री अध्यात्म और साधना के ऊँचे शिखर पर रहते है किन्तु दूसरो की मानवीय भावभूमि से वे सर्वथा कट नही गये है। वैष्णव कुल से जैन कुल मे ब्याही आकर मुझे त्यागियो और मुनियो के जिस रूप के दर्शन हुए थे और जैसा मैं सुना करती थी, उसमे अनेक महत्त्वपूर्ण बातो के साथ-साथ प्राय ऐसी बातो पर भी जोर दिया जाता था जो अन्तरग शुद्धि की अपेक्षा, बाह्यशुद्धि और शूद्रजल त्याग जैसे सकल्पो को मुखरता स प्रतिपादित करते थे। यद्यपि श्रद्धेय श्री गणेशप्रसादजी वर्णी जैसे सन्त भी थे जो हृदय के सम्पूर्ण आशीर्वाद के साथ सही तत्त्व-दृष्टि देते थे और बाह्य कर्मकाण्ड की पद्धति को गौण मानते थे। मुनि श्री विद्यानन्दजी ने जब भी मुझसे बात की उसे सदा सहज बनाया—बाह्य कर्मकाण्ड के विषय मे कभी चर्चा भी नही की। अधिकतर यह बताते की उन्होंने विभिन्न धर्मों के किन-किन ग्रन्थो से जैनधर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तो का सकलन किया है। ज्ञानपीठ की नयी प्रवृत्तियो के विषय मे पूछते कुशल-क्षेम जानते। मुझे उनके दर्शन करने पर सदा ही लगा कि अत्यन्त ज्ञानी किन्तु मानवीय गुरजन का आशीर्वाद मिला है, मेरी भावनाओ का उदात्तीकरण हुआ है।

मुनिश्री साधक तो है ही पर हृदय से कलाकार है, जिनकी परिष्कृत रुचि काव्य, सगीत, ललित कला और सौन्दर्य-बोध के तत्त्व रचे-पचे है। शुद्धता और स्वच्छता, समय की पाबन्दी, कार्यक्रमो की सयोजना और परिचालना मे तत्पर शालीनता-अर्थात् एक उदार व्यक्तित्व, जो मन को बाँधता है, भावनाओ को उदात्त बनाता है, शान्ति समता और सौहार्द के सन्देश मे जनमानस को प्रेरित करता है, आकुल जीवन को स्थिरता देता है। ☐ ☐

युगपुरुष

□ कल्याणकुमार जैन शशि

आज तुम्हारे द्वारा जो पावन गगा बहती है
वह चारित्रिक गाथा की निर्माण-कथा कहती है।
कथनी-करनी मे न विरोधाभास कही मिलता है
वाणी सुनकर भव्य मनुज का हृदय-कमल खिलता है।
जिसके द्वारा आत्मधम की होती है पहिचान !
धम सत यगपुरुष पूज्य मुनि विद्यानन्द महान !

वातावरण बदल देते हैं जहाँ पाँव धरते है
मख रूपी रत्नाकर से नय के निझर झरते है।
चरम लक्ष्य पाने की मन मे जिज्ञासा भरत है
आत्म तथा परमा म रूप का प्रतिपादन करते हैं।
इसी क्षपक श्रणी से चढकर भक्त बने भगवान !
धम सन्त यगपुरुष पूज्य मुनि विद्यानन्द महान !

फैली हुई भ्रान्तियो को तुमने सवत्र हटाया
मनि उपदेशो के सुनने का वातावरण बनाया।
जैनागम के माध्यम से ही विश्व धर्म समझाया
कट्टर अडिग महाधीशो मे तुमने आदर पाया।
दिया तुम्हारी क्षमताओ ने तुम्ह विशद सम्मान।
धम सन्त युगपुरुष पूज्य मुनि विद्यानन्द महान।

शुद्ध नग्नता के स्वरूप को, जहाँ न अब तक जाना,
वहाँ तुम्हारे माध्यम से इसका महत्त्व पहिचाना।
पग-पग पर बढता जाता था, जो विरोध मनमाना,
किन्तु आज इस नग्न सत्य को, हर विरोध ने माना।

हृदयगम हो जाने वाले, प्रस्तुत किये प्रमाण।
धर्म सन्त, युगपुरुष, पूज्य मुनि विद्यानन्द महान्।

जहाँ जैन का नाम श्रवण कर मठाधीश घबराये,
अपनी प्रतिभा द्वारा तुमने उनसे आदर पाये।
मानस को जागृत कर, ऐसे केन्द्र-बिन्दु पर लाये,
जिसमे एक घाट जल पीते, अपने और पराये।

तुममे गर्भित ग्रन्थ, बाइबिल, गीता, वेद, पुराण।
धर्म सत, युगपुरुष, पूज्य मुनि विद्यानन्द महान।

सब के मन को मोह रहा, आत्मिक उपदेश तुम्हारा
जहाँ-जहाँ पग धरे वहाँ,बह चली धर्म की धारा।
मानवता को भूल रहा था, वैज्ञानिक जग सारा,
मानव की डिगती आस्था को, तुमने दिया सहारा।

सीधा मार्ग पा गया फिर भूला-भटका श्रद्धान!
धर्म सन्त, युगपुरुष, पूज्य मुनि विद्यानन्द महान्!

जनता कहाँ समझ पाती है, उलझन की परिभाषा,
इसीलिए जन-साधारण की क्षुब्ध रही जिज्ञासा।
इसके फलस्वरूप धर्मो से बढने लगी निराशा,
मिटी तुम्हारे प्रवचन से जनता की तृषित पिपासा।

पाया है मुमुक्षुओ ने दुर्लभ आत्मिक वरदान।
धर्म गुरु, युगपुरुष, पूज्य मुनि विद्यानन्द महान्।

धर्म-विमुख पीढी के मन मे, उमड रही शकाएँ,
उसको आकर्षित करती, मगल ग्रह की उल्काएँ।
किंवदतियाँ लगती उसको पौराणिक चर्चाएँ,
इसको रुचती है केवल वैज्ञानिक परिभाषाएँ।

मिला तुम्हारे समाधान मे व्यवहारिक व्यवधान।
धर्म सन्त, युगपुरुष, पूज्य मुनि विद्यानन्द महान्।

□□

मेरी डायरी के कुछ पन्ने

उनकी मधुर ज्ञानालोक-विकीर्ण स्मिति मध्यमा और तर्जनी अगुलियों के सहारे जो परिभाषाएँ और व्याख्याएँ प्रस्तुत करती है, वे उदात्त जीवन-सूत्रों की कारिकाएँ तथा वृत्तियाँ बन जारी हैं।

☐ **डा अम्बाप्रसाद 'सुमन'**

परम पूज्य एव श्रद्धेय मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज आज अलीगढ मे नही है। वे २६ जून १९७३ ई को ही अलीगढ से मेरठ-निवास के लक्ष्य को लेकर प्रस्थान कर गये है, फिर भी मैं अपनी डायरी मे २१ जून से २५ जून ७३ तक के पन्नो को बार-बार देखता हूँ और पढता हूँ। यद्यपि वे पन्ने देखने मे डायरी के शेप पन्नो के ही समान है तथापि मुझे उनमे एक निराली ज्योति दृष्टिगोचर होती है। उन पन्ना के अक्षरो के अतराल मे से जिस दिगम्बर तपोमूर्ति की झाँकी मुझे मिलती है, वह मूर्ति नामालूम क्यो अपनी ओर बार-बार मुझे खीचती है? मूर्ति की ओर मैं खिचता हूँ और पन्ना के अक्षरो की ओर मेरी आँखे। मेरी आँखे अक्षरो की पृष्ठभूमि मे एक दिव्य काष्ठ-मच पर आसीन एक ऐसी सदेह आत्मा के दर्शन कर रही हैं जो सासरिकता को त्याग कर विदेह बन चुकी हे। उस आत्मा के दिव्य प्रकाश से मेरी डायरी के पन्ने और अक्षर ऐसे चमक उठे है कि मैं उन्हे बार-बार देखता हूँ और पढता हूँ किन्तु अतृप्त-सा बना रहता हूँ और फिर तृप्ति के लिए बार-बार पढता हूँ। डायरी मे लिखे पन्ने तो और भी हैं पर वे इतने कान्तिमान् नही क्योकि उन्हे वैसा प्रकाश प्राप्त नही है। 'श्वेताश्वतर उपनिषद् के ऋषि ने सत्य ही कहा है कि— तमेव भान्तमनुभाति सर्व, तस्य भासा सर्वमिद विभाति।

मेरी आँखो की पुतलियो के तिलो मे डायरी के केवल पाँच पन्ने है, उन पन्नो पर कुछ अक्षर हैं और उन अक्षरो मे पचतत्त्व-निर्मित एक निर्वस्त्र-मझोला हलका-मासल श्यामल शरीर है। उसके सिर मुख, छाती और पेट पर कुछ बडे-छोटे बाल है, जो आयु के वार्धक्य को नही अपितु तपश्चर्या के वार्धक्य को प्रकट करते है। श्याम पिच्छी और श्वेत कमडलु ही उसके सगी-साथी है। उस मासल श्यामल शरीर के शरीरी को बैठने की मुद्रा मे सुखासन ही प्रिय है। हमारी आँखो को वह शरीरी नग्न लगता है, किन्तु उसे नग्नता का भान ही नही है। दिगम्बरत्व'

और 'साम्बरत्व' उसके जीवन-ग्रन्थ के पर्यायवाची शब्द हैं। वस्त्र-राहित्य उसके लिए बहुत सहज और स्वाभाविक बन चुका है। मेरी आँखो की पुतलियो मे समाये हुए उस शरीरी का शरीर बता रहा है कि साम्बरत्व मे 'नरत्व' और दिगम्बरत्व मे 'मुनित्व' निवास करता है। प्रवचन के क्षणो मे उस दिगम्बर मुनित्व को ऋषित्व का अपूर्व आलोक भी प्राप्त हो जाता है। ऋषित्व की सारस्वत महिमा से मडित उस दिव्य मुनि की मुख-श्री एक प्रकार की गम्भीर समुज्ज्वल स्मिति से आलोकित होकर मुझे अपना बना रही है। उनकी मधुर ज्ञानालोक-विकीर्ण स्मिति मध्यमा और तर्जनी अँगुलियो के सकेतो के सहारे जो परिभाषाएँ और व्याख्याएँ प्रस्तुत करती है, वे उदात्त जीवनसूत्रो की कारिकाएँ तथा वृत्तियाँ बन जाती है। उस समय उस शरीरी के शरीर के दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता है, मानो भगवान् महावीर की देह को गीता के श्रीकृष्ण की आत्मा प्राप्त हो गयी हो।

२१ जून १९७३

मैं सन्ध्या समय दिल्ली के आकाशवाणी-केन्द्र मे अलीगढ वापस आया हूँ। प्रिय भाई प्रचडिया और दामोदर जैन ने बताया है कि आज प्रात मुनिश्री का बडा उत्तम भाषण हुआ था जैन मदिर मे, आप क्यो नही आये ? निमत्रण तो मिला होगा। अपनी अनुपस्थिति के कारण मैं बहुत दु खी-सा हूँ और पूछता हूँ कि भाषण किस विषय पर था ? भाई दमोदर बताते हैं–"हम दु खी क्यो' विषय पर। ज्ञान की एक विशिष्ट किरण से मैं वचित रहा हूँ। दूसरे दिन के लिए जागरूक और सन्नद्ध हो गया हूँ। इस दिन जिससे मिलता हूँ, वही मुझसे कहता है कि, "सुमनजी आप आज प्रात मुनिश्री के भाषण मे दृष्टिगत नही हुए। किसी कारण यदि आप नही आ सके तो निश्चय ही अपूर्व ज्ञान-रत्न राशि से वचित रहे।"

२२ जून १९७३

मै प्रात छह बजे खिरनीगेट (अलीगढ) के जैन मन्दिर मे पहुँच गया हूँ। मुनिश्री महाराज के भाषण-मच के पार्श्व म ही मैंने अपना स्थान ग्रहण कर लिया है। श्री पद्मचन्द जैन ने श्रोताओ को सूचना दी है कि "श्री महाराज पाँच मिनिट मे पधारने को है। आज 'षट्लेश्या' विषय पर उनका भाषण होगा।' ठीक पाँच मिनिट बाद मुनिश्री दिगम्बर वेश मे पधारे और गम्भीर एव शान्त मुद्रा मे व्याख्यान-मच पर विराजमान हो गये। मच के पृष्ठ भाग मे दीवार पर कर्पट-पट्टिका के ऊपर दो सिद्धान्त-वाक्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं–'अहिसा परमोधर्म, विश्वधर्म की जय'।

प्रस्तावना अथवा भूमिका के रूप मे पहले राजपूत कालेज, आगरा के प्राध्यापक श्री जयकिशनप्रसाद खण्डेवाल का सक्षिप्त प्रवचन हुआ और फिर एक भजन, तदुपरान्त मुनिश्री प्रवचन करने लगे। मनीषी मुनिवर श्रोताओ को भाषण के माध्यम से पदार्थ-ज्ञान की गहराई मे उतारते जा रहे हैं। मन और पदार्थ के विषय मे मुनिश्री बता रहे है कि जिस प्रकार मन के छह भेद हैं, उसी प्रकार पदार्थ के भी छह भेद हैं, मन के भेद है– (१) काला (२) नीला (३) भूरा (४) पीत (५) पद्म (६) शुक्ल। पदार्थ के भेद है–(१) स्थूल-स्थूल (२) स्थूल (३) स्थूल-सूक्ष्म (४) सूक्ष्म-स्थूल (५) सूक्ष्म (६) अति सूक्ष्म।

श्रोताओ की जिस पक्ति मे मैं बैठा हुआ हूँ, उसी मे सर्वश्री प भूदेव शर्मा, आजादजी, बरेली कॉलेज के डॉ कुन्दनलाल जैन, वार्ष्णेय कालेज के डॉ श्रीकृष्ण वार्ष्णेय तथा डॉ महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, अलीगढ विश्वविद्यालय के डॉ राम सुरेश त्रिपाठी तथा डॉ गिरिधारीलाल शास्त्री और मेरे प्रिय दो शिष्य डॉ श्रीराम शर्मा एव डॉ गयाप्रसाद शर्मा भी बैठे हुए हैं। मेरी पक्ति से आगे की पक्ति मे बडौत के सस्कृत-प्रोफेसर श्री जैन भी है, जिन्होने प्रो जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल के उपरान्त भूमिका रूप मे सक्षिप्त प्रवचन किया है। हम सब मुनिश्री के प्रवचन की अन्तर्भूत सूक्ष्म व्याख्याओ को ध्यान से सुन रहे है और उनके विस्तृत एव गम्भीर ज्ञान की मौन भाव से सराहना कर रहे है। हमे अनुभव हो रहा है कि मुनिश्री ज्ञान के सचल विश्वकोश है। परम पिता परमात्मा ने एक ही शरीर मे तपश्चर्या, सच्चरित्रता और विद्वत्ता की त्रिवेणी प्रवाहित की है। ऐसे जगम तीर्थराज के दर्शन करके कौन अपने को भाग्यशाली न समझेगा? उन पुनीत क्षणो मे मेरे अतस् का श्रद्धालु श्रोता अनुभव करने लगा कि ऐसे ही सन्तो के लिए महाकवि तुलसी ने 'मानस' मे लिखा है–"

"मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू ॥"

–राम चरित मानस, बाल 2/7

ऐसे ही महान् सन्त गुरु के चरणो मे बैठकर बालक तुलसी ने राम का पावन चरित्र सुना होगा और दिव्य दृष्टि प्राप्त की होगी। तभी तो गुरुपद-वदन करते हुए वे कहते हैं–

"श्री गुर पदनख मनिगन जोती। सुमर दिव्य दृष्टि हियँ होती ॥

२३ जून १९७३

आज प्रात ६ बजे ही पूरा पडाल सहस्रो जैन-अजैन स्त्री-पुरुषो से खचाखच भरा हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। कारण स्पष्ट ही है कि 'पुरुषोत्तम भगवान् राम' के जीवन पर मुनिश्री महाराज का भाषण होगा, जिसका आधार सस्कृत,

प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी आदि अनेक भाषाओ की अनेक रामायणे हैं। प्रवचन मे मुनिश्री ने 'शबरी के बेर' और 'दशानन' की प्रमाण-पुष्ट विवेक-सम्मत बुद्धि-ग्राह्य व्याख्या की है। वाल्मीकीय रामायण से अनेक उदाहरण देकर राम की महत्ता, वीरता एव उदात्तता को स्पष्ट किया है। वात्सल्य-परिपूर्ण मदोदरी के स्तनो द्वारा सीता के क्षीराभिषेक का शास्त्रीय उदाहरण प्रस्तुत करते हुए रावण की कामवासना की समाप्ति की जा रही है। हम सब श्रोता मत्र-मुग्ध-से बैठे प्रवचन सुन रहे है और मुनिश्री के चरणो मे मौन प्रणामाजलि अर्पित कर रहे हैं। राम और सीता के जीवन से आज के समाज को क्या सीखना चाहिये, इस पर महाराज-श्री का प्रवचन चल रहा है। वर्तमान समाज के चरित्र और आचरण पर बीच-बीच मे मुनिश्री का मीठा व्यग्य पहले हमे कुछ लज्जित-सा बनाता है और फिर अपने पूर्वजो के आदर्शो पर चलने की प्रबल प्रेरणा देता चलता है। मुनिश्री की दिव्य वाणी द्वारा वाल्मीकीय रामायण के पुरुषोत्तम राम के पावन चरित्र की एक झाँकी एक श्लोक के माध्यम से प्रस्तुत है—रावण के प्राणान्त होने पर राम विभीषण से कहते है—

"मरणान्तानि वैराणि निर्वृ त नः प्रयोजनम्। क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ।।"

(वा युद्ध 109/25)

डेढ घटे मे भाषण समाप्त हुआ है। मुनिश्री अपने आवास-कक्ष म चले गये है।

२४ जून १९७३

प्रात सात बजे का समय है। खिरनीगेट के जैन मदिर के प्रागण म स्त्री-पुरुष शान्त भाव से बैठे है और मुनिश्री के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे है, क्योकि आज महाराज-श्री का व्याख्यान भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध है। मुनिश्री ने पहले की भाँति अपना भाषण ठीक समय पर प्रारभ कर दिया है और महाभारत, भागवत तथा अन्य जैन ग्रन्थो के आधार पर श्रीकृष्ण के चरित्र को प्रस्तुत किया जा रहा है। श्रीकृष्ण के चरित्र की उदात्तता प्रमाण-निर्देश-पूर्वक व्यक्त की जा रही है। महाराजश्री को अपने कथ्य और वक्तव्य की इतनी नाप-तौल है कि भाषण सदैव समय पर समाप्त होता है और उतने ही समय मे अभीष्ट विचार-बिन्दुओ पर पूर्ण प्रकाश भी डाल दिया जाता है।

भाषण समाप्त करके मुनिश्री अपने आवास-कक्ष मे चले गये हैं। मेरी प्रबल इच्छा है कि महाराजजी से एकान्त मे कुछ शास्त्र-चर्चा की जाए। श्री खण्डेलवालजी के स्नेह के फलस्वरूप मुझे महाराजजी का प्रत्यक्ष सान्निध्य प्राप्त हो गया है और उन्हें अपनी प्रणामाजलि अर्पित करते हुए मैंने अपना सद्य प्रकाशित ग्रथ 'रामचरितमानस वाग्वैभव' सादर भेट मे अर्पित किया है। उस ग्रथ का प्रथम

अध्याय 'शब्दार्थ-वैभव' है। उसे पढते हुए मुनिश्री ने शब्द के अर्थ के सम्बन्ध मे वाक्यपदीयकार के मत की चर्चा की है। महाराजजी ने कहा कि 'वाक्यपदीय' ग्रथ मे अर्थ तीन प्रकार का बताया गया है। 'घट' के तीन अर्थ है-(१) 'ज्ञानघट' जो घडा बनाये जाने से पहले कुम्भकार के मानसिक पटल पर था। (२) 'अर्थघट' जो चाक पर बनाकर तैयार किया गया है। (३) 'शब्दघट' जिसे मनुष्यो की वाणी द्वारा 'घट अर्थात घ्+अ+ट्+अ-- इन चार ध्वनियो मे व्यक्त किया गया है।

शनै शनै दर्शन व्याकरण और साहित्य की अनेक शाखा-प्रशाखाओ पर महाराजजी विचार व्यक्त करत जा रहे है। सर्वश्री डॉ रामसुरेश त्रिपाठी डॉ गिरिधारीलाल शास्त्री डॉ प्रचण्डिया प्रा ब्रजकिशोर जैन सेठ प्रकाशचन्द्र जैन (सासनी) आदि कई सज्जन उन्हें ध्यान से सुन रहे है। वार्तालाप के बीच मेरे ग्रथ 'राम-चरितमानस वाग्वैभव पर भी मुनिश्री दृष्टि डाल लेत है। उसे पढते-पढते एक साथ महाराजश्री कह उठे कि रामचरितमानस के बालकाण्ड को पढने से विदित होता है कि तुलसी ने प्राकृत भाषा के ग्रन्थो का भी पढा था। यह सुनकर मैने निवेदन किया कि महाराजजी ! बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड म ऐसे प्रमाण मिलते है कि तुलसीदास ने रामकथा के बीज और सूत्र स्वयभू कविकृत पउम चरिउ म भी प्राप्त किये थे। मुनिश्री तुरन्त मेरे समर्थन मे कह उठे कि तुलसी बालकाण्ड म स्पष्टत लिखते भी है--

"जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने।" --बाल १/४५

महाराज ! ऐसा प्रतीत होता है कि इस अर्द्धाली मे प्राकृत कबि म तुलसी का तात्पर्य पउम चरिउ के रचयिता सयभु से है --विनम्रता पूर्वक मैंने निवेदन किया। बात का सिलसिला जारी रखते हुए मैने आगे भी कहा कि पउम चरिउ के कवि सयभू ने रामकथा रूपी नदी मे सुन्दर अलकारो और शब्दो को मछलियाँ और अक्षरो को जल बताया है। उसी शैली मे तथा उसी प्रकार के शब्दो मे तुलसी भी लिखते है जैसे--

"अक्खर पास जलोह मणोहर। सुअलकार सद्द मच्छोहर ।।" --सयभु
"धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती ।। --तुलसी

२५ जून १९७३

मुनिश्री की भाषण माला का आज अतिम दिन है। पुरोगम के अनुसार उसी सभा-मडप मे श्री महाराज का प्रवचन भगवान महावीर पर हो रहा है। भगवान महावीर के दिव्य शरीर तथा दिव्य चरित्र को बडे विस्तार से इस रस-वर्षिणी वाणी मे अभिव्यक्त किया जा रहा है। प्रमाण-प्रस्तुतीकरण के लिए नामालूम

कितने ग्रन्थो के उल्लेख महाराज--श्री कर चुके हैं। मुनिश्री की मेधा और धारणा-शक्ति को देखकर सभी श्रोता आश्चर्यान्वित हैं। ऐसी ही मेधा के लिए देवगण और पितर उपासना करते होगे तभी तो यजुर्वेद का ऋषि उल्लेख करता है :

"या मेधा देवगणा पितरश्पचोपासते"– –यजु ३२/१४

भाषण समाप्त हो गया है। महाराजजी के अपने आवास-कक्ष मे पहुँचने के लगभग २०-२५ मिनट के उपरान्त ही मैं, डॉ रामसुरेश त्रिपाठी, डॉ गिरिधारी-लाल शास्त्री, डॉ प्रचण्डिया, प्रो ब्रजकिशोर जैन आदि भी वहाँ पहुँच गये हैं। २६ जून, १९७३ को महाराजश्री का यात्रा-प्रस्थान है, अत हमने प्रार्थना की है कि महाराजजी के चरण-सान्निध्य मे हमारा एक छायाचित्र खिच जाए। प्रार्थना स्वीकार हुई और चित्र खिच गया। उस चित्र की एक प्रति मेरे पास है। मै उस तपोमूर्ति के छायाचित्र के दर्शनो से ही अपूर्व प्रेरणा प्राप्त करता रहता हूँ। दर्शनो के क्षणो मे मैं विचारता हूँ और कल्पना करता हूँ कि यदि मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज जैसे आठ मुनि और हमारे भारतवष की आठो दिशाओ मे होते, तो भारत का स्वरूप कितना समुज्ज्वल होता! हम क्या होते और हमारा यह वर्तमान देश क्या होता! ○ ○

अपना
अपने मे बो,
अन्त जग
बाहर सो।

–क. ला. सेठिया

क्रान्ति के अमर हस्ताक्षर

संसार में लीक पीटने वाले और अक्षर रटने वाले तो अनगिनत हैं, पर जीवन जीने वाले गतानुगतिकता को लांघकर विश्व को नया अर्थबोध और शास्त्रों को नया वेष्टन प्रदान करने वाले विरले ही हैं।

☐ डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

जीवन की अनन्त क्षणिकाएँ अनन्त रेखाओ मे न जाने किन इन्द्रधनुषी रगो मे चित्र-विचित्र होती रहती है। उनमे केवल चित्र ही नही होते हैं, अर्थ और भाव भी होते है। जैसे कल्पना को साकार करने के लिए शब्द रेखाओ का आकार प्रदान करते है, वैसे ही हमारे अव्यक्त जीवन को भी कोई-न-कोई रेखा तथा आकार देने मे निमित्त या सहायक होता है। कई बार हमारे भाव तो होते है, पर उन्हे प्रकट करने मे जब हमे कोई निमित्त नही मिलता, तब वे अन्तर्गूढ ही रह जाते हैं, रहस्य का प्रकाशन नही हो पाता। कल्पना तो है पर उसे साकार करने वाले यदि उचित शब्द न हो तो वह साहित्य नही बन पाती, किसी अन्तरग की चचल तरग बन कर रह जाती है। हमारे जीवन मे मुनिश्री विद्यानन्दजी ऐसे ही शब्द बन कर आये जिनके प्रत्येक अक्षर ने हमारे भावो को ही मानो खोल कर रख दिया। वस्तुत व्यक्तित्व का अभिनिवेश शब्दो मे अकित नही किया जा सकता। वह न तो वेश मे है, न सरल स्मित मुस्कराहट मे और न ही चमकते हुए मुखमण्डल तथा विशाल भाल मे है, वरन् उन सब के भीतर जो उनकी अनासक्त अन्तर्दृष्टि और अध्ययन-मनन की सतत कामना एव साधना है, वही उनका व्यक्तित्व है। सयम-स्वाध्याय की साधना मे वे हिमालय के समान अडिग और सुस्थिर है। गगा के समान पवित्र उनका मन सतत ज्ञानोपयोग मे रमा रहता है।

व्यक्तित्व एक : दृष्टियाँ अनेक

वस्तु एक होने पर भी हम उसे कई रूपो मे प्रकट करते हैं। अन्न प्राण है, जैसा खाओ अन्न वैसा होता मन, अन्न ही जीवन है, यह सारा ससार अन्नमय है, अन्न व्यक्ति है—इन विभिन्न वाक्यो से एक अन्न के सम्बन्ध मे विभिन्न भाव-धाराएँ बहती हुई लक्षित होती हैं। इसी प्रकार से व्यक्ति के सम्बन्ध मे भी हमारी विभिन्न धारणाएँ होती हैं। मुनिश्री किसी को इसलिए अच्छे लगते है कि वे इस युग के हैं और इसलिए युग की भाषा मे बोलते है, किसी दूसरे को वे इसलिए भले है कि वे बोलते ही नही है, स्वय धर्म की भाषा है। दुनिया मे शास्त्रज्ञो की कमी नही है, पर कोरा ज्ञान, या शास्त्र को लिये फिरने से वह कभी-कभी शस्त्र भी बन जाता है। इसलिए हमे केवल शास्त्रज्ञ नही, तत्त्वज्ञ नही, उनका भावार्थ जानने वाला चाहिये, जो कि मुनिराज के विराट् व्यक्तित्व मे समाया हुआ है।

ज्ञान की वास्तविकता यह है कि वह हम केवल लिख हुए कागजो को ठीक से पढने के योग्य ही न बनाये प्रत्युत उन सारे अक्षरो को अक्षरश पढ कर सम्यक अर्थ समझ कर उन घिसे पिट अक्षरो को मिटा कर स्पष्ट अक्षर लिखने की योग्यता प्रदान करे। ससार मे लीक पीटने वाले और अक्षर रटने वाले तो अनगिनत है पर जीवन जीने वाले गतानुगतिकता को लाँघ कर विश्व को नया अथ बोध और शास्त्रो को नया वष्टन प्रदान करने वाले विरले ही है।

अनेकता मे एकता

मनिश्री क सम्बध मे सबके विचार और दष्टिकाण भिन्न हो सक्त है किन्तु उनका व्यक्तिव असाधारण है व विरले व्यक्तियो मे एक अकेल है इसे म्वीकार करना ही पडता है इसलिए व्यक्ति के सामाय व्यक्तित्व से लेकर लोक धम और विश्वधम की समस्त परिभाषाए उनके व्यक्तित्व मे सार्थक है। व स्वय विश्वधम के प्रतीक है। कई लोग विश्वधम के नाम से अपनी अरुचि प्रदर्शित करने लगते है। उनकी समझ म यह नही आता है कि विश्व का भी कोई एक धम है किन्तु धम कहाँ नही है? जहा जीवन भी नही है वहाँ भी धम है फिर जहा जीवन है वहा धर्म कसे नही हो सकता? मनष्य म यदि भद-बद्धि है तो वह धम को समझता है जानता है और अच्छ बर का अतर अवश्य रखता है एसा हो नही सकता कि कोई मनष्य अच्छ-बरे का अन्तर न समझता हो। हमारी अच्छ-बर की परिभाषाए परम्परागत होती है देश काल और समाज-सापेक्ष होती है। उन्ह महामनि जस मानव ही जन सामाय का ठीक से समझाने का काय करत है। गगा बहाना हर किसी का काम नही ्र ्स तो भगीरथ जस यागी तपस्वी ही बहा सकत ह

योगश्वर

मनिश्री जहाँ आम साधना म योगश्वर की भमिका म है वही मक्ति क सिद्धहस्त चित्रकार भी है परन्तु मानवता का चित्रकार जन सामा य के बीच सब प्रकार के जाति सप्रदाय मत-मतान्तरो क बधनो से उट कर सारे दायर तोड कर शद्ध मनष्य का लक्ष्य लेकर चल रहा है क्याकि आज का याग हठ-साधनाआ म नही व्यक्ति व्यक्ति म जो अविश्वास घणा और उच्च-नीचता का साप्रदायिक विष व्याप्त हो गया है उससे द मान को हटा कर प्रम और विश्वास स उनका सयोग कराना है। योग का अथ जाड है परन्तु आज का आदमी टटता जा रहा है। समाज बिखर रहा है। सारी मायताए झरी पडती जा रही है। विज्ञान की चकाचौध म अब धार्मिक मायताआ म रोशनी नजर नही आ रही है। उन सबको रोशनी देने वाला क्रान्ति का कोई अमर हस्ताक्षर आज हमारे बीच यदि कोई है तो हम गवपूवक कहना पडता है कि वह तेजस्वी मुनिश्री विद्यानदजी महाराज ही है। □□

मुनि विद्यानन्द
एक सहज पारदर्शी व्यक्तित्व

'जो मानव को मानव से जोड़े और उसे निकट लाये, वह धर्म है और जो मानवों मे फूट डाले, उनमें विभेद उत्पन्न करे, कटुता का सृजन करे, एक दूसरे की निंदा के लिए उकसाये, वह चाहे कुछ भी हो, मैं उसे धर्म नहीं मान सकता।'

○ **गजानन डेरोलिया**

परम दिगम्बर, प्रखर वक्ता वीतरागी एवं विद्वत्श्रेष्ठि मुनि श्री विद्यानन्दजी के प्रथम दर्शन मुझे सन् १९६५ मे उस समय करने का सुअवसर मिला जब वे चातुर्मास के लिए यहाँ पधारे। मुनिव्रत लिये उन्हे उस समय बहुत अधिक समय नही हुआ था किन्तु उनकी वक्तृत्व-शक्ति, मानव-मात्र के लिए सुलझे हुए कल्याणकारी विचारो और सहज-सरल भाषण-शैली का लोहा भारतीय दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल डॉ सम्पूर्णानन्द तथा जैनदर्शन के उद्भट ज्ञाता पं चैनसुखदास न्यायतीर्थ जैसे व्यक्तियो ने भी मान लिया था। मुनि के रूप मे जयपुर मे सपन्न प्रथम चातुर्मास म ही मुनिश्री ने वहाँ के जन-जन का मन जीत लिया था।

वैसे प्रकृति और विचारो से मै कोई बहुत धार्मिक लोगो मे नही आता और यकायक किसी त्यागी वृत्ति के लिए नमन करने को मेरा मन-मानस भी तैयार नही हो पाता है किन्तु किसी अज्ञात शक्ति ने मझे मुनिश्री के व्यक्तित्व के आगे नत-मस्तक कर दिया था। मुझ जैसे हजारो-लाखो उनके भक्त बनते गये, किन्तु उनके निश्चल स्नेह और आशीर्वाद सदा मुझे मिलते रहे और उससे मै गर्व का अनुभव करता रहा। उनके विचारो को निकट से सुनने-समझने का मुझे अवसर मिला। उनके श्रीमहावीरजी तीर्थ पर हुए प्रथम वर्षायोग मे इस सम्पर्क मे वृद्धि हुई। धर्म, राजनीति, सदाचार, लोकसत्ता, तात्कालिक विषय, कुछ भी तो ऐसा नही था जिस पर मुनिश्री का अध्ययन अधूरा हो और जिस पर वे धारा-प्रवाह विचार व्यक्त न कर सकते हो। पूर्ण अनुशासित शान्तिमय वातावरण की विशाल सभाओ मे धारा-प्रवाह विचार प्रकट करते जाना मुनिश्री विद्यानन्दजी की अपनी अलौकिक विशिष्टता है।

श्रोता-समूह एकाग्र चित्त से उनके सुलझे सुस्पष्ट विचारो को मनन करता रहता है और जब प्रवचन समाप्त होता है तो उसे लगता है जैसे किसी ने निद्रा भग कर दी हो।

मैंने उनके दजनो प्रवचन सुने है। मेरा अनुभव है कि मुनिश्री श्रोता-समूह के मन की प्यास तलाशने म निपुण है। व उसी विषय को लेते है जिसे सुनने को ही मानो जन-समुदाय एकत्रित हुआ हो। श्रोताओ का अधिकाश उन विचारो को ग्रहण करने म सक्षम होता है और उसे एसा अनुभव होता है मानो उस दिन की प्रवचन-सभा उनके लिए ही विशष रूप से आयोजित की गयी हो। किसी धम जाति और सम्प्रदाय के श्रोता हो मनिश्री तथा उनके मध्य एक अदृश्य निकटता स्वत स्थापित होती जाती है और वक्ता तथा श्रोता के बीच एक कभी न टटने वाला तारतम्य स्वयमेव बन जाता है।

मनिश्री रामायण क अधिकृत प्रवक्ता है। उन्होने राम तथा सीता के आदश निष्ठ जीवन का अध्ययन करने के लिए अनेक रामायणो का सागोपाग अध्ययन मन्थन किया है। अपने भाषण मे व प्राय रामायण गीता कुरान तथा बाइबिल के श्रष्ठ और अनुकरणीय अशो का उद्धरण दिया करते है। मैंने अनेक वक्ताओ को दिगम्बर जैन मनिश्री विद्यानन्द द्वारा रामायण तथा मर्यादा पुरुषोत्तम राम क जीवन के उदाहरण देने पर आश्चय प्रगट करते देखा है और सुना है। उन्ह लगता है कि मनिश्री के भीतर कोई सवधर्मो का ज्ञाता बैठा है जो उन्ह जैनत्व के दायरे मे रखते हुए भी प्राणिमात्र और परधम के सदगुणो क विशाल घरे तक प्रभाव शील रखता है।

दुर्भाग्य स गत दशाब्दियो म कतिपय साध-सन्तो ने जैनधम की विशालता और उसके विस्तृत दायरे को कुछ लागो तक ही सीमित करने का प्रयास किया है। मनिश्री विद्यानन्दजी न उस सकुचित घरे को तोड्ने का साहसपूण प्रयास किया ह और उन्ह इसम भारी सफलता भी मिली ह। मनिश्री क माध्यम स प्राणि मात्र क लिए कल्याण कारी सत्य अहिसा अपरिग्रह और समता का उपदेश देने वाला जनधम फिर अपने पूववैभव को प्राप्त कर रहा है मनिश्री फिर से उस कोटि कोटि विश्ववासियो का प्रिय धम बनाने की दिशा म प्रयत्नशील है। यह सारा आदोलन व भाषण प्रवचनो सत्साहित्य का सरचना और विलुप्त दशन का प्रकाशित करक कर रहे है जो अपने आप मे एक विशाल अनुष्ठान है। जैनजगत मे होने वाली कोई हलचल आज मुनिश्री विद्यानन्दजी के प्रभावशाली व्यक्ति क स्पश स अछूती नही है। व एक स्थान पर बैठ रहकर भी सवव्यापी बन गये हैं।

आज जबकि भौतिक सुविधाएँ सासारिक कष्ट सस्कृतिविहीन फैशन तथा छल कपट स मुद्रा-अजन के कारण हर प्राणी विनाश की ओर यत्रवत् बढ रहा है तब इस

बात की बहुत आवश्यकता है कि उन्हें कोई सन्मार्ग बताये। मुनिश्री विद्यानन्दजी इस डूबती नाव के लिए पतवार बन गये हैं। वर्तमान मे वर्द्धमान की उपलब्धियों, उनके प्रेरणामय चरित्र और जीवन को वे अन्धकार के गर्त की ओर अग्रसर मानव तक पहुँचाने के लिए उपग्रह जैसे प्रभावी बन गये हैं।

सगीत मे व्यक्ति के चित्त को एकाग्रता प्रदान करने की अलौकिक शक्ति है। मुनिश्री शालीन सगीत के प्रशसक है और उसके विकास मे रुचि भी रखते है। जैन रिकार्डों की सरचना मे उनके योगदान को भावी पीढ़िया सदियो तक विस्मृत नही कर पायेगी। प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियो, गायको की विलुप्त रचनाओ को उन्होने स्वर और सगीत दिलाया है और एक कोने मे अछूत-सी पडी ये सारगर्भित रचनाएँ अब लोगो के हृदय तक पहुँच करने वाली सिद्ध हो रही हैं। सिनेमा के दो अर्थ वाले भोडे गीतो का स्थान अब सुसस्कृति और सुरुचिसपन्न परिवारो मे जैन रिकार्डों ने ले लिया है।

मुनिश्री की वक्तृत्व-शैली तथा भाषण-क्रिया के सम्बन्ध मे कुछ उद्धरण देना अनुपयुक्त नही होगा। इनसे सहज ही इस परिणाम पर पहुँचा जा सकता है कि वे अपनी बात को कितनी सरलता से सीधे श्रोता के हृदय तक पहुँचा देने मे सिद्धहस्त है।

आधुनिकता के नाम पर सस्कृति-हीन जीवन-यापन के पीछे दीवानी पीढ़ी को मुनिश्री ने सीता तथा उनके देवर लक्ष्मण के मध्य हुई वार्ता बहुत ही सरल ढग से इन शब्दो मे कही है

> लक्ष्मण इसलिए उदास थे कि जनक-दुलारी सीता सुकुमारी के नीचे बिछाने को जगल मे कोई नरम बिछौना नही था। सीताजी ने लक्ष्मण के दुख को कम करने के लिए कहा कि मै तो आप लोगो से भी अधिक लज्जित और दुखी इसलिए हूँ कि यहाँ समतल भूमि होने के कारण मुझे पति और देवर के बराबर शैया पर सोना पड रहा है और मै उन्हे कुछ अगुल ऊँचा आसन भी देने मे समर्थ नही हो पा रही हूँ। इस आख्यान का तात्पर्य यही था कि आज कितनी सन्नारियाँ है जो इस प्रकार के सम्मान और मर्यादा का पालन करती है। भावार्थ —पत्नी को पति तथा देवर के प्रति समुचित आदर और सम्मान रखना चाहिये।

पाप और पुण्य की बहुत ही सीधी परिभाषा करते हुए मुनिश्री प्राय एक उद्धरण दिया करते हैं, 'जिस कार्य से किसी व्यक्ति के हृदय को चोट पहुँचे, उसे कष्ट हो, वह पाप है और जिस कार्य से किसी को सुख, आनन्द अथवा राहत का अनुभव हो वह पुण्य है।'

धर्म की व्याख्या अनेक मत-मतान्तरो के देश भारत मे मुनिश्री ने इस प्रकार से की है 'जो मानव को मानव से जोडे और उसे निकट लाये वह धर्म है और जो मानवो मे फूट डाले, उनमे विभेद उत्पन्न करे, कटुता का सृजन करे, एक-दूसरे की निन्दा के लिए प्रेरित करे, वह चाहे कुछ भी हो, मैं उसे धर्म नही मान सकता'।

सीधे और सरल उद्धरणो के माध्यम से वे कठिन-से-कठिन विषय और बात को अशिक्षित व्यक्ति तक पहुँचा देने की अनुपम क्षमता रखते है। यही कारण है कि मन्दिर, मस्जिद जेल, बुद्धिजीवियो की विचार-सभाएँ, विद्यालय आदि सभी प्रकार के स्थान मुनिश्री विद्यानन्द के जादुई वक्तृत्व के स्पर्श से मत्रवत् बँध से जाते है। हर सम्प्रदाय का व्यक्ति उन्हे सुनने के लिए भागा आता है उनकी प्रवचन-सभाओ मे ठसाठस भीड होती है तथा सबसे बडी विशेषता यह है कि वहाँ मौन और शान्ति का साम्राज्य होता है।

साम्प्रदायिक सद्भाव, राष्ट्रीय एव प्रादेशिक एकता भाषायी सौहार्द पर मुनिश्री सदा बल देते रहे है। उन्होने एक सभा मे बहुत ही स्पष्ट रूप से अपने जीवन का ध्येय घोषित करते हुए कहा था कि मेरा ससार-त्याग का ध्येय और जीवन का एकमात्र उद्देश्य इस भारत भूमि को पुन एकता के सूत्र मे बाँधना है और मेरी इच्छा है कि यही कार्य करते हुए मेरा शरीर छूटे।

पिछले दशको मे जैन मुनियो की शृखला मे मेरी स्मृति मे इतना अध्ययनशील प्रखर और ओजस्वी वक्ता उत्पन्न नही हुआ जिसने भारतीय सस्कृति और जैनधर्म की मूल शिक्षाओ के प्रचार-प्रसार एव पुन स्थापना के लिए इतना महत्त्वपूर्ण कार्य कया हो। □ □

पश्चिमे तुई ताकिये

पश्चिमे तुई ताकिये देखिस मेघे आकाश डोबा,
आनन्दे तुइ पूबेर दिके देख्–ना ताएर शोभा ।।

टकटकी लगाकार पश्चिम की ओर तू देखता है मेघो से आच्छादित आकाश ।
पूर्व की ओर आनन्द के साथ क्यो नही देखता तू उसकी शोभा ।।

–रवीन्द्रनाथ ठाकुर

राष्ट्र-सन्त मुनिश्री और आधुनिक जीवन-संदर्भ

कृषक हो या श्रमिक, हरिजन हो या ब्राह्मण, निर्धन हो या धनवान उनकी दृष्टि समान रूप से सभी पर पडती है, वे मानवतावादी सम-दृष्टि से सभी को अनुषिक्त करते है।

□ डॉ निज़ाम उद्दीन

श्रमण-सस्कृति के शुभ्र दर्पण, दिगम्बर नरसिह, वीतरागता सात्विकता, सौम्यता, सहजता की प्रतिमा, स्नेह-विवेक से आप्यायित परम ज्योतिर्मय तप पूत शरीर, अधरो पर सहज मुस्कान, भव्य ललाट, नेत्रो मे तैरती सम्यक्त्व-ज्योति, शैशव का अनुपम सारल्य, निर्द्वन्द्व मुख-मण्डल, निर्मलता के आगार, परमतत्त्वज्ञानी प्रबुद्धचेता, परम सवेदनशील, देशानुराग से अनुरजित, तप-ज्ञान-कला-साहित्य के पुजीभूत, अनन्त प्रेरणाओ के अजस्र स्रोत अहिसा के आराधक, मानवता के प्रबल प्रेमी, जन-मानस को समान्दोलित करने वाले कुशल जन-नेता, प्रजा-परम्परा और सामासिक सस्कृति के जीवन्त प्रतीक मुनिश्री विद्यानदजी सम्प्रदाय-पुरुष न होकर एक राष्ट्र-सन्त और विश्व-पुरुष है। स्वतन्त्रचेता मुनिश्री जीवन के द्रष्टा और स्रष्टा दोनो है/

'मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मानाम्' —मन-वचन-कर्म की एकसूत्रता महान्, स्वस्थ व्यक्तित्व का सृजन करती है। मुनिवर के महान् व्यक्तित्व मे इसी प्रकार की एक-सूत्रता विद्यमान है, उसमे गुरुत्वाकर्षण है—चुम्बक सदृश आकर्षण, लेकिन पूर्णत: निष्काम, अनीह, अनिकेत एव अनुद्विग्न।

मनुष्य किसी जीवन-दृष्टि या दर्शन से महान् नही बनता, महान् वह उस समय बनता है जब वह उनका अनुवर्तन करता है, उनके अनुकूल आचरण करता है। मुनिश्री के महान् व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि अपनी जीवन-दृष्टि एव दर्शन को वे आचरण के केनवस पर उतार कर रख रहे हैं। जब से उन्होने मुनि-पद की दीक्षा ली (२५ जुलाई १९६३) तब से वे निरन्तर तप और साधना मे निरत है। "धर्म-शास्त्रो का गहन अध्ययन, साहित्य का अन्वेषण और ऐतिहासिक तथ्यो की खोज उनके जीवन के अग बन गये है।" अपने व्यक्तित्व को पिघलाकर दूसरे के अन्दर उतारने वाले 'पार्श्वकीर्ति' असख्य लोगो के हृदय-दीपको को भव्यालोक प्रदान कर रहे हैं। उनकी अमृत वाणी यदि सत्रस्त, सपीडित मानवता के रिसते जख्मो पर, फाहा सदृश शीतलता प्रदान करती है, तो उपदेश उद्बोधन और जागरण की प्रेरणा प्रदान करते है। आज इस विशाल देश मे जो महावीर-निर्वाण-शती पूर्ण निष्ठा के साथ मनायी जा रही है, उसके प्रेरक स्रोत मुनिश्री ही है। वह ऐसे साधु नही जो गली-गली डोलते मिल जाते है--गली-गली साधु नही रावण ही मिलेंगे, राम-सदृश साधु का मिलना ही दुष्कर है।

एक धर्म, एक संस्कृति

धर्मनिष्ठ मुनिश्री मे धार्मिक सहिष्णुता का प्राचुर्य ह। धम को वे अत्यन्त विशाल, व्यापक और विशद मानते है, सकीर्ण नही। उन्ही के शब्दो मे--"जो अशान्ति से रहना सिखाये, आपस मे लडाये, एकदूसरे के विरुद्ध शस्त्र उठाये, वह धर्म कभी नही हो सकता। धर्म तो शान्ति, दया व प्रेम से रहना सिखाता है अकेला धर्म ही मनुष्य को आपदाओ से मुक्ति दिला सकता है।' धार्मिक दृष्टि से उनके विचारो मे औदार्य अत्यधिक है। उन्होने जैनेतर धर्मों एव मतो का भी अध्ययन, मनन, अन्वीक्षण किया है, लेकिन कही पक्षाग्रह या दुराग्रह देखने को नही मिलता। वे मानते है कि "अपने-अपने विश्वास के अनुसार सभी को अपने धर्म-ग्रन्थो से लाभ उठाना चाहिय और जो बाते जीवन को उन्नत बनाती है उनको अमल म लाना चाहिये।" उनकी दृष्टि म धर्म केवल मनुष्य या जाति-विशेष का नही है, अपितु प्राणिमात्र के लिए है सभी के कल्याण के लिए है। ससार म प्राणिमात्र को जीन का समानाधिकार है, अत धर्म प्राणिमात्र के कल्याण-निमित्त ही होना चाहिये। जैसे जल सभी की पिपासा का प्रशमन कर नवजीवन और स्फूर्ति प्रदान करता है वैसे ही धर्म आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाता है, उसे उत्कृष्ट बनाता हे। उन्होने सकल ससार के प्राणियो के लिए एक धर्म और एक सस्कृति की सदिच्छा व्यक्त करते हुए कहा कि 'एक आकाश की छत के नीचे रहने वाले, एक सूर्य और एक चन्द्रमा से आलोक प्राप्त करने वाले मनुष्यो का धर्म एक तो होगा ही, उनकी सस्कृति एक तो होगी ही, हाँ, धर्म और सस्कृति मे देश-काल-परिस्थिति के कारण वैभिन्य आ सकता है। आज जिस 'वर्ल्ड ब्रदरहुड' और 'इन्टरनेशनल रिलीजन' की बात कही

जाती है उसका अनुरणन मुनिश्री की वाणी मे श्रवणगोचर हो रहा है, उसका क्रियान्वित रूप मुनिश्री के आचरण में परिलक्षित होता है।

नयी पीढ़ी और धर्म

नयी पीढी का आह्वान करते हुए उन्होने इस बात पर बल दिया कि धर्म को पुस्तकों से नही, आचार, न्याय और नीति से जानना चाहिये। ठीक भी है, भला जब तक धर्म ग्रन्थों मे बन्द रहेगा—उन्ही तक सीमित रहेगा तब तक लोक-जीवन से स्वत: दूर हट जाएगा। धर्म का रूप तो सर्वजगत्-हितकर्ता और लोकोपकारक होता है। धर्मतत्त्व-गवेषको ने क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, सयम, तप आदि को सहज धर्म मताया है, यही तो मानव-जाति का धर्म है—विश्वधर्म है। "वस्तु स्वभावो धर्म" अर्थात् प्रत्येक वस्तु की निजता ही उसका धर्म है, जैसे—जल का शीतत्व, अग्नि का दाहकत्व, सागर का गम्भीरत्व, आकाश का व्यापकत्व, पृथ्वी का सहिष्णुत्व। इसी प्रकार अहिसा, सत्य, अपरिग्रह आदि का अनुपालन करना हमारा कर्तव्य है, यही हमारा धर्म है।

अहिसा और मैत्री

आज चारो ओर वैर और शत्रुता के भयाविल मेघ गरज रहे हैं। कलह और अशान्ति की इस फज़ा मे हमे अहिसा और मित्रता को अगीकार करना चाहिये। महर्षि पतजलि कहते हैं—"अहिसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैर त्याग—अर्थात् जहाँ अहिसा है, वहाँ वैर-भाव का स्वत त्याग हो जाता है। इसी प्रकार हमे आशा करनी चाहिये कि सर्वत्र मित्रता की प्राप्ति हो—"सर्वा आशा मम मित्र भवन्तु"। मुनिश्री कहते है कि हम अपने नेत्रो मे मैत्री-भाव का अजन लगाये, तभी वैर को मिटाया जा सकता है। 'न हि वैरेण वैर. शम्यति"—वैर से वैर नही मिटता, मैत्री-भाव से ही ससार मे युद्धोन्माद के काले बादल छट सकते है। विश्वधर्म के लक्षणो का आरम्भ 'क्षमा' से होता है, हमे चाहिये कि उन्नत मनोबल, सामाजिक शिष्टता के आभूषण 'क्षमा' को विचार नही, आचार बनाये।

भारतीयता के पोषक

मुनिश्री को इस बात का अधिक अनुताप है कि आज हममे भारतीयता या राष्ट्रीयता की भावना तिरोहित हो गयी है। जिस मुनिश्री ने, स्वाधीनता-आन्दोलन मे जेल-यात्रा की, रात्रि मे फिरंगी सरकार के विरुद्ध पोस्टर चिपकाये और भारत की शान 'तिरगे' को अपने गाँव के निकटस्थ एनापुर मे एक पेड पर फहराया, स्वतन्त्रता का जीवन मे वही स्थान माना है जो शरीर मे प्राणों का है। शरीर प्राणहीन होकर शव-मात्र है, देश स्वतन्त्रता-हीन होकर मुर्दा है। उन्होंने देश की सुरक्षा के लिए शस्त्र-बल को भी न्यायोचित तथा आवश्यक समझा है। सीमा-

द्रौपदी का जब कोई विदेशी आक्रमक-दु शासन चीर-हरण कर रहा हो उसकी शस्त्र-बल से रक्षा करनी चाहिये तभी हम ज्ञान-विज्ञान मे प्रगति, उन्नति कर सकते हैं– शास्त्रेण रक्षित राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते।' वे देशोन्नति मे प्रवृत्त होने को नैतिक कर्तव्य मानते है। वे चाहते है कि हम देश के प्रति इसी प्रकार विश्वसनीय बने जिस प्रकार माता पिता अपनी सन्तान के प्रति विश्वसनीय होते है। उनका सदेश है कि गली मुहल्ले की सफाई करो धम चर्चा करो देवमदिरो मे जाकर पवित्रता का पाठ पढो उदार बनो सकीर्ण भावनाओ को छोडो। शीलवान धैर्यवान, बलवान बनो। सयम शिष्टाचार का पालन करो अनाथा-दुखिया की सेवा करो।' देशकी सर्वांग उन्नति क लिए एकत्व की परमावश्यकता ह। पजाबी बगाली मद्रासी गुजराती कश्मीरी बिहारी का प्रश्न सामने न रखकर भारतीय होने की भावना को सामने रखे यही चेतना देश की एकता को दृढ एव पुष्ट करेगी।

गात्रो म मगल विहार

उन्हाने अनेक गावा का पैदल भ्रमण किया। उत्तर प्रदेश क चार सौ से अधिक गाँवो मे उन्होने मगल विहार किया। खेतो म हल चलाते कायप्रवण किसानो को देखकर प्रसन्न हो उठते और जब कोई कृषक हाथ पर रखे रोटी खाता दिखायी देता तो प्रेमस्निग्ध वाणी म पुकार उठते–'यही तो हमारी श्रम व सस्कृति का दिग्दर्शन करा रहे हैं। ये ही इस देश के सच्चे मालिक है जो करोडो व्यक्तियो को भोजन देते है। अपने मगल विहार मे उन्हाने अनेक कृषको और मजदूरो से बाते की उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की और उन्हे आशीर्वाद दिया। कृषक मुनिश्री के इस प्रेमपगे व्यवहार से अत्यधिक प्रभावित हुए। कृषक हो या श्रमिक हरिजन हो या ब्राह्मण निर्धन हो या पूजीपति उनकी दृष्टि समान रूप स सभी पर पडती है–व मानवतावादी रसदृष्टि से सभी को अनुपिक्त करत है। एक बार मेरठ (उ प्र) मे एक हरिजन महिला ने उन्हे सिर झुकाकर नमस्कार किया। तत्क्षण महाराज के मुखारविंद मे रसस्निग्ध वाणी फूट पडी–इन हरिजनो की सवा उसी प्रकार करो जिस प्रकार गाधीजी करते थे। इनको समाज म वही स्थान दो जो तुम को प्राप्त है। इन शब्दो म पैगम्बर हजरत महम्मद की वाणी की अनुहार प्रस्फुटित है उन्होने कहा था कि अपन नौकर या सेवक का वही खिलाओ जो तुम खाते हो वही पहनाओ जो तुम पहनते हो। इसस अच्छा समाजवाद और क्या हो सकता है समाजवाद जम्बो जैट स नही आयगा बडी बडी कारा स भी नही आयेगा। जब आयगा तब जनसाधारण के प्रयत्न से आयगा। हर पशु-पक्षी और मनुष्य को उसकी आवश्यकता के अनुसार भोजन जुटाना हमारा कतव्य है और उस कर्तव्य को पूरा करना होगा। हमे सब बातो को साचकर मिल-बाँट कर पदार्थों का उपयोग करना चाहिये। सबको अपना-अपना भाग मिलते रहना ही समाजवाद है।" उपर्युक्त शब्दो मे मुनिश्री ने समाजवाद पर व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया है। समाज-

देश मे खुशहाली तभी होगी जब हम देश से प्यार करेंगे।
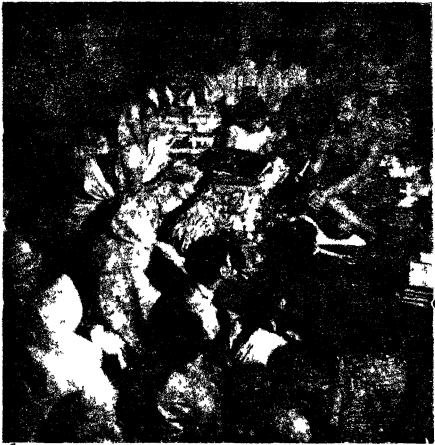
वाद या समानता के आदश की प्राप्ति किसी विधयक को पारित करने से सम्भव नही इसकी प्राप्ति के लिए यद्वातद्वा देशवासियो का हृदयपरिवतन करना होगा और हृदय-परिवर्तन भी इन्ही सन्तो मुनियो के दिव्योपदेश द्वारा सम्भव हो सकगा। चूकि देश मे स्वाथपरायण व्यक्ति अधिक है और वे राष्ट्र का अग-अग विकृत विकलाग बना रहे है। किसी की तोंद फूल रही हे तो किसी के पैर दूसरे का सिर कुचलने के लिए बताब है कही नि शक्त टाँग उदर के गुरभार को सहन नही कर पा रही है और लडखड़ा रही है और विद्रोह के लिए तत्पर हैं किसी का अधनग्न शरीर कडाके की सर्दी से विकम्पित हो रहा है किसी का पेट भूख से पीठ मे घुसा जा रहा है। ऐसी स्थिति मे देश मे एकता या समानता कहाँ से आ सकती है? जब तक वग-सघष है और पारस्परिक सौहाद का अभाव है एकता की कमी है तब तक समाजवाद आकाश-कुसुम के अतिरिक्त और कुछ नही।

वस्तुओ की मिलावट और परिग्रह

आज बहुत से व्यापारी मिलावट का काला धधा कर तिजोरियाँ नोटो से भर रहे है, उन्हे देशवासियो के जीने-मरने से क्या प्रयोजन? बहुत से लोग आवश्यक वस्तुओ का परिग्रह कर, ऊँचे मूल्य पर बेचने के लोभ मे अपने ही देशवासियो को कृत्रिम वस्तु-अभाव पैदा कर कष्टो मे डाल रहे हैं। मिर्च-मसाला, नमक-आटा, तेल-घी कौन-सी ऐसी चीज है जो शुद्ध रूप मे प्राप्त होती है। इस स्थिति पर विचार करते हुए मुनिश्री कहते है कि "मूल बात यह है कि आज हम अपने देश की चीजो को हेय दृष्टि से देखते है। देश मे खुशहाली तो तभी होगी जब हम देश को प्यार करेगे। जो व्यापारी धोखा करते है वे देश को कमजोर करते हैं, ऐसे लोगो से देश की ताकत या दौलत नही बढ़ेगी। जिनेन्द्र के अनुयायी ही वस्तुओ का परिग्रह कर अपने धर्म से च्युत हो रहे है। महावीर ने अपरिग्रह का उपदेश दिया और मुहम्मद साहब ने अपने लिए कोई वस्तु दूसरे दिन के लिए उठाकर या बचा कर नही रखी। दोनो अपरिग्रही थे। मुनिश्री को खेद है कि आज इन दोनो के नामलेवा उन्ही के सदेश से पराङमुख है।

अपने अन्दर का अधकार

मुनिश्री पर्वों के मनाने के पक्ष मे तो है—चाहे वे राष्ट्रीय पर्व हो या सास्कृतिक पर्व हो लेकिन वे चाहते है कि इन पर्वो से सम्यक्त्व की उपलब्धि हो—इनसे ऐसा ज्ञानप्रदीप प्रज्वलित हो जो सभी के हृदय मे घिरे अधकार को नष्ट कर सके—'ज्ञानेनपुस सकलार्थ सिद्धि'—ज्ञान से सब इच्छाओ की पूर्ति हो सकेगी। दीपावली के विषय मे वे कहते है कि तीर्थंकर का दीप अर्पित करना भावनाओ के उज्ज्वल प्रतीको का समर्पण करना है। दीपावली को मात्र दीपो की अवली तक सीमित मत रखो, आत्मा की गहराई मे उतार कर देखो। ससार मे सारे पाप अधेरे मे ही होते है, इसीलिए अधेरे को दूर करो ससार को प्रकाशपुज से भरो, पाप-मुक्त करो। आज हमारी आजादी भी लाल किले पर तिरगा फहराने या राष्ट्रपति की सवारी निकालने तक परिसीमित है। यही तक आजादी नही, देशोन्नति मे जुटने और देश को खुशहाल बनाने मे ही आजादी है।

प्रकृति के अनन्य पुजारी

मुनिश्री प्रकृति के अनन्य उपासक हैं। प्रकृति के नाना मोहक रूपो मे वे भावात्मक एकता के दर्शन करते है। "हमारे देशवासी विदेशो की सैर करने को तो बडा महत्व देते हैं परन्तु अपने देश के गौरव हिमालय के प्राकृतिक सौदर्य की ओर ध्यान नही देते। उन्हे यहाँ आना चाहिये और यहाँ के प्राकृतिक सौदर्य का

लाभ उठाना चाहिये। हिमालय वह स्थान है जहाँ देश की भावात्मक एकता के दर्शन होते हैं। देश-भर के स्त्री-पुरुष यहाँ अपनी-अपनी धर्म-भावना लेकर आते हैं और पूरे देश का एक सुदर चित्र प्रस्तुत करते हैं।" उन्होंने कितने ही पर्वतीय स्थानो का भ्रमण कर यह अनुभव किया है। मुनिश्री सगीत के भी प्रेमी हैं, वे सगीतकार, कलाकार, कवि-साहित्यकार का समादर करते हैं, स्वय भी अच्छे साहित्यकार है। 'महावीर-भक्तिगगा' मे उनके सगीत-प्रवण हृदय की लय सुनायी देती है। हिन्दी मे उन्होने अनेक पुस्तको का प्रणयन किया है, जैनधर्म को आधुनिक परिवेश मे फिट करने का सफलायास परिलक्षित होता है। एक साहित्यकार के रूप मे उनकी जागरूक एव सूक्ष्म दृष्टि समाज और देश की हृदय-गति को पकडती चलती है।

एक राष्ट्र-सत, एक विश्व-सन्त

निसदेह आज जीवन के प्रतिमान परिवर्तित हो गये है। मनुष्य की सात्विक प्रवृत्तियाँ भौतिक ऐश्वर्य की चकाचौध मे सम्यक्त्व को देख नही पा रही है। ऐसे समय मुनिश्री का जीवन जो एक खुली पुस्तक है, उसका अवलोकन करना चाहिये। उनमे अदम्य साहस है और एक 'मिशनरी स्पिरिट' है। त्याग, तप, सयम, शौच, अपरिग्रह आदि उत्तम गुणो को अपने आचरण मे उतारने वाले मुनिश्री भगवान महावीर के सच्चे, निष्ठापूर्ण सदेशवाहक है। उनका जीवन पावन सुरसरि के सदृश सभी को बिना रग-भेद या सम्प्रदाय-वर्ग-भेद के समान रूप से पवित्र करने वाला, कलुषहर्ता है, पापमुक्त करने वाला है। राष्ट्रसन्त मुनिश्री की जीवन-दृष्टि मे हिमालय की उच्चता, आकाश की व्यापकता और सागर की गम्भीरता समाहित है। वे जीवन और देश की आधुनिक समस्याओ का समाधान जैनधर्म के परिवेश मे खोजने वाले राष्ट्र-सन्त है और एक विशाल विश्व-धर्म की स्थापना मे दत्तचित्त विश्वपुरुष के रूप मे ऊर्ध्वगामी है। □□

भोगो की लालसा एक अभ्रहीन मृगतृष्णा है। इसमे भटके हुए को पानी नही मिलता। मनुष्य को चाहिये कि वह जितना शीघ्र इस प्रदेश से निकल सके, निकल जाए, और उस सरोवर की खोज करे जिसमे निर्मल जीवन हो। —मुनि विद्यानन्द

विश्वधर्म के मन्त्रदाता ऋषि

एक दूसरे के प्रति आदर रखने और अनेकता के गर्भ मे विद्यमान एकता की ओर दृष्टि करने मे ही हमारा हित और बुद्धिमत्ता है।

—नाथूलाल शास्त्री

मुनिश्री के मुखारविन्द म विश्वधम का जयघोष श्रवण कर और उनके लोकहितकारी अध्यात्मपूरित सावजनिक प्रवचन मे सहस्रो की सख्या म उपस्थित विविध समाज की जनता को देखकर अनेक बन्धु यह प्रश्न करत है कि यह नवीन विश्वधम और उसका नारा मनिश्री का चलाया हुआ है और मनिश्री मवधर्मों (सम्प्रदायो) क मानने वाले है इस नाम से लोकानरजन का उनका क्या प्रयोजन है हमारे समक्ष भी एसी उत्कण्ठा और चर्चा प्रस्तुत की गयी है।

मानव हृदय का सस्कृत कर उसम विद्यमान विकारो को दूर करन का प्रयत्न ही धम का उद्देश्य है। जीवमात्र सुख और शान्ति स रहे आत्मन प्रतिकूलानि परेण न समाचरेत की भावना विकसित हो। अहिसा और समन्वय की भावना से यह भूतल स्वर्गोपम दृष्टिगोचर हो। प्राणिमात्र सघष स बच मत्स्यन्याय (सर्वाइवल आफ द फिटेस्ट) का आश्रय न ल इस आदश का प्रस्थापित करने और जीओ और जीने दो का सजीवन मत्र प्रदान करन हतु समय समय पर यगपुरुषो का प्रादुर्भाव होता रहा है। इन आदर्शों और लक्ष्यो पर कुठाराघात करने वाले भी उन युगपुरुषो के शिष्य या अनुयायी ही हुए हैं जिन्होने उनके उपदेशा के नाम पर बडी-बडी दीवार खडी कर दी और

कलह एव विद्वेष का बीज बो दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि युगपुरुषो और उनके उपदेशो के नाम पर भिन्न-भिन्न सप्रदाय (पथ) बन गये और परस्पर आदर एव सहिष्णता के स्थान पर बौद्धिक और शारीरिक हिंसा होने लगी।

वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकरो ने मानवता के विकास का मार्ग अहिंसा की ज्योति से ही अलोकित किया था। अहिंसा ही व्यापक एव मूल सत्य है जिसका साक्षात्कार श्रमण धारा के अनयायियो ने किया। आचार्य समतभद्र के शब्दो मे 'अहिंसा भताना जाति विदित ब्रह्म परमम' अर्थात अहिंसा परम ब्रह्म रूप है अहिंसा से ही परमात्मपद की उपलब्धि होती है और परमात्मपद ही अहिंसा का चरमोत्तम रूप है। आत्मा मे परमात्मा बनने के लिए मन वचन और काय रूप त्रिविध अहिंसा की परिपूर्ण साधना अपेक्षणीय है। जैनदर्शन केवल शारीरिक अहिंसा तक ही सीमित नही है वहाँ बौद्धिक अहिंसा भी अनिवार्य है। इस बौद्धिक अहिंसा को अनेकान्त स्याद्वाद समन्वय सहअस्तित्व सहिष्णता सर्वोदय विश्वधर्म और जैनधर्म आदि नामो मे सबोधित किया जाता है। मनिश्री विद्यानन्दजी ने उक्त नामो मे से 'अहिंसा धर्म की जय' और 'विश्वधर्म की जय' नामो को चन लिया है और वे अपने प्रवचनो मे जैनधर्म के सर्वोदयी भव्य प्रासाद के 'आचार मे अहिंसा विचार मे अनेकान्त वाणी मे स्याद्वाद और समाज मे अपरिग्रह इन चार महान स्तभो की महत्ता का विवेचन करते हैं। यह प्रासाद कोई नया नही है यग-यग मे तीर्थंकारो ने भी इसका जीर्णोद्धार किया है और इसे यगानुरूपता दी है। मनिश्री ने भी विश्व का हितकारी धम होने से इसके उक्त नामो मे से विश्वधर्म नाम को पसन्द किया है जो मुग्ध पुरुषो को नया दीखता है। वास्तव म हम प्रथाओ परम्पराओ और रीतिरिवाजा (रूढियो) म इतने बध गये है कि कोई भी नया शब्द नयी भाषा जिसमे हमारे त्रिकालाबाधित मलधम का ही प्रतिपादन और समथन होता हो यगानुरूपता को सहन नही कर सकत। हमारी मान्यता है कि जो हमारा है वही सत्य है न कि जो सत्य है वह हमारा है। लोकरूढियो म धम की कल्पना ने धम के यथार्थ रूप को परिवर्तित कर दिया है। साधु-जन परपरा से प्राप्त सप्रदाय रूपी शरीर को छोड नही सकते। उन्हे 'धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम के रहस्य को उदघाटित कर स्व पर का कल्याण करना है अपने कर्त्तव्य का परिपालन करते हुए जनता को भी धर्म की ओर प्रेरित करना है। जहाँ निग्रन्थ दीक्षा ग्रहणकर अपने शरीर घर समाज और उससे सबध रखने वाले माता पिता पुत्र पत्नी आदि परिवार का मोह छोडा जाता है उस कुटुम्ब की सीमित दीवार को तोडकर 'वसुधैव कुटुम्बकम के व्यापक दायरे मे विवेक-पूर्वक श्रमण-चर्या का निर्वाह करना पडता है, वहाँ भी 'स्व की व्यापक अनुभूति के लिए पर-मात्र से बधन-मुक्त होने का उद्देश्य टूट नही जाता है। परम्परानुसार आत्महित के साथ परहित (लोकसेवा) साधुजनो के लिए त्याज्य नही है।

वर्तमान युग समन्वय का अनुकूल युग है । भगवान् महावीर का पच्चीस सौवाँ परिनिर्वाण-महोत्सव सार्वजनिक रूप मे मनाया जाएगा । वीर-शासन मे जो मतभेद उत्पन्न हुआ और हम अनेक सप्रदायो मे विभाजित हुए, अब वह परिस्थिति भी नही रही । हम एकसूत्रता मे न बध सकें तो मन-भेद को भुलाकर प्रेम और सहयोग द्वारा सगठित हो सकते है ।

सपूर्ण विश्व मे अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिए पहले हम मे त्याग और समता-बुद्धि होना आवश्यक है । अब एक ही धर्म के अनुयायियो मे एक दूसरे को मिथ्या-दृष्टि कहना युग की पुकार नही है । युग की पुकार हमे मुनिश्री से जानना है । एक दूसरे के प्रति आदर रखना और अनेकता के गर्भ मे विद्यमान एकता की ओर दृष्टि करने मे ही हमारा हित और बुद्धिमत्ता है ।

सन् १८९३ मे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के अनुयायी बनकर भारतीय धर्मदूत स्वामी विवेकानद भौतिकवादी देश अमेरिका मे गये और भारतीय सस्कृति का शखनाद किया । शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन का वह अपूर्व दृश्य स्मरणीय है जब ससार के सभी दार्शनिक और तत्वज्ञानी स्वामीजी द्वारा विश्वधर्म की व्याख्या श्रवण कर मुग्ध हो गये थे । यद्यपि स्वामीजी वेदान्ती थे पर उन्होने विश्व-कल्याण, सहयोग, सामजस्य और अहिसा (युद्धविरोधी विचार) सबधी भारतीय धर्म की विशेषताओ का और सर्वधर्म-समन्वय का प्रतिपादन कर विदेश मे धर्म के प्रति महान् श्रद्धा एव आकर्षण उत्पन्न किया था । हमे आज देश और विदेशो मे अपने ऐसे ही व्यक्तित्व और भाषणो द्वारा एक नयी चेतना का सृजन करने वाले धर्म और सस्कृति के साधको की जरूरत है, जो सोई हुई आत्माओ को प्रबुद्ध कर सके । यह वातावरण किसी भी धर्म (सप्रदाय) की आलोचना का नही है, भावनात्मक एकता की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये । समतभद्र स्वामी के उस सर्वोदय तीर्थ (अनेकान्त) को स्मरण रखा जाए जो समस्त आपत्तियो, वैर-विरोधो को दूर करने वाला और सर्व प्राणियो मे मैत्री कराने वाला है । अपने इसी विशिष्ट व्यक्तित्व और शैली मे दिये गये मधुर एव ओजस्वी प्रवचनो मे विश्वधर्म के मत्रदाता ऋषि मुनिश्री विद्यानन्दजी है, जो कर्तरिका (कैंची) का काम न कर सूची (सुई) का काम करते है । □□

पक-पथो पर चलता हुआ मनुष्य जब मृत्यु का अतिथि होता है, तब ऐसा लगता है कि लाल (मणि) गँवाकर कोई थका-हारा, लुटा-पिटा व्यक्ति श्मसान के शवो की शान्ति-भग करने आ पहुँचा हो । —मुनि विद्यानन्द

विद्यानन्द-साहित्य : एक सर्वेक्षण

विरचित

१ **अनेकान्त-सप्तभंगी-स्याद्वाद** (इस पुस्तक मे जैन-दर्शन की प्राचीनता के साथ सत्य को जानने की पद्धति के रूप मे अनेकान्त-स्याद्वाद का विश्लेषणात्मक एव तुलनात्मक सप्रमाण विशद विवेचन किया है), मेरठ, १९६९ ।

२ **अपरिग्रह से भ्रष्टाचार-उन्मूलन** (इस पुस्तिका मे मार्गदर्शन दिया है कि किस प्रकार अपरिग्रह को अपनाने से भ्रष्टाचार को जड-मूल से मिटाया जा सकता है), आगरा, नवीन सस्करण १९७२ ।

३ **अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग** (यह पुस्तक एक गहन अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करती है। सोलहकारण के अन्तर्गत चौथी भावना 'अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग' है, मुनिश्री ने कई रोचक सदर्भ देकर विषय को सरल और उपयोगी बना दिया है । यह उत्कृष्ट दार्शनिक कृति है), इन्दौर १९७१ ।

४ **अहिंसा : विश्वधर्म** (यह एक ऐसी कृति है, जिसे जैन-जैनेतर ज्ञान-पिपासुओ ने तो पढा ही किन्तु जिसने विदेशो का ध्यान भी आकर्षित किया है), इन्दौर, १९७३ ।

५ **आदिकृषि-शिक्षक तीर्थंकर आदिनाथ** (इस पुस्तिका मे 'आदि पुराण' के महत्त्व-पूर्ण तथ्यो को उद्घाटित करते हुए समझाया है कि भगवान् आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट कृषि मार्ग को अपनाना राष्ट्र के लिए अत्यन्त उपादेय और हितकर है), आगरा, नवीन सस्करण १९७२ ।

६ **आध्यात्मिक सूक्तियाँ** (मुनिश्री ने आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने वाले आत्मशोधार्थियो के लिए एक प्रेरक आध्यात्मिक चयनिका के रूप मे इस पुस्तिका को तैयार किया है । चुने हुए बोधप्रद सूक्तो का यह ऐसा अप्रतिम सकलन है, जिसमे श्लोको को अर्थसहित प्रस्तुत किया गया है), इन्दौर, १९७३ ।

७ **ईश्वर कहाँ है ?** (इस पुस्तिका मे ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या के साथ स्पष्ट किया है कि चरित्र ही ईश्वरीय रूप है), आगरा, नवीन सस्करण १९७२ ।

८ **कल्याण मुनि और सम्राट् सिकन्दर** (इस पुस्तिका मे तीर्थंकर आदिनाथ और महावीर के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करने के साथ ही सिकन्दर के भारत पर

आक्रमण करने, उमकी कल्याण मुनि से भेट होने, फिर मुनिश्री का यूनान मे विहार करने आदि की शोधपूर्ण मामग्री प्रस्तुत की है), आगरा, नवीन सस्करण १९७२ ।

९ **गुरु-संस्था का महत्त्व** (इम पुस्तिका मे समझाया है कि किस प्रकार गुरु मम्यक्त्व की त्रिधारा के मूर्तरूप है, उनके सद्भाव मे समाज पशुत्व से मनुष्यत्व और देवत्व की ओर अग्रसर होता है), जयपुर, १९६४ ।

१० **तीर्थंकर वर्द्धमान** (मुनिश्री ने अपने मेरठ-वर्षायोग १९७३ मे जो अध्ययन-अनुसधान किया और जो अभीक्ष्ण स्वाध्याय-सिद्धि की, उसी की एक अपूर्व परिणति है उनकी आज मे बीसेक वर्ष पूर्व प्रकाशित कृति 'वीर प्रभु' का यह आठवाँ उपस्कृत सस्करण इसमे भगवान् महावीर के जीवन पर खोजपूर्ण सामग्री तो दी ही है, साथ ही उन तथ्यो का भी सतुलित समायोजन किया है जो अब तक हुई गभीर खोजो के फलागम है। यही कारण है इसमे प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, ज्योतिषिक, सास्कृतिक तथा मामाजिक दृष्टियो मे महत्वपूर्ण प्रमाणिक विवरण भी सम्मिलित है, यह ग्रन्थ अनेकान्त पर व्यापक जानकारी से युक्त है), इन्दौर १९७३ ।

११ **दैव और पुरुषार्थ** (इस पुस्तिका मे दैव की उपासना पुरुषार्थ-परायण होकर करने की प्रेरणा दी गयी है), आगरा, नवीन सस्करण १९७२ ।

१२ **नारी का स्थान और कर्तव्य** (इस पुस्तिका मे नारी-जीवन को एक स्वस्थ और तेजस्वी मार्गदर्शन दिया गया है), इन्दौर, १९७१ ।

१३ **निर्मल आत्मा ही समयसार** (यह कुन्दकुन्दाचार्य की बहुमूल्य कृति 'समयसार' पर मुनिश्री के स्वतन्त्र सारपूर्ण, मौलिक प्रवचनो का अपूर्व ग्रन्थ है), इन्दौर, १९७२ ।

१४ **पावन पर्व रक्षाबन्धन** (इस पुस्तिका मे रक्षाबन्धन को मैत्री-पर्व, सौहार्द-महोत्सव के साथ 'वात्सल्य-पूर्णिमा' के रूप मे प्रस्तुत किया है । कथा भी रोचक शैली मे दी है), आगरा, नवीन सस्करण १९७२ ।

१५ **पिच्छि-कमण्डलु** (मुनिश्री-रचित कृतियो मे इस ग्रन्थ को शीर्षस्थ स्थान प्राप्त है यह एक ओर मौलिक एव सारगर्भित है, तो दूसरी ओर मुनिश्री के प्रातिभ दर्शन एव क्रान्तदृष्टित्व से ओतप्रोत है । इस ग्रन्थराज मे जिनेन्द्र भक्ति, गुरु-सस्था का महत्त्व, नरजन्म और उसकी सार्थकता, जैनधर्म-मीमासा चारित्र बिना मुक्ति नही, पिच्छि और कमण्डलु, शब्द और भाषा, वक्तृत्व-कला, मोह और मोक्ष, लेखन-कला, साहित्य, स्वाध्याय और जीवन, समाज, सस्कृति और सभ्यता, वर्षायोग, धर्म और पन्थ, दीक्षा-ग्रहण-विधि, सल्लेखना जैसे विविध एव व्यापक विषयो का समावेश हुआ है । इनमे प्रतिपादित विषयो ने आगे चलकर स्वतन्त्र पुस्तिकाओ का स्वरूप ग्रहण कर लिया है), जयपुर, द्वितीय सस्करण (परिवर्द्धित-सशोधित) १९६७ ।

१६. **मन्त्र, मूर्ति और स्वाध्याय** (इस पुस्तिका मे णमोकार मन्त्र माहात्म्य, मूर्तिपूजा के रहस्य और स्वाध्याय के जीवन मे महत्त्व को प्रतिपादित किया है), जयपुर, १९६४।

१७ **महात्मा ईसा** (इस पुस्तिका मे ईसा मसीह के भारत-आगमन, उन पर श्रमण-सस्कृति का प्रभाव-जैसे तथ्यो के बारे मे सप्रमाण लिखा है कि इतिहासविद् तथा शोधकर्त्ता इस बात पर प्राय एकमत हैं कि महात्मा ईसा का सुप्रसिद्ध गिरिप्रवचन तथा पीटर, एण्ड्रू, जेम्स आदि शिष्यो को दिये गये उपदेश जैन-सिद्धान्तो के अत्यन्त समीप है)

१८ **विश्वधर्म की रूपरेखा** (इस पुस्तक मे भगवान् ऋषभनाथ से महावीर तक की तीर्थंकर परम्परा की प्रामाणिकता प्रस्तुत करते हुए जैनधर्म की प्राचीनता का विवेचन किया है और प्रतिपादित किया है कि विश्व का सर्वसम्मत, विश्व-हितकारी धर्म 'अहिसा' है। 'विश्वधर्म' की रूपरेखा अहिसामयी है), दिल्ली, द्वितीय सम्करण १९६६।

१९ **विश्वधर्म के दशलक्षण** (यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमे विश्वधर्म की एक सुसगत रूपरेखा प्रस्तुत हुई है), इन्दौर १९७१।

२० **विश्वधर्म के मगल पाठ** (इस पुस्तक मे परम्परागत सामग्री को नये ढग से शुद्ध तथा मौलिक रूप मे प्रस्तुत किया गया है), इन्दौर, १९७१।

२१ **वीर प्रभु** (इस पुस्तिका मे भगवान् महावीर का सक्षिप्त किन्तु साग्पूर्ण परिचय है, साथ ही उनके दिव्य उपदेशो को सरल-सरस लोकभाषा मे प्रस्तुत किया है), आगरा, छठा सस्करण १९६६।

२२ **सप्त व्यसन** (इस पुस्तक मे वसुनन्दी श्रावकाचार के सदर्भ मे 'सप्त व्यसन'-जैसे परम्परित विषय को बडे रोचक रूप मे प्रस्तुत किया गया है), इन्दौर १९७१।

२३ **समय का मूल्य** (यह पुस्तक एक उत्कृष्ट कृति है। इसमे समय की महत्ता पर कई रोचक तथ्य है, इसकी शैली मन को मथ डालने वाली है), इन्दौर १९७१।

२४ **सर्वोदय तीर्थ** (इस पुस्तिका मे स्पष्ट किया है कि सर्वोदय तीर्थ की परिकल्पना किस प्रकार विश्व मानवो के सपूर्ण हितो की रक्षा करने मे सक्षम है), आगरा, नवीन सस्करण १९७२।

२५ **सुपुत्रःकुलदीपकः** (इस पुस्तिका मे आज के यन्त्र-युग मे कुल-दीपक विश्वदीपक कैसे बन सकते है, इस सदर्भ मे युवा-पीढी को बडा ही प्रेरक उद्‌बोधन दिया है), आगरा, नवीन सस्करण १९७२।

२६ **स्वतंत्रता और समाजवाद** (मुनिश्री ने तत्त्वार्थसूत्र के कई सूत्रो को एक नये ही सदर्भ मे प्रस्तुत किया है। पुस्तक युगान्तरकारी है और जैन-तथ्यो के सदर्भ मे पहली बार समाजवाद की व्याख्या करने मे समर्थ है), इन्दौर १९७१।

२७. **श्रमण संस्कृति और दीपावली** (इस पुस्तक मे श्रमण सस्कृति और उसकी उपलब्धियो का विवेचन करते हुए राष्ट्रीय पर्व दीपावली की महत्ता स्पष्ट की गयी है साथ ही उसके आयोजन को दिशा भी दी है), इन्दौर १९७२।

संकलित

अमृतवाणी (यह पुस्तक मुनिश्री के इन्दौर वर्षायोग मे दिये गये कतिपय महत्त्व-पूर्ण प्रवचनो के मुख्याशो का सकलन है) इन्दौर, १९७२।

पच्चीस सौ वाँ वीर-निर्वाणोत्सव कैसे मनायें (दिल्ली मे ८ जुलाई, १९७३ को दिये गये क्रान्तिकारी प्रवचन का सपादित रिर्पोटिंग, दिशादशन देने मे समर्थ तेजस्वी विचार) इन्दौर १९७३ ।

मगल प्रवचन (गाधी-शताब्दी पर प्रकाशित इस पुस्तक मे १०५ विषया का समावेश किया गया है। मुनिश्री द्वारा समय-समय पर दिये गये प्रवचन का यह विषयानुक्रम मे सकलित एव सपादित सार-सक्षिप्त है), मेरठ द्वितीय सस्करण १९६९।

मगल प्रवचन (गाधी-शताब्दी पर प्रकाशित द्वितीय सस्करण १९६९ का यह पॉकेट बुक मे तृतीय सशोधित सस्करण है। इन मगल प्रवचना का स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि इन्हे पढ जान पर जैनधर्म की एक लोकोपयोगी मूर्ति स्वयमेव आँखो के सामने आ खडी होती है) श्री महावीरजी (राजस्थान,) १९७३ ।

ज्ञान दीप जलें (प्रेरक प्रसगो से भरपूर मुनिश्री के अहिसा का पथ प्रशस्त करने वाले विचार नवनीत, इस पॉकिट बुक मे श्रमण सस्कृति और उसकी उपलब्धियाँ सस्कृति और धर्म, धर्म दिगम्बर मुनि और श्रमण, दीपावली समय का मल्य, अरभीक्षण ज्ञानोपयोग, सप्त व्यसन आदि विषयो का साराश दिया गया है), मेरठ १९७३ ।

मुनि विद्यानन्द की जीवनधारा (स्व विश्वम्भरसहाय प्रेमी द्वारा लिखित इस पुस्तक मे मुनिश्री की विचारधारा तथा प्रेरक सन्देश सक्षिप्त रूप मे सपादित किय गये है, साथ ही अनक सतो, विद्वानो और नेताओ स उनकी भेटो का विवरण भी दिया गया है), सहारनपुर, १९६९ ।

हिमालय मे दिगम्बर मुनि (पद्मचन्द्र शास्त्री द्वारा रचित यह ग्रन्थ मुनिश्री के आध्यात्मिक परिव्रजन तथा चातुर्मास की दैनदिनी है, इसमे उनके प्रवचना के जो भी अश आये है, वे भारतीय सस्कृति के मर्मज्ञो के बड काम के है, इसमे मुनिश्री के विराट् व्यक्तित्व का आभास मिलता है। सपूण कृति मुनिश्री के आत्मबल और प्रखर साधना की गौरवगाथा है। यह एक यात्रा-ग्रथ तो है ही, साथ ही यह ऐसा अद्वितीय ग्रन्थ भी है, जिसमे इतिहास, समाजशास्त्र, सस्कृतिशास्त्र, भाषा-विज्ञान, धर्म तथा नीतिशास्त्र, प्रजाति-विज्ञान इत्यादि आकलित है। प्रस्तुत ग्रन्थ मुनिश्री की आत्मोपलब्धि का सार-सक्षेप तो है ही, लोकोपलब्धि का भी एक सशक्त सदर्भ है), श्रीनगर-गढवाल (हिमालय), १९७० ।

अगूर (मुनिश्री की प्रेरणा से सकलित इस पुस्तक में चुने हुए स्त्रोत, पाठ और भजन सम्मिलित है श्रमण जैन भजन प्रचारक सघ द्वारा प्रकाशित एव प्रसारित इसकी विभिन्न सस्करणो के रूप मे डेढ लाख से ऊपर प्रतियाँ बिक चुकी हैं, कतिपय भजनो के रिकार्ड भी बन गये हैं) ।

ऐतिहासिक महापुरुष तीर्थंकर वर्धमान महावीर (इसकी रचना मुनिश्री के सान्निध्य मे डा जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल ने की है। इसमे लेखक ने मुनिश्री के निर्देशन मे महावीर के जीवन का असदिग्ध वृतान्त प्रस्तुत किया है), मेरठ, १९७३ ।

जैन इतिहास पर लोकमत (इसमे जैन दर्शन तथा इतिहास के विषय मे भारत क सुप्रसिद्ध विद्वानो के प्राजल मत सग्रहीत है), मेरठ, १९६८ ।

जैन शासन का ध्वज (यह जैन ध्वज के स्वरूप, इतिहास और व्यक्तित्व पर सर्वप्रथम प्रकाशन है, सप्रदायातीत तथ्यो स युक्त बहुरगी पुस्तक मुनिश्री के मार्गदशन मे डा जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल ने तैयार की है), मेरठ, १९७३ ।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ भक्तिगगा (इस पुस्तक के प्राग्भ म तीर्थंकर पाश्वनाथ का जीवन-चरित्र दिया गया है। भ पार्श्वनाथ से सम्बन्धित १०१ भजनो को अथसहित प्रस्तुत किया गया है। इसके सकलन , सपादक और अनुवादक है डा प्रेमसागर जैन), दिल्ली १९३९ ।

तीर्थंकर महावीर भक्तिगगा (यह मुनिश्री के पावन हृदय की प्रेरणा का परिणाम है। प्रारभ मे मुनिश्री द्वारा सक्षेप मे लिखित तीर्थंकर महावीर का जीवन-चरित्र है। इसमे भ महावीर मे सम्बन्धित स्त्रोत तथा ४८ भजनो को अर्थसहित प्रस्तुत किया गया है), दिल्ली १९६८ ।

भक्ति के अगूर और सगीत-समयसार (मुनिश्री की प्रेरणा से डा नेमीचन्द जैन द्वारा सपादित यह पुस्तक 'अगूर और 'सुसगीत जैनपत्रिका' से किंचित् आगे की चीज है। इसमे कुछ सामग्री नई और कुछ पुन सकलित है), इन्दौर, १९७१ ।

भरत और भारत (मुनिश्री के मार्गदर्शन मे डा प्रेमसागर जैन द्वारा रचित इस पुस्तक मे ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत को ही इस देश के नाम 'भारतवर्ष का मूलाधार ऐतिहासिक एव पौराणिक प्रमाणो द्वारा सिद्ध किया गया है), बडौत, १९६९ ।

भारतीय संस्कृति और श्रमण परम्परा (डा हरीन्द्रभूषण जैन द्वारा लिखित श्रमण सस्कृति को इतिहास और अनुसधान के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करने वाली यह एक प्रमाणिक पुस्तक है, छोटी किन्तु तथ्य की धनी एक महत्त्वपूर्ण कृत्ति है), मेरठ, १९७३।

वीर निर्वाण विचार सेवा (मुनिश्री की प्रेरणा, प्रात्साहन और आशीर्वाद से श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति इन्दौर के अन्तगत कार्यरत यह अखिल भारतीय विचार सेवा (फीचर सर्विस) विविध धार्मिक अवसरा और पर्वों पर जैन-जैनेतर विद्वानो से सपारिश्रमिक सामग्री तैयार करना कर पत्र-पत्रिकाओ मे नि शुल्क प्रकाशनार्थ वितरित करती ह। इसके द्वारा प्रसारित सामग्री को मराठी तथा गुजराती पत्रो ने भी अनुवाद के रूप म प्रकाशित किया है। इसके 'पर्युषण-अक और २५०० वा वीर-निर्वाण महोत्सव सदर्भ म एक दिशादर्शन कायक्रम और आयोजन-अक काफी लोकप्रिय हुए है) इन्दौर १९७२।

सुसगीत जैन पत्रिका (इसमे जैन सगीत को लेकर बडी मौलिक और खोजपूर्ण सामग्री है। वास्तव मे जैन सगीत को लेकर इतना अच्छा सकलन अब तक देखने मे नही आया। इसम कई लेख अनसधान की निधि है। पत्रिका की एक बडी विशषता यह है कि इसने अपने अन्तर्भारती स्वरूप के कारण अखिल भारत की जैन प्राणधारा को एक सूत्र मे पिरो लिया है) श्रमण जैन भजन प्रचारक सघ दिल्ली १९७०।

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर (मुनिश्री के मार्गदशन मे पदमचन्द्र शास्त्री द्वारा प्रस्तुत भगवान् महावीर के जीवन पर पहली बार अत्यन्त प्रामाणिक तथ्यो पर आधारित पठनीय सामग्री तथा प्राचीन प्रतिमाओ के दुलभ चित्रो से युक्त कृति) इन्दौर, प्रकाश्य १९७४। ○○

ज्ञानी ज्ञान और वैराग्य के दो तटो मे घरकर जीवन-नदी को मोक्ष-समुद्र तक पहुँचाने मे प्रयत्नशील रहना है। उसन निमल जल मे सस्कृति के कमल खिलते हैं। उससे स्पर्श कर जो पवन गुजरता है, वह शीतलता से भर जाता है। उसके तटों पर जो बीज गिरते हे, उनक छायादार वृक्ष बनते है और उसके पास प्यास लिये अजलि बढाता है, उस अमृत पीने को मिलता है।

—मुनि विद्यानन्द

तपस्या के चरण

चलते-चलते राह बन गये, तपते-तपते बने उजाली।
तन प्राणी-प्राणी का तन है, मन उपवन उपवन का माली ।।

रूप अतन, जीवन चन्दन है, रोम-रोम कमलों का वन है।
श्वासों मे साहित्य सुमन है, हाथों मे विद्या का धन है ।।
बात-बात मे गाधी-वाणी, राग-राग मे भोले शकर।
अधरों पर दुखियो की कविता, आँखों मे सारे तीर्थंकर ।।
विद्या-धन ऐसा सागर है–जो न कभी रत्नों से खाली।
चलते-चलते राह बन गये, तपते-तपते बने उजाली ।।

दुनिया त्यागी, कपडे छोडे, छोडा नहीं हृदय कवियों का।
जोडा नहीं, दिया दाता को, तोडा नही हृदय कवियों का ।।
उपवासों मे जग को भोजन, मौन व्रतों मे मत्र ज्ञान के।
मस्तक पर त्रय रत्न दीप्त है, उर मे अकित शब्द ध्यान के ।।
मन्दिर-मन्दिर के दीपक स्वर, चाह अमर पूजा की थाली।
चलते-चलते राह बन गये, तपते-तपते बने उजाली ।।

जिधर दिगम्बर पग धरते है, उधर बुझे दीपक जल जाते।
जिस पर दया-दृष्टि करते है, उसके नष्ट बीज फल पाते ।।
जो सत्सग नहीं तजता है, उसको दाग नहीं लगता है।
जो चरणों को मुकुट बनाते, उनको स्वार्थ नहीं ठगता है ।।
मानस मे शशि की शीतलता, माथे पर सूरज की लाली।
चलते-चलते राह बन गये, तपते-तपते बने उजाली ।।

स्याद्वाद मे सबकी बोली, भावों मे भक्तों की भाषा।
पूजा मे जन-जन की पूजा, चावों मे सबकी अभिलाषा ।।
गतिविधि मे युग-युग की निधियाँ, यति मे विश्व-क्रान्ति की सीता।
प्रकट हुआ आलोक वीर का, मुखर हुई मुनियों की गीता ।।
रसना नही रसों से खाली, साधू नहीं गुणों से खाली।
चलते-चलते राह बन गये, तपते-तपते बने उजाली ।।

☐ रघुवीरशरण 'मित्र'

(संयुक्त पुरुष : श्रीगुरु विद्यानन्द, पृष्ठ ३४ का शेष)

आज का 'त्राहिमाम्' पुकारता विश्व लोकवल्लभ विद्यानन्द को अपने बीच धुरी के रूप में पाना चाहता है।

का सेठाश्रयी पडित होने को अपनी आत्मा का अपमान समझता है। जिनेश्वरी के धर्म-शासन की व्याख्याता वह पक्ति-परम्परा आज लुप्तप्राय है, महाराज! गोपालदास बरैया और गणेशप्रसाद वर्णी की जनेता धर्म-कोख आज बाँझ होने की हद पर खडी है। *क्या समाज के सर्वेश्वरो को इसकी चिन्ता कभी व्यापी है? कतई नही। कान* पर जूँ तक नही रेंगती, क्योकि यह व्यवस्था गैरसामाजिक और गैरजिम्मेवाराना है। यह समाज है ही नही, केवल व्यक्त स्वार्थो के पारस्परिक गठबन्धन की दुरभि-सन्धि है।'

'जानता हूँ। जो तुम्हारा दर्द है, वही तो मेरा भी दर्द है! सब कहो, सुनना चाहता हूँ।'

' धर्म-शास्त्र और जिनोपदिष्ट तत्त्वज्ञान का ककहरा तक भी न समझने वाले समाज के चोटीपतियो ने धर्ममूर्ति ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद, बैरिस्टर चम्पतराय, बैरिस्टर जुगमन्दरलाल जैनी, अर्जुनलाल सेठी और न्यायाचार्य प महेन्द्रकुमार जैन जैसे जाने कितने ही जिनेश्वरी सरस्वती के धुरन्धरो पर तरह-तरह के कलक और लाछन लगाये। कइयो को प्रस्ताव पास करके जाति-बहिष्कृत भी किया गया। उन पर अत्याचार हुए। और सुनाऊँ, महाराज ?'

'कह दिया न, सब सुनाओ।'

'जैन पुरातत्त्व के विलक्षण खोजी और जिनवाणी के अनन्य उद्धारक प नाथूराम प्रेमी ने जब सर्वप्रथम जैन वाङमय को मुद्रित कर प्रकाशित किया, तो शास्त्र की आसातना के इस पाप की खातिर, उनकी दूकान को बम्बई की गटरो मे फिकवा दिया गया। उसके बाद नाथूराम प्रेमी ने जिन-मन्दिर का द्वार नही देखा। आज उन्ही प्रेमीजी की कृपा के प्रसाद से छापे मे मुद्रित जैन शास्त्र बम्बई के उसी 'मारवाड़ी मन्दिर' से लगाकर सारे भारत के जिन-मन्दिरो के भण्डारो मे समादृत भाव से विराजमान हैं, और लाखो जैनियो के धर्म-लाभ का सुलभ साधन हो गये है। ऐसी तो बेशुमार कहानियाँ हैं, महाराजश्री।'

'एक और तुम्हारे मन मे आ रही है, वह भी सुना दो।'

'नवीन भारत के ऋषि-कल्प साहित्यकार और चिन्तक जैनेन्द्रकुमार की माँ की लाश उठाने के लिए आने को दिल्ली के हर जैन श्रावक ने इनकार कर दिया। और माँ के शव के पास एकाकी खडे निरीह जैनेन्द्र की आँखो आगे,श्राविकाश्रम की अधिष्ठात्री रामदेवी की लाश पर, आश्रम के हिसाब-किताब की जाँच-कमेटी बैठी। उसके बाद जैनेन्द्र ने अपने को 'जैन' कहा जाना पसन्द नही किया।" जैन तो मेरे नाम के साथ भी लगा है,

पर तथाकथित जैनत्व की सीमाओ से मैं कभी का निष्क्रान्त हो चुका। . इस समाज की आज भी वही मनोवृत्ति है, आज भी वही रवैया है—शायद हालत बदतर है।....'

'वह तो है, अब तुम क्या कहना चाहते हो ?'

'यही कि हिसाबी-किताबी द्रव्य का अन्न खाकर, महावीर लिखना मुझ ब्रह्म-कर्मी के वश का नही है। मुझे इस मायाजाल से कृपया मुक्त ही रखें। केवल आपका आशीर्वाद चाहता हूँ कि अपने आत्मगत महावीर की रचना करने मे सफल हो सकूँ। 'योगक्षेमवहाम्यह' श्री महावीर मेरा भार उठायेगे ही ।'

स्पष्ट देख सका, मेरा शब्द-शब्द मुनिश्री के हृदय के आर-पार गया है। मेरी आवाज़ के दर्द से उनका पोर-पोर अनुकम्पित हुआ है; फिर भी वे निश्चल हैं। अपलक एकटक मेरी ओर निहार रहे है। फिर निरुद्वेग शान्त स्वर मे बोले

'नही, अब मेरे हाथ से छटक जाओ, यह सम्भव नही। सुनो वीरेन्द्र, मैं भी तुम्हारी ही तरह बालपन से ही विद्रोही रहा हूँ। और आज जो कुछ हूँ, वह उसी की चरम परिणति है। अभी कुछ बरस पहले मेरे साथ भी ऐसी नौबत आयी थी। कहा गया था, इस साधु की रोटी बन्द कर दो, इसे कपडे पहना दो। यह पर धर्मों की मिथ्यादृष्टि शास्त्र-वाणी का व्याख्यान करता है। लेकिन मै मैदान मे डँटा रहा, भागा नही अपनी आन पर अविचल रहा। आज देख ही रहे हो, कहाँ हूँ ?'

'आपकी और बात है, महाराज, आप गृह-त्यागी सन्यासी है, और आपके पास प्रत्यक्ष तपोबल है, जिसे कोई हरा नही सकता। मैं ठहरा परिवार-भारवाही गृहस्थ और फिर भी स्वैराचारी कवि कई मोर्चों पर एक साथ लडने को मजबूर। ऐसे मे मेरे आन्तर तपो-सघर्ष और उन्मुक्त भावोन्मेष को समझने का कष्ट यहाँ कौन करेगा ?'

"मं करूगा तुम्हारी प्रेमाकुल विद्रोह-मूर्ति के पीछे इस बार मैं खडा हूँ। यह क्या काफी नही होगा ?'

मैं आपा हार कर नतमाथ समर्पित हो रहा। समझ गया, यह 'गुरु साक्षात् परब्रह्म' का अचूक आश्वासन, और अकुतोभय अभय-वचन है। मैंने कहा :

' 'भगवन्, मेरे हृदय मे जो महावीर इस घडी उठ रहे है, वे आज की असत्य, हिसा, चोरी, परिग्रह और व्यभिचार की बुनियाद पर खडी आसुरी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के दिगम्बर ज्वालामुखी की तरह प्रगट होगे। अपने समय के पथभ्रष्ट ब्राह्मणत्व, क्षात्रत्व और वणिकत्व के विरुद्ध भी, वे इसी प्रकार प्रलयकर शकर की तरह उठे थे। ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज के सयुक्त अवतार, उस पुरुषोत्तम ने अपने काल की ससागरा पृथ्वी की धुरी हिला दी थी; और उसे वस्तु-सत्य की स्वाभाविक धर्मधुरी पर पुनर्प्रतिष्ठित किया था। यही होगा मेरे महावीर का स्वरूप। .'

'मेरा महावीर भी वही है, और उसकी युगानुरूप जीवन्त मूर्ति तुम्हारे सिवाय आज कौन इस देश मे गढ़ सकेगा ? इसी कारण तो तुम्हे खोज रहा था। और लो, तुम स्वयम् ही आ गये।....'

एसे वल्लभ के हाथ स छटक कर अन्यत्र कहाँ शरण है ? मन्दिर मे जो भगवान प्रतिमा-योगासन मे बैठ है वही तो अभी मेरे सामने बोले । बरबस ही उम प्रेममूर्ति साधु के वीतराग घुटने पर फिर मेरा माथा जा ढलका । मयूर-पीछी के कई मृदु-मन्द आघात मेरी चेतना को अगम्य ऊचाइया मे उत्क्रान्त करते चले गए ।

और आज देख रहा हूँ श्रीगुरु विद्यानन्द की वह मात्रिक वाणी मेरी कलम पर सावार हो रही है । ऐसा लगता है मानो चाँदनपुराधीश्वर के चरणो मे बैठ हैं भगवद्पाद गुरुदेव विद्यानन्द और उनकी गोद मे कवि युवराज की तरह रस-समाधि मे निमज्जित लेटा है और उसकी लेखनी पर भगवान आपोआप उतरत चले आ रह हैं । ○

अगले दिन सवरे बिदा लेने गया । गुरु भगवान बोले एक वस्तु तुम्हे देनी है । मेरे मस्तक पर पीछी डालते हुए व उठकर अन्दर गय । लाकर जो गोपन चिन्तामणि वस्तु उन्होने मेरे हाथ पर रक्खी उसको अनावरण करने का अधिकार मुझ नही है । बोले कि नित्य इसका अभिषक-आराधना करो फिर देखो क्या होता है ! जो हुआ है सो तो आज देख ही रहा हूँ ।

श्रीगुरु के पाद प्रान्त मे जाने कितनी देर माथा ढाल रहा । फिर सर उठाकर घुटनो के बल बैठा तपस्वी के उस विश्व विमोहन स्वरूप को निहारता रह गया । प्राण मे जन्म जन्मो के सारे सचित दु ख-कष्ट एक साथ उमड आय । शब्द असम्भव हो गया । आखो मे उजल रही आरती मे ही सब कुछ आपोआप निवदन हो गया । अकातर असलग्न निरावग फिर भी नितान्त आत्म वल्लभ-सी वह वीतराग दृष्टि अनिमेष मुझ पर लगी रही ।

अद्वैत मिलन की उस अकथ घडी के साक्षी थे केवल बाबूभाइ पाटादी ।

जयपुर जाने को तैयार खडी बस की ओर तेजी स लौट रहा था । पर पैर धरती पर नही पड रहे थे । उसी महाभाव मूर्ति की परिक्रमा कर रह थ जिसे देश काल म पीछ छोड आया था । पर क्या सचमच पीछ छोड आया था और क्या फिर लौट कर अन्यत्र जाना सम्भव हो सका था ?

जीवन म कई चेहरे हृदय पर अंकित हुए होग । कोई कामिनी प्रिया मरी सासा तक पर छपकर रह गयी होगी । किसी आवाज की विदग्ध मोहिनी से मै बरसा पागल रहा हूगा । पर कोई मुख छबि कोई आवाज कोई मुस्कान मेरे आत्म द्रव्य के हाथ एसी तद्रूप न हो सकी कि जो स्मरण करते ही सागोपाग मेरे समक्ष मूत हो जाये । केवल एक मुख छबि एक आवाज एक मुस्कान एसी है जो देश-काल के सारे व्यवधानो को भदकर चाहे जिस क्षण मेरे अन्तर मे हठात बिजली की लौ की तरह जीवन्त और ज्वलन्त हो उठती है । वही जिसे पहली बार १० अक्टबर १९७२ के दिन चाँदनपुर मे देखा और सुना था । वह फिर अनन्त अपनी हो कर रह गयी ! ○

एक प्रेरक व्यक्तित्व : मुनिश्री विद्यानन्द स्वामी

अपने लडकपन मे मैंने कई दिगम्बर मुनि देखे थे, और उनके घिसे-पिटे धर्मोपदेशो को सुनकर मुझे बेहद बोरियत महसूस होती थी। उन प्रवचनो मे न तो कोई ज्ञान होती थी, और न रोजमर्रा की जिन्दगी से कोई सीधा सबध। वे शुष्क शब्दो मे और उबा देने वाले तोतारटन्त अन्दाज मे रूढ जैनाचार का व्याख्यान करते थे।

—डॉ ज्योतीन्द्र जैन

सन् १९७२ के जुलाई मे मै वियेना विश्वविद्यालय से पीएच डी लेकर, तीन वर्ष के यूरप प्रवास के बाद, एक प्रशिक्षित नृतत्त्व-वैज्ञानिक (एन्थ्रॉपोलॉजिस्ट) के रूप मे भारत लौटा। मैं तब ज्यूरिख (स्विट्जरलैण्ड) के 'रीटबर्ग म्यूजियम' के एक शोध-वैज्ञानिक की हैसियत से भारत मे जैन कला और सस्कृति पर प्रलेखन-कार्य (डाक्यूमेन्टेशन) करने आया था। इससे पूर्व मैं आदिम कबीलाई धर्मो के अध्ययन मे तज्ञता प्राप्त कर चुका था। यही मेरे प्रशिक्षण का विषय रहा था। और इसमे मुझे बुनियादी दिलचस्पी थी।

यद्यपि एक दिगम्बर जैन परिवार मे ही मेरा जन्म हुआ था, किन्तु बचपन मे और उसके बाद भी जैनधर्म के किसी भी पहलू से मै आकृष्ट न हो सका था। मगर उसके बाद एक आधारभूत तत्त्व मे मुझे बेशक दिलचस्पी रही, और वह था ईश्वर का अस्वीकार, तथा व्यापक अर्थ मे उसकी यह मान्यता कि व्यक्ति स्वय ही अपने कर्मानुसार अपने सुख-दु ख के भोगो के लिए जिम्मेवार है। वही अपने भाग्य और जीवन-स्थिति का निर्णायक है, कोई अज्ञात विधाता या ईश्वर नही। इसके अतिरिक्त जैनधर्म मे कभी कोई दिलचस्पी मेरी नही रही थी। मुझे जैनो से अरुचि थी, क्योकि मुझे हमेशा यह अहसास होता रहा कि वे जैनाचार की कट्टर और रूढ शारीरिक साधनाओ को ही अधिक महत्त्व देते है और उसके आधारभूत तत्त्वज्ञान मे अन्तर्निहित सूक्ष्म भावार्थों को भुलाये रहते हैं।

जैनधर्म के नाम पर अक्सर मैने यही देखा था कि जैन लोग अपने उपवासो की सख्या मे गर्व लेते है और परिवार मे कोई उपवास करे तो उसका जुलूस निकालने और उस उपलक्ष्य मे उपहार बाँटने मे ही उपवास की पूर्णाहुति मानी जाती है। मैने ऐसे ही जैनो को देखा था जो बाह्य दिखावटी धार्मिक क्रियाओ मे ही बेतरह उलझे थे, पर अपनी कषायो

और उत्तेजनाओ पर जो कतई काबू नही पा सके थे, और इस ओर उनका कोई लक्ष्य भी नही था। मेरा यह ख्याल था कि जैनी लोग प्रथम कोटि के पाखण्डी है।

सो यहाँ आकर काम करने मे जैनधर्म या जैन लोगो मे मेरी कोई दिलचस्पी नही थी। मै भारत लौटा था केवल जैन कला और सस्कृति का एक प्रलेखन या लेखा-जोखा तैयार करने के उद्देश्य से। मै कोई श्रद्धालु जैनी नही हूँ और जैन सस्कृति तथा कला के अध्ययन मे मेरी यह तटस्थता एक विधायक और आवश्यक योग्यता ही मानी जा सकती है, क्योकि इसी तरह मै जैनो के इन पहलुओ का एक अनाग्रही वस्तुनिष्ठ और पूर्वग्रह-मुक्त अध्ययन प्रस्तुत कर सकता हूँ।

मै जब यह काम शुरू ही करने जा रहा था तभी मेरे नाना, बम्बई के एक जौहरी श्री मथुरालाल तलाटी ने मुझे बताया कि अभी श्री महावीरजी मे एक आधुनिक मिजाज के प्रभावशाली और तेजस्वी दिगम्बर जैन मुनि वर्षावास कर रहे है और कार्यारम्भ करने से पहले मुझे जाकर उनसे मिलना चाहिये। बताया गया कि उनका नाम मुनिश्री विद्यानन्दजी है। इस सुझाव से मै कोई खास उत्साहित न हुआ।

अपने लडकपन मे मैने कई दिगम्बर जैन मुनि देखे थे, और उनके घिसे-पिटे धर्मोपदेशो को सुन कर मुझे बेहद बोरियत महसूस होती थी। उन प्रवचनो मे न तो कोई ज्ञान होती थी और न रोजमर्रा की जिन्दगी से उनका कोई सीधा सम्बन्ध। वे शुष्क शब्दो मे और उबा देने वाले तोतारटत अन्दाज मे रूढ जैनाचार का व्याख्यान करते थे जिसे जैनधर्म के ग्रथो मे आसानी से पढा जा सकता था और उसका ज्ञान पाने के लिए ऐसे किसी मुनि का प्रवचन सुनने के लिए जाना एकदम अनावश्यक था। दूसरे जैन मुनियो का दर्शन ही मुझे सदा अरुचिकर रहा था, क्योकि वचन और वाणी मे ज्यादातर मैने उन्हे बहुत रूखे-सूखे, अदय और असहिष्णु पाया था और लगता था कि वे मानो मुनित्व को महज भार की तरह अपने कधो पर ढो रहे है पर मुझे इस विषय पर अपना काम तो करना ही था, सो मैने सोचा क्यो न 'श्री महावीरजी' से ही अपना कार्यारम्भ करूँ जोकि एक महत्त्वपूर्ण जैन तीर्थक्षेत्र भी है।

□

सो अक्टूबर १९७२ की एक सुबह मैं अपने माता-पिता के साथ श्री महावीरजी जा पहुँचा। पता चला कि मुनिश्री विद्यानन्दजी अभी यही पर है। यहाँ मदिर की तस्वीरे उतारने और मदिर तथा धर्मशाला मे जैनो के व्यवहार-वर्त्तन का निरीक्षण करने मे मैने दो दिन बिताये। मैने देखा कि स्थूलकाय जैन स्त्री-पुरुष एक दूसरे के साथ उग्रता से धक्का मुक्की करते हुए एक-दूसरे को पीछे ठेल कर, सबसे आगे पहुंच वेदी पर बिराजमान भगवान की प्रतिमा को चाँवल चढाने के अपने सघर्ष मे ही बेहद पिले हुए थे। अपनी इस दर्शन-लालसा से वे इतने बदहवास थे कि आगे पहुँचने की अपनी व्यग्रता मे वे छोटे-छोटे रोते बच्चो के पैर कुचल देने मे भी जरा नही हिचकते थे, और उन्हे बेरहमी से ठेल कर भीड मे घुसे जा रहे थ।

तीसरे दिन अपने बापूजी (मेरे पिता वीरेन्द्रकुमार जैन) के सुझाव पर मैंने मुनिश्री विद्यानन्दजी के दर्शनार्थ जाना स्वीकार किया। जब हमने कमरे मे प्रवेश किया तो माँ और

मुनिश्री बोले : क्या केवल इसी कारण तुम वहाँ न जाओगे, कि जीप गाड़ी नहीं है ?' मैंने कहा : 'जी हाँ, महाराज।'

पिताजी ने परम्परागत रीति से मुनिश्री का वन्दन किया। मैंने भी उनका अनुसरण किया और चुपचाप एक ओर बैठ गया। मुनिश्री और मेरे पिता के बीच कोई घटा भर अनेक तरह की चर्चा-वार्ता होती रही।

मुनिश्री विद्यानन्द को देख कर भौचक्का रह गया। यहाँ मैंने एक ऐसे दिगम्बर जैन मुनि को देखा, जो औरो से एकदम भिन्न दिखायी पड़ा, जिसका बात करने का ढग निराला था, जो अपने विचार और अभिव्यक्ति मे एकबारगी ही तेजस्वी, प्रतिभावन्त और मौलिक था। मुनिश्री विद्यानन्द के उस साक्षात्कार ने जैन मुनियो के प्रति मेरी सारी पूर्व धारणाओ को तोड दिया। प्रकृति से वे प्रसन्न और जीवन्त थे। ऐसा क़तई न लगा कि वे अपने मुनित्व को भार की तरह अपने कधे पर ढो रहे है, जैसा कि इससे पहले मुझे लगा करता था। और मुनियो की तुलना मे मुझे लगा कि मुनिश्री विद्यानन्द अपने धर्म की अविचल प्रतीति पा गये है। उनके चेहरे पर, और उनके वर्तन मे एक सूक्ष्म आनन्द का भाव था, सयम और अनासक्ति की दृढता थी। मेरे मन मे अब तक सच्चे जैनत्व की ऐसी ही कोई धारणा रही थी। सो मुनिश्री विद्यानन्द स्वामी के व्यक्तित्व और वार्तालाप से मैं कुछ इस कदर प्रभावित हो गया, कि मेरे मन मे ऐसी प्रतीति जागी कि मुनिश्री की भावमूर्ति को मन मे सजोये रख कर और उनके सम्पर्क मे रह कर जैन कला-सस्कृति के अध्ययन की अपनी इस योजना को मै बखूबी सम्पन्न कर सकूँगा।

□

अगली बार जब मुनिश्री अलवर मे चातुर्मास कर रहे थे, तो मैने तय किया कि मैं वहाँ जाकर कुछ दिन उनके सामीप्य मे बिताऊँ। हिन्दुस्तान की फिजाओ मे चारो ओर गर्म लू के झकोरे बह रहे थे और उनके बीच गुजरते हुए मैने अहमदाबाद से अलवर तक का लम्बा सफर किया। मेरे मन मे मुनिश्री से मिलने की लौ-लगन लगी हुई थी, जो सदा आनन्दित मुद्रा मे रहते है फिर भी जो सहज ही आत्मस्थ और सयत है। अलवर मे मुनिश्री के साथ बातो के कई लम्बे दौरो से मै गुजरा। जैन मूर्ति-विधान और मूर्ति-शिल्प-शास्त्र से लगा कर स्काई-स्क्रेपर और पाश्चात्य जगत् के यान्त्रिक सुख-ऐश्वर्य तक, अनेक विषयो पर उनसे गहरी वार्ता होती थी। मैंने देखा कि मुनिश्री के भीतर, भौतिक जीवन और उसके विविध लीला-विलास को जानने की एक विधायक जिज्ञासा थी। मेरे इस विषय मे कुतूहल करने पर वे बोले 'कौन कहता है कि प्रकृति को हमे नही जानना चाहिये, कि भौतिक जगत् के परिचय से हमे दूर रहना चाहिये ? जगत् और प्रकृति को जाने बिना उसका त्याग कोई कैसे कर सकता है ?'

मैने प्रसगात् मुनिश्री से कहा कि इस इलाके मे, जगलो के भीतर कोई साठ मील की दूरी पर पूर्व-मध्यकाल के जैन मदिरो के खण्डहर मौजूद है। मैं उस स्थान पर जाना

चाहता था पर चूंकि सडके बहुत खराब थी इस वजह से जीप गाडी के बिना वहाँ नही पहुँचा जा सकता था । सो मैने वहाँ जाने का अपना इरादा त्याग दिया था । मुनिश्री बोले क्या केवल इसी कारण तुम वहाँ न जाओगे कि जीप गाडी नही है? मैंने कहा जी हाँ। महाराज !

तब वे बोले कि एक घटे बाद फिर मुझ से आकर मिलना मझे तुम से कुछ बात करना है । जब घट भर बाद मै उनके पास गया तो महाराजश्री ने घोषित किया कल सुबह ठीक छह बजे धर्मशाला के द्वार पर एक जीप तुम्हारी प्रतीक्षा मे खडी होगी जो तुम्हे तुम्हारे गन्तव्य नवगजाजी ले जाएगी । तुम कल अनवर के जगल मे वह पूव मध्ययुगीन जैन देवालय अवश्य देखोग । मैं स्तभित रह गया नही मैं चकरा गया नही केवल चकराया ही नही मैं द्रवीभत हो गया । मेर चहरे पर छा गये भाव के बादल को उन्हाने देख लिया । उन्हाने उसे लक्षित किया और इसीसे उन्होने मुझ वहाँ एक क्षण भर भी और न ठहरने दिया और तुरन्त मझे कमरे से बाहर चल जाने का इगित कर दिया । उनके भीतर के इस आत्मनिग्रह और सयम को देख कर मै अधिकाधिक उनकी ओर आकृष्ट होता चला गया ।

अगले दिन सवरे मैं नवगजाजी चला गया । वहाँ मैने सात अत्यन्त सुदर शैव और जैन मदिरो के ध्वसावशष देख । नवगजाजी की प्रमुख तीथकर-मूर्ति अतिशय प्रभावशाली थी और उसका शिल्पन बहुत नाजक ढग से हुआ था । वह तरह फुट तीन इच ऊची एक भव्य ऊँची प्रतिमा थी । उसके मस्तक पर दो फुट छह इच व्यास का एक छत्र था जो दो हाथियो पर आधारित था । इस समचे शिल्प की ऊँचाई सोलह फुट-तीन इच है और चौडाई छह फुट है । मै वहा से कोई सौ फोटो उतार कर धमशाला लौट आया ।

मैन मुनिश्री के समक्ष उस स्थान और मर्तियो की भव्यता और सौदय का वणन किया । मनिश्री उसके प्रति इस कदर आकृष्ट हुए कि एक बच्च जैसा कुतूहल जिज्ञासा से उन्होने पूछा क्या मैं भी वहा तक पहुच सकता हू ? □

इस प्रसग क बाद मेरा मुनिश्री के पास फिर जाना नही हो सका है। अब जैन कला सस्कृति के प्रलेखन की मेरी योजना समाप्त प्राय है । एक बरस गजर चुका है । मै कोई बीस हजार किलोमीटर की यात्रा इस दश के विविध विस्तारो मै कर चुका हू और सात हजार तस्वीर मैने उतारी है । इस सारी सामग्री का उपयोग १९७४ म झयूरिख (स्विटजरलैण्ड) म होन वाली जैन कला और सस्कृति की प्रदशनी म होगा ।

उसक बाद यह प्रदशनी यूरुप के अन्य देशो मे भी प्रवास करेगी । इस सामग्री के आधार पर मै अपन मित्र और सहयोगी डा एबरहाड फिशर की सहकारिता म जैन प्रतिमा-विज्ञान पर एक पुस्तक भी लिख रहा हूँ जाकि हालैण्ड म प्रकाशित होगी ।

मैं स्वीकार करू कि इस काय को सम्पन्न करने मे मनिश्री के व्यक्तित्व से मुझे सतत प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा । कृतज्ञ भाव से मैं उन्हे प्रणाम करता हूँ । (मल अग्रजी से अनूदित) □□
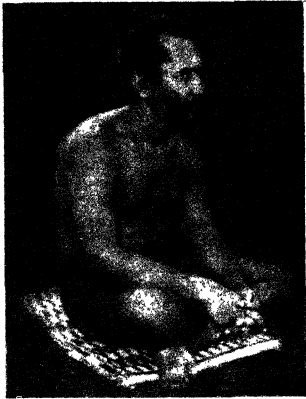
मुनि विद्यानन्द-स्तवनम्

(शिखरिणी छद)

स्व डा नेमिचन्द्र जैन शास्त्री

यदीयै तेजोभि परिणतविचारै प्रवचनै ,
मनोरागद्वेषा विलयमधिगच्छन्ति जगताम्।
शिव सत्य दिव्य सुखदमथ यद्दर्शनमहो,
सदा विद्यानन्दो जयतु भुवि सोऽय मुनिवर ॥१॥
यदीय व्यक्तित्व गुणगणनिधान सुविदितम्,
यदीय पाण्डित्य बुधजनसमीहास्पदमभूत् ।
प्रसिद्धिसिद्धिर्वा दिशि दिशि यदीया प्रचलिता,
पद-द्वन्द्वे तस्य प्रणतिरनिश मे विलसतात् ॥२॥

यदीया सत्कीर्ति तुहिनधवलाभा शिखरिणी
प्रतिष्ठा यस्यास्ति प्रभुपदसमानावनितले ।
यदीय सम्मान निखिलजनवर्गेष्वतिशयम्,
उपास्ते त 'चन्द्र' प्रणतहृदयो 'नेमि' सहित ॥३॥

चमत्कार वाणी वितरति यदीया सुललिता,
यदीयत्यागस्यापरिमित कथा कास्तु कथिता ।
लभन्ते नो शान्ति क इह परमा यस्य शरणे,
अपूर्व निर्ग्रन्थ विहरतितरा कोऽपि भुवने ॥४॥

पर पूज्य लोके जगति जनन यस्य सततम्,
पर श्लाघ्य लोकैरमलचरित यस्य सुगुरो ।
पर ध्येया लोकैरमररचना यस्य निखिला,
महावीरस्वामिप्रथितवरशिष्यो जयतु स ॥५॥

जनोऽसौऽल्पज्ञो वा भवति सुमहान् यस्य कृपया,
यदीय स्पर्शो वा मदुमपि सुवर्ण प्रकुरुते ।
यदीयाशीर्वाणी विकिरति सुधासिन्धुलहरीम्,
समन्तादौभद्र भवतु चिरभद्राय स भुव ॥६॥

नमस्तस्मै भूयो युगपुरुषवर्याय सततम्,
नमस्तस्मै भूयोऽखिल जननमस्याय सततम् ।
नमस्तस्मै भूयो भवतु च मुनीन्द्रायसततम्,
अह लोके मन्ये यमिमकलङ्क श्रुतधरम् ॥७॥

(जिनके प्रभाव और सद्वाणी से जन-मन के रागद्वेषादि विकार शान्त होते है और दर्शन से सुख एव शान्ति प्राप्त होती है, वे मुनिश्री विद्यानन्द जगत् मे सदा जयवन्त हों ॥1॥ जिनका व्यक्तित्व गुण-गण-समृद्ध और सर्वविदित है और जिनकी विद्वत्ता की विद्वज्जन सराहना करते है, तथा प्रत्येक दिशा मे जिन्हें प्रसिद्धि और सिद्धि प्राप्त है, उन मुनिश्री विद्यानन्द के चरण-युगल मे निरन्तर विनम्र बना रहूँ ॥2॥ जिनका सुयश हिम के समान सर्वत्र व्याप्त है और लोक मे प्रभु-पद की भांति जिनकी प्रतिष्ठा है, समस्त जनता मे जिनका अतिशय सम्मान है, उन मुनिश्री की नम्र हृदय नेमिचन्द्र उपासना करता है ॥3॥ जिनकी सुन्दर वाणी चमत्कार उत्पन्न करती है, उनके महान् त्याग का क्या वर्णन किया जाए ? जिनकी शरण जाने पर किसे शान्ति नहीं मिलती ? ऐसे अपूर्व दिगम्बर श्रमण मुनिश्री विद्यानन्द का लोक मे सदा विहार होता रहे ॥4॥ सासारिकों द्वारा जो सर्वंव पूज्य बने हुए हैं, जिन सुगुरु का निर्मल चरित्र प्रशसनीय है और जिनका समस्त स्थायी साहित्य जनता के लिए पढ़कर चिन्तन करने योग्य है, ऐसे भगवान् महावीर के विख्यात श्रेष्ठ शिष्य मुनिश्री विद्यानन्द जयवन्त हो ॥5॥ जिनकी कृपा से अल्पज्ञ भी महान् ज्ञानी बन जाते है, जिनका स्पर्श लोहे को भी स्वर्ण बना देता है और आशीर्वादपूर्ण वाणी अमृतमय सागर के समान आनन्द प्रदान करती है, ऐसे मगलमय मुनिश्री विद्यानन्द चिरकाल तक जगत् का मगल करते रहें ॥6॥ हम युग-पुरुष श्रेष्ठ मुनिश्री को सदा प्रणाम करते है ! सर्वलोक-पूज्य मुनिश्री को निरन्तर प्रणाम करते है ! उन मुनिराज को बारबार प्रणाम है, ससार मे जिन्हें मैं निर्दोष श्रुतधर मानता हूँ ॥7॥)

अनु —नाथूलाल शास्त्री

मुनि-दीक्षा से पूर्व

कोण्णर (कर्नाटक) १९४६
हूमच (कर्नाटक) १९४७
कुम्भोज (महाराष्ट्र) १९४८
शेडवाल (मैसूर) १९४९ से १९५६
हूमच क्षेत्र (कर्नाटक) १९५७
सुजानगढ (राजस्थान) १९५८
सुजानगढ (राजस्थान) १९५९
बेलगांव (कर्नाटक) १९६०
कुन्दकुन्दाद्रि (कर्नाटक) १९६१
शिमोगा (कर्नाटक) १९६२

मुनि-दीक्षा के बाद

दिल्ली १९६३
जयपुर (राजस्थान) १९६४
फीरोजाबाद (उत्तरप्रदेश) १९६५
दिल्ली १९६६
मेरठ (उत्तरप्रदेश) १९६७
बडौत (उत्तरप्रदेश) १९६८
सहारनपुर (उत्तरप्रदेश) १९६९
श्रीनगर-गढवाल (हिमालय) १९७०
इन्दौर (मध्यप्रदेश) १९७१
श्रीमहावीरजी (राजस्थान) १९७२
मेरठ (उत्तरप्रदेश) १९७३

वर्षायोग

जयपुर, इन्दौर, मेरठ

दिल्ली मे आचार्य श्री देशभूषणजी के पास मुनि-दीक्षा लेने के पश्चात् मुनि श्री विद्यानन्द-जी अपने गुरु के साथ सन् १९६४ मे जयपुर मे प्रथम वर्षायोग के लिए पधारे । उस समय जयपुर जैन समाज मुनिश्री की विद्वत्ता एव वक्तृत्व शक्ति से बिल्कुल अनभिज्ञ था । मुनि सघो के प्रति वैसे भी जैन समाज का एक वर्ग उदासीन था । उस समय पडित चैन-सुखदासजी जीवित थे और उनका जयपुर-वासियो पर पूर्ण वर्चस्व स्थापित था । मुनि-श्री का वर्षायोग-स्थापना के पश्चात् कभी-कभी प्रवचन होता जो कभी आचार्यश्री के पहिले और कभी बाद मे होता था । रत्न को कितना ही छिपाओ वह छिप नही सकता, इसी कहावत के अनुसार मुनिश्री की विद्वत्ता एव प्रवचन-शैली ने जयपुर के नवयुवक समाज पर प्रभाव जमाना प्रारम्भ किया और एक दूसरे के प्रचार के आधार पर काफी सख्या मे लोग उनके प्रवचनो म जाने लगे ।

मुनिश्री की लोकप्रियता मे वृद्धि के कारण गुरु-शिष्य मे कुछ-कुछ मनमुटाव रहने लगा, लेकिन उन्होने अपना प्रवचन बन्द नही किया और समाज को अपने जाग्रत विचारो से आकृष्ट करने लगे । पडित चैनसुखदासजी को जब मुनिश्री के क्रान्तिकारी विचारो के सम्बन्ध मे जानकारी मिली तो उन्हे अत्यधिक प्रसन्नता हुई और एक दिन

बड़े दीवानजी के मन्दिर मे दोनो की भेट रखी गयी। वह दो सन्तो के मिलन-जैसा था। तीक्ष्ण-बुद्धि पडितजी को मुनिश्री को समझने मे देर नही लगी और उन्हे ऐसा लगा जैसे जीवन मे प्रथम बार उन्हे अपने विचारो के अनुकूल युवक सन्त मिला हो। उस ऐतिहासिक भेट के पश्चात् मुनिश्री पडितजी की ओर आकृष्ट होते गये।

मुनिश्री एव पडितजी के भेट के समाचार जयपुर-समाज मे विद्युत् वेग के समान फैल गये और मुनिश्री विद्यानन्दजी पडितजी के मुनि है तथा उन्ही की विचारधारा वाले है ऐसा लोगो ने कहना आरम्भ कर दिया। जब सर्वप्रथम बडे दीवानजी के विशाल प्रागण मे मुनिश्री एव पडितजी को एक मच पर बैठा हुआ देखा और दोनोने समाज एव सस्कृति के पुनरुत्थान की बाते दोहरायी तो सारा नगर झूम उठा और एक ही दिन मे मुनिश्री जयपुर जैन समाज के ही नही किन्तु समस्त नगर के मुनि बन गये। नगर की सर्वाधिक लोकप्रिय सस्था राजस्थान जैन समाज द्वारा उनके प्रवचन आयोजित होने लगे। पहिले उनके प्रवचन मन्दिरो मे होने लगे और जब मन्दिरो का विशाल प्रागण भी छोटा पडने लगा तो महावीर पार्क मे उनका साप्ताहिक प्रवचन रखा जाने लगा, लेकिन जब जन-मेदिनी ही उमड पडे तो मुनिश्री को पार्क तक ही कैसे सीमित रखा जा सकता था? आखिर रामलीला मैदान मे उनके विशेष प्रवचन आयोजित होने लगे। एक दिन स्टेशन रोड पर एक विशाल पडाल मे मुनिश्री का प्रवचन रखा गया। विषय था 'हम दु खी क्यो है?' मच पर मुनिश्री के अतिरिक्त राजस्थान के राज्यपाल डा सम्पूर्णानन्दजी एव पडित चैनसुखदासजी विराजमान थे। भाषण प्रारम्भ हुआ। पडितजी ने एव राज्यपाल महोदय ने विषय का अत्यधिक सुन्दर ढग से प्रतिपादन किया, लेकिन जब मुनिश्री का प्रवचन आरम्भ हुआ तो उन्होने सर्वप्रथम कहा कि जिस सभा मे एक ओर सम्पूर्ण आनन्द वाले सम्पूर्णानन्दजी विराजमान है और दूसरी ओर चैन और सुख बैठे हुए है तथा वे स्वय भी विद्यानन्द-युक्त है तो फिर "हम दु खी क्यो है" यह विषय ही क्यो रखा गया? मुनिश्री के कहने मे इतना आकर्षण था कि दो मिनट तक सारी सभा मे प्रसन्नता एव हँसी की लहर दौडती रही। स्वय राज्यपाल भी मुनिश्री की प्रवचन-शैली से इतने आकृष्ट हुए कि फिर तो वे उनकी सभाओ मे स्वयमेव आने लगे और उन्होने अपने पद एव गौरव तथा सुरक्षा-नियमो की भी चिन्ता नही की।

जयपुर नगर ने मुनिश्री के जीवन-निर्माण की जो भूमिका निभायी वह सदैव उल्लेखनीय रहेगी। उनकी कीर्ति प्रशसा एव प्रसिद्धि बढने लगी। और एक महीने मे ही वह वटवृक्ष के समान विशाल हो गयी। उनके प्रवचन नगर के विभिन्न मोहल्लो के अतिरिक्त बापू नगर, आदर्श नगर, अशोक नगर, स्टेशन रोड, मोहनवाडी आदि उपनगरो मे रखे गये और नगर के अधिकाश नागरिको ने उन्हे श्रद्धापूर्वक सुना। राज्यपाल, मुख्यमत्री, मत्रिगण, विधान-सभाध्यक्ष, राज्य के उच्चाधिकारी, विश्व-विद्यालय के प्राध्यापक, विद्वान्, व्यापारी एव विद्यार्थि-वर्ग सभी ने मुनिश्री के प्रवचनो

का लाभ उठाया और ३-४ महीनों तक सारा नगर ही विद्यानन्दमय हो गया। उनकी रविवासरीय सभाओ मे १० हजार से २०-२२ हजार तक की भीड़ होती। ऐसी भीड जयपुर नगर के इतिहास में किसी सन्त के प्रवचन में प्रथम बार देखने को मिली थी।

वर्षायोग के चार महीने एक-एक दिन करते निकल गये और जब मुनिश्री के विहार की तिथि निश्चित हुई तो जयपुर की जनता अवाक्-सी रह गयी। मुनिश्री ने अपने चातुर्मास मे २५ से भी अधिक विशाल एव विशेष सभाओ को सम्बोधित किया और ३-४ लाख स्त्री-पुरुषो ने उनके प्रवचनो से लाभ लिया। उनकी अन्तिम सभा त्रिपोलिया बाजार-स्थित आतिश मार्केट मे रखी गयी जिसमे २५ हजार से भी अधिक उपस्थिति थी। मुनिश्री को जयपुर के नागरिको की ओर से जो भावभीनी एवं अश्रुपूरित नेत्रो से बिदाई दी गयी वह जयपुर के इतिहास मे उल्लेखनीय रहेगी। वे आगे-आगे थे और उनके पीछे-पीछे था हजारो का समुदाय। तीन मील तक यही क्रम रहा। आखिर यही सोचकर कि मुनिश्री वापिस आने वाले नही है लोगो ने उनके चरणो मे नत-मस्तक होकर अपने घरो की राह ली। वास्तव मे जयपुर के नागरिको को वह चातुर्मास सदैव स्मरण रहेगा। अब तो हजारो नागरिको की यही हार्दिक अभिलाषा है कि जयपुर को पुन मुनिश्री अपने चरणो से पावन करे और अपने प्रवचनों मे उन्हें जीवन-विकास का मार्गदर्शन दे।

—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

इन्दौर

और सच ही व्यापार-उद्योग नगर इन्दौर सन् १९७१-७२ मे तीरथ हो गया। गरीब-अमीर, मजदूर-मालिक, अध्यापक-छात्र, हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख-ईसाई, श्वेताम्बर-दिगम्बर-स्थानकवासी, सभी जाति-पाति, धर्म, पद, मान-मर्यादा, विचार-भेद भूलकर स्त्री-पुरुप-बाल-वृद्ध नगर के हर कोने से हजारो-हजारो की सख्या मे प्रतिदिन प्रात निर्धारित समय पर उस ओर ही बढते हुए नजर आते थे जिस ओर मुनिश्री के प्रवचनो का प्रबध हो। चाहे मालवा मिल्स का मजदूर-क्षेत्र या गीता भवन का धर्मस्थल, चाहे वैष्णव विद्यालय का विशाल प्रागण या रामद्वारा चौक या कपडा मार्केट का महावीर चौक, तिलक नगर-नेमीनगर के एकान्त इलाके सब ओर ही ठसाठस भरे हुए मत्र-मुग्ध श्रोता, शान्ति परमशान्ति से—जिसे अंग्रेजी में पिनड्राप सायलेस कहते है— मुनिश्री के प्रवचनो मे एकाग्र चित्त लगे हुए—और ऐसा नजारा एक दिन नही, दस दिन नही, पचास दिन नही, लगातार छह माह तक।

आदिनाथ मागलिक भवन का मुनिश्री का आवास-स्थल प्रात: से संध्या तक भक्तो से, विद्वानों से, कुलपतियो से, अध्यापको से, छात्र-छात्राओ से, कला-मर्मज्ञो से लेखको से, संपादको से, कार्यकर्ताओं से, विचार-गोष्ठियो, तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान, अध्ययन-अनुसधान, मार्गदर्शन और तरह-तरह की गूज-प्रतिगूजों से ध्वनित होता रहा।

और भारत के कोने-कोने से सुदूर उत्तर-ठेठ दक्षिण पूर्व आसाम व पश्चिम तक हर भाषा-भाषी मुनिश्री के दर्शनो को इन्दौर आता रहा, आता रहा--कृतकृत्य होता रहा--होता रहा और इन्दौर तीर्थ हो गया ।

और यही वह इन्दौर था जहाँ पहिले भी मुनि श्री आनन्दसागरजी, शान्तिसागर जी क्षाणी, वीरसागरजी आदि के चातुर्मास अत्यन्त शान्ति एव धार्मिक वातावरण मे सानन्द सम्पन्न हुए थे । और एक मर्तबा एक चातुर्मास मे इन्दौर मे वह विद्वेष की अग्नि समाज मे प्रज्वलित हुई कि वर्षो इन्दौर मे सामूहिक धार्मिक वातावरण का विलोप हो गया, समाज विभक्त हो गया । और इस विक्षुब्ध वातावरण मे साधुओ का इस ओर रुख करना असुविधापूर्ण लगने लगा ।

समाज मे अपने ही प्रति रोप था--युवावर्ग क्षुब्ध था ओर समाज के मन मे अपनी पूर्व भूलो के प्रति ग्लानि । ऐसे वातावरण मे महायोगी, सतप्रवर, विश्वधर्म-प्रेरक साधु के इन्दौर-आगमन की स्वीकृति की मगल ध्वनि गजने लगी---सुदूर कैलाश की ओर से इन्दौर की ओर बढते हुए मगल चरणो की ध्वनि से समाज आह्लादित हो गया और मुनिश्री की कीर्ति-गाथा से नगर का जन-जन चमत्कृत ।

जुथ-के-जुथ स्त्री-पुरुष सैकडो-सैकडो मीलो की दूरी पर ही स्वागतार्थ पहुंचने लगे--दर्शनार्थ पहुँचने लगे और सप्ताह-सप्ताह मगल विहार म पगपग-साथसाथ मगल वाणी गूजती रही । जात-पाँत, ऊँच-नीच के भेद भूलकर मानव-मानव कृतकृत्य हो गये । पावन भागीरथी का यह प्रवाह इन्दौर की ओर बह चला ।

और तब जब इन्दौर मे मुनिश्री पधारे, हर्ष-विभोर लाखो-लाख जन-जन ने वह स्वागत किया कि--न भूतो न भविष्यति । वर्णनातीत-मात्र देखने की बात थी, कल्पना की बात भी नही ।

इस ज्ञान-गगा के निर्मल तट पर इन्दौर का जन-जन, मालव का जन-जन और दूर-दूर के यात्री महीनो अवगाहन करते रहे और अनजाने मे महीना का समय आंख झपकते निकल गया । बिदा की बेला आयी, अश्रुधाराएं बहती रही--बहती रही--जन-जन अश्रुपूरित नेत्रो से मीलो-मील पीछे-पीछे भागते रहे और

करजोर 'भूधर' बीनवै कब मिलहिं वे मुनिराज !
यह ग्रास मनकी कब फले, मम सरहि सगरे काज !!

मुनिश्री के इन्दौर-चातुर्मास मे युवावर्ग धन्य हुआ उसकी डगमग आस्था लौट आयी, प्रौढ वर्ग उदार अनुभूति से अभिभूत हो गया और वृद्ध कहते रहे यह प्रत्यक्ष समवशरण अब देखने को नही मिलेगा । साथ ही जन-जन की तब से अब तक भावना चातक वत-मुनिश्री की ओर लगी है कि अब कब ? कब ?

कब मिलहिं वे मुनिराज !
ससार विषउ विदेश में जे बिना कारण बीर !
ते साधु मेरे उर बसौ मेरी हरहु पातक पीर !!

--माणकचन्द पाण्ड्या

मेरठ

मैं पूज्य मुनिश्री विद्यानन्दजी के सम्पर्क मे १९६७ मे आया। वह मुनिश्री का मेरठ में प्रथम वर्षायोग था। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व एव वक्ता होने के समाचार चारो ओर फैल चुके थे। मेरठ मे मुनिश्री का प्रवचन टाउन हॉल मे होता था, उनके प्रभावशाली प्रवचनों की सारे शहर मे बडी चर्चा थी। टाउन हॉल का प्रागण खचा-खच भरा रहता था। महाराज-श्री बहुत अनुशासन-प्रिय व्यक्ति हैं। व्यवस्था करने मे हमे प्रशिक्षण बहुत ही सतर्क रहना पडता था। उनकी सभा मे बहुत शान्ति रहती थी जो प्राय: अन्य आमसभाओ मे मुश्किल से ही दीखती है। जैन-जैनेतर जत्थमजत्थ उमड पड़ते थे।

एक दिन राजस्थान विधान-सभा के अध्यक्ष श्री निरजननाथ आचार्य मुनिश्री की सभा मे पधारे। टाउन हॉल का प्रागण खचाखच भरा हुआ था। उनका प्रभावशाली भाषण हुआ, उन्होने कहा—मै महाराजश्री के सम्पर्क मे जयपुर मे आया था। उनकी विद्वत्ता, प्रभावशाली भाषणो एव उत्कृष्ट चारित्र्य का मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव पडा और मैं उनका शिष्य बन गया। महाराजश्री जयपुर से फीरोजाबाद, आगरा, दिल्ली आदि स्थानो की पदयात्रा करते-करते मेरठ पधारे हैं। जहाँ महाराजश्री जाते मै भी वही पहुँच जाता हूँ। आज मै उनके चरणो मे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए स्वय को बडा भाग्यशाली समझ रहा हूँ। महाराजश्री की वाणी मे जादू है। उसमे मधुरता है। वे पक्के समन्वयवादी है।

श्री विशम्भरसहाय प्रेमी हमारे शहर के प्रसिद्ध साहित्यकार एव पत्रकार रहे है। इसी वर्ष उनका देहान्त हो गया। वे कट्टर आर्यसमाजी एव काग्रेसी थे। शहर की बहुत-सी सस्थाओ से उनका सम्पर्क था। देश के बड़े-बडे साहित्यकार एव कवियो की उनके यहाँ भीड लगी रहती थी। वे भी महाराजश्री के व्यक्तित्व एव विद्वत्ता से प्रभावित होकर उनके परम शिष्य बन गये थे। वे प्राय. प्रति दिन नये-नये साहित्यकारो एव कवियो को महाराजश्री के दर्शनार्थ लाते थे। सभी साहित्यकार, पत्रकार एव कवि महाराजश्री की वाणी सुनकर गद्गद् हो उठते थे। एक दिन प्रेमीजी महाराजश्री के पास बनारस विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति डा मगलदेव शास्त्री को लाये और वे काफी वृद्ध है, उच्चकोटि के विद्वान् हैं। वेदो एवं उपनिषदों के साथ-साथ उन्होने जैनधर्म का भी काफी अध्ययन किया है। उन्होंने काफी समय तक महाराजश्री से चर्चा की। महाराजश्री ने भी वैदिक ग्रन्थो का गहन अध्ययन किया है। जब उन्होने श्रीमद्भागवत मे तीर्थंकर ऋषभदेव और श्रमण-सस्कृति की चर्चा की तो डॉ. साहब महाराजश्री से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने जैनधर्म पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखने की अभिलाषा व्यक्त की और महाराज के चरणो मे नत-मस्तक हो अपनी आदरांजलि अर्पित की। इसके बाद वे जब कभी भी मेरठ आये, तब महाराजश्री के दर्शनार्थ अवश्य पधारे। इस प्रकार मैंने देखा कि स्वर्गीय श्री विश्वम्भरसहाय प्रेमी

की निष्ठा महाराजश्री के प्रति अटूट रही। वे महाराजश्री के प्रवचनो को प्रतिदिन अपने पत्रो मे छापते थे। उन्हाने माहाराजश्री के विषय मे कितने ही लेख लिखे और महाराजश्री के द्वारा लिखी कितनी ही पुस्तका का उन्हाने सपादन किया। जब महाराजश्री बदरीनाथ की यात्रा के लिए हिमालय की ओर चले तब इस यात्रा मे उनका काफी योगदान रहा। व आजन्म महाराजश्री के पूण भक्त और उनके प्रति पूण निष्ठावान रह।

श्री कालीचरण पौराणिक कट्टर कमकाडी ब्राह्मण है। वे मेरठ सनातन धर्म सभा के अध्यक्ष है और शहर म सभी उनका बडा सम्मान करते हैं व महाराजश्री के वर्षायोग मे उनके सम्पक म आये व प्राय प्रतिदिन प्रवचना म आते थे। महाराजश्री के द्वारा भगवान राम पर प्रभावशाली भाषण सुनकर वे गदगद हो गये। पौराणिकजी ने महाराजश्री विद्वत्ता एव चारित्र्य की भरि भूरि प्रशसा की और एक दिन अपने भाषण मे स्पष्ट कहा कि मैंने अपन समस्त जीवन म मुनिश्री विद्यानन्दजी से बढकर कोई ऋषि या मुनि नही देखा। जितने दिन माहाराजश्री मेरठ म रहे पौराणिकजी प्राय प्रतिदिन उनके प्रवचनो म आत रहे। व महाराजश्री से धार्मिक चर्चाएँ और शकाओ का समाधान करते रहे। महाराजश्री का प्रभाव उन पर इतना पडा कि उनकी विदाई पर भाषण करत करत उनका हृदय भर आया और तीन मील पैदल चलकर महाराजश्री को शहर की सीमा तक छाडने आय।

मेरठ म रहते हुए महाराजश्री ने अनक जैन-अजैन विद्वान जो भी उनक सम्पक मे आये उन्ह अपनी विदग्ध वाणी द्वारा प्रभावित किया जो अजैन लोग दिगम्बर मुनि को देखकर मुख फर लिया करते थे व आज दिगम्बर मनि का श्रद्धा से नत-मस्तक अपनी श्रादराजलि अर्पित करत है।

१९७३ क वर्षायोग म एक दिन महाराजश्री भैसाली ग्राउण्ड म प्रवचन करक शहर की धमशाला लौट रह थ तो रास्ते म एक भीमकाय पुरुष उनके चरणो म आ

गिरा। महाराजश्री के रुके और उन्होंने अपनी मन्द-मन्द मुस्कान से उनकी ओर देखा। वह बोला आपने मुझ पर बडा भारी उपकार किया है। मैं जाति का ब्राह्मण हूँ। जब आप पहली बार मेरठ आये थे एक दिन मैं आपका प्रवचन सुनने गया। आपके प्रवचन का मुझ पर बडा प्रभाव पडा। मैं प्रतिदिन शराब पीता था। किन्तु मैंने उसी दिन से शराब न पीने का सकल्प कर लिया जिसे मैं आज तक निभा रहा हूँ। महाराजश्री ने करुणापूर्ण दृष्टि से उसे निहारा और अपनी कोमल पिच्छी आशीर्वाद के रूप मे उसके झुके हुए मस्तक पर रख दी। वह भी श्रद्धा से बार-बार महाराजश्री के चरणो मे और झुक गया। ऐसा है महाराजश्री का प्रभाव!

मुनिश्री के मुख पर प्रति समय खलने वाली मन्द-मन्द मुस्कान एव उनकी मधुर वाणी का नयी पीढी पर बडा अनुकूल प्रभाव पडता है। उन्होंने शिक्षित युवक एव युवतियो को अपनी ओर आकर्षित किया उनके बिना किसी पूर्वाग्रह के आहार ग्रहण किया और उनकी भावनाओ का परिष्कृत कर उनका आदर किया।

इस प्रकार हम देखते थ कि महाराजश्री के पास नवयुवको की भीड सदैव लगी रहती थी। उन नवयुवको ने धर्म और चरित्र का मूल्य समझा। महाराजश्री ने उनके जीवन को एक नया माड दिया। बुरी सगत मे पडकर जो कुसस्कार उनम घर कर गये थ उनसे छुटकारा दिलाने का प्रयास किया और जिसमे उन्ह कल्पनातीत सफलता प्राप्त हुई। आज के दूषित वातावरण म पल रही इस नयी पीढी को जो प्राय धर्म मे पराङ्मुख हा रही है। मनिश्री ने चरित्र निर्माण की प्ररणा दी। महाराजश्री ने अनुभव किया था कि आज नयी पीढी मे सिनेमा के भडकीले सगीत की ओर रुचि बढ रही है। उन्होंने इस रुचि का नया मोड दिया और प्राचीन जैन कवियो के सुन्दर भजनो एव गीतो का सकलन करवाया। "एक श्रमण जैन भजन प्रचारक सघ" नामक सस्था का निर्माण कर उन प्राचीन कवियो के सुन्दर सार्थक पदो के रिकार्ड तैयार कराये तथा इस ओर नयी पीढी की रुचि पैदा की। उनकी प्रेरणा से ही घर-घर मे आज धार्मिक सगीत सुनायी देने लगा है। आज जैनधर्म के रिकाड भारत के

प्राय सभी आकाशवाणी-केन्द्रो से प्रसारित होते है। उन्होने धार्मिक एव चरित्र-निर्माण करने वाले साहित्य को सरल भाषा मे लिखाकर नयी पीढी के हाथो तक पहुँचाया। इस प्रकार उन्होने युवा पीढी के चरित्र निर्माण मे बहुत योगदान किया। महाराजश्री की प्ररणा से युवा पीढी आज धर्म के मूल्य और उसकी महत्ता को समझने लगी। अब वह उसे एक निरथक वस्तु न समझ जीवन का एक अनिवार्य अग समझती है। महाराजश्री का समाज के प्रति किया गया यह महान् उपकार कभी भी बुलाया नही जा सकता। इस सदभ म समाज सदैव उनका ऋणी रहगा।

महाराजश्री के इस १९७३ क वर्षायोग मे मेरठ मे कडी सर्दी पड रही थी। महाराजश्री ने जैनमिलन नामक सस्था द्वारा २५० कम्बल गरीबो मे वितरण करने की प्ररणा दी। एक समारोह म मेरठ के जिलाधीश ने उन कम्बलो को गरीबो एव अनाथालय क बच्चो मे वितरित किया। इस प्रकार हम देखते है कि महाराजश्री का हृदय सदा ही करुणा से ओत प्रोत रहता है। कितन ही साधनहीन युवको को उन्हाने समाज द्वारा सहायता दिलाया है।

महाराजश्री क पास सदा ही जैन जैनेतर विद्वाना का जमघट लगा रहता था। उनस धार्मिक एव साहित्य की चर्चाए बराबर चलती रहती थी। कुछ प्रमख विद्वान् थे स्वर्गीय डा नेमिचन्द्र आरा प दरबारालाल कोठिया बनारस डा ए एन उपाध्ये कोल्हापुर डा पन्नालाल साहित्याचाय सागर प सुमरचन्द्र दिवाकर सिवनी डा देवन्द्रकुमार नामच डा नेमीचन्द जन इन्दौर श्री निरजननाथ आचाय जयपुर डा सिह भतपूव उपकुलपति मरठ विश्वविद्यालय डा कपूर (वर्तमान) उपकुलपति मेरठ विश्वविद्यालय श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली श्री अक्षयकुमार जैन (सम्पादक 'दै नवभारत टाइम्स) दिल्ली प्रसिद्ध उपान्यासकार श्री जैनेन्द्रकुमार दिल्ली, श्री यशपाल जन (सपादक जीवन-साहित्य) दिल्ली।

इसक अतिरिक्त उन्होने कितने ही जैन-अजैन विद्वानो का भगवान महावीर पच्चीसवी २५०० व परिनिर्वाण-महोत्सव क सदभ म जैन साहित्य एव तीथकर महावीर के जीवन चरित्र का विभिन्न भाषाओ म लिखने क लिए प्ररित किया इनमे प्रमुख है डा हरीन्द्रनाथ भूषण (विक्रम विश्वविद्यालय) उज्जैन डा रामप्रकाश अग्रवाल (मेरठ कालेज) मेरठ श्री रघुवीरशरण मित्र मेरठ आचाय बृहस्पति (आल इडिया रेडियो) दिल्ली श्री जी आर पाटिल महाराष्ट्र डा सागव कोल्हापुर डा नेमीचन्द जैन इन्दौर डा निजाम उद्दीन (इस्लामिया कालज) श्रीनगर-कश्मीर डा जयकिशन-प्रसाद खण्डलवाला आगरा डा सागरचन्द जैन बडौत।

महाराजश्री की प्ररणा से मेरठ मे वीर निर्वाण भारती नामक सस्था की स्थापना हुई जिसके द्वारा उपरोक्त विद्वानो द्वारा लिखित कुछ पुस्तको का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है।

महाराजश्री की प्रेरणा से इस संस्था ने देश के चार जैन-अजैन विद्वानो को पच्चीस सौ रुपये की नकद धनराशि एवं एक स्वर्णपदक प्रदान किया। इन्हे इतिहास-रत्न विद्यावारिधि-जैसी उपाधियो से अलकृत भी किया गया। उसमे प्रथम पुरस्कार पटना विश्वविद्यालय के डा योगेन्द्र मिश्र को उनकी पुस्तक 'एन अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली' पर, दूसरा प्रसिद्ध इतिहासकार डा ज्योतिप्रसाद जैन लखनऊ, तीसरा डा पी सी राय चौधरी पटना को उनकी पुस्तक 'जैनिज्म इन बिहार' पर तथा चौथा पडित बालचन्द जैन को धवल जयधवल' आदि महान् ग्रन्थो की टीका करने के उपलक्ष्य मे प्रदान किया गया। यह प्रथम अवसर है कि जैन समाज द्वारा विद्वानो को इस प्रकार पुरस्कृत किया गया है। यह महान् कार्य महाराजश्री के प्रेरणा का ही प्रतिफल है। महाराजश्री ने भगवान् महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण-महोत्सव के उपलक्ष्य मे लगभग पचास जैन-अजैन विद्वानो को पुरस्कृत कराने की योजना बनायी है।

देश के विभिन्न प्रदेशो के प्रसिद्ध उद्योगपति एव समाज के प्रतिष्ठा-पुरुष भी महाराजश्री के दर्शनार्थ आने रहते थे। जिसमे अधिकतम भगवान् महावीर के पच्चीस सौ वें परिनिर्वाण-महोत्सव पर महाराजश्री से परामर्श करने व आदेश प्राप्त करने आते थे। इनम प्रमुख थे प्रसिद्ध उद्योगपति श्री साहू शान्तिप्रसाद देहली सेठ राजकुमार-सिह इन्दौर सेठ हीरालाल इन्दौर सर सेठ भागचन्द सोनी अजमेर, सेठ लालचन्द (फिएट कार के निर्माता) बम्बई साहू श्रेयासप्रसाद बम्बई, श्री कन्हैयालाल सरावगी पटना व भूतपूर्व विधायक श्री बाबूलाल पाटौदी इन्दौर आदि।

महाराजश्री के दर्शनार्थ कभी-कभी कई प्रदेशा के मुख्यमत्री एव ससद्-सदस्य एव विधायक भी पधारते रहते थे। उनम प्रमुख थे श्री प्रकाशचन्द्र सेठी (मुख्यमत्री मध्यप्रदेश), चौधरी श्री चरणसिह (भूतपूर्व मुख्यमत्री उत्तरप्रदेश), श्री चन्द्रभान गुप्त (भूतपूर्व मुख्यमत्री उत्तरप्रदेश), श्री मिश्रीलाल गगवाल (भूतपूर्व मुख्यमत्री मध्यप्रदेश), श्री निरजननाथ आचार्य (भूतपूर्व स्पीकर राजस्थान), श्री रामचन्द्र 'विकल ससद्-सदस्य आदि। □ □

दिगम्बर मुनि की आहार-चर्या मुद्रा जिसे मुनिश्री विद्यानन्दजी ने अपने इन्दौर-वर्षायोग के समय किसी विचार-विमर्श के सदर्भ मे स्वय चित्रित किया था।
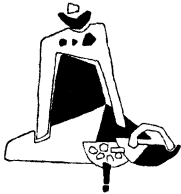
क्या इन्दौर इसे बर्दाश्त करेगा ?

'मैं तो चौराहे-चौराहे श्रमण-सस्कृति का संदेश लोकहृदय तक पहुँचाने में सलग्न हूँ; क्या इन्दौर इसे बर्दाश्त कर सकेगा ?'

—बाबूलाल पाटोदी

आज से पचास वर्ष पूर्व दक्षिण भारत के शेडवाल ग्राम में माता सरस्वती उपाध्ये की भाग्यवान कोख से सुरेन्द्र का जन्म हुआ। भारत के नक्शे पर शेडवाल भले ही एक छोटा-सा देहात हो किन्तु इसने श्रमण-सस्कृति के कई धुरधरो को जन्म देने का सौभाग्य अर्जित किया है। शेडवाल की माटी जानती थी सुरेन्द्र आगे चलकर एक सार्वभौम विभूति बनेंगे और दिगदिगन्त तक उसकी सुवास फैलायेंगे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की कहावत चरितार्थ हुई और दृढ-निश्चयी सकल्प-पुरुष सुरेन्द्र सासारिक प्रपचो को तिलाजलि देकर बचपन से ही इष्टदेव की आराधना मे लग गये। जब आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी आये तो युवा सुरेन्द्र ने उनसे क्षुल्लक की दीक्षा ग्रहण कर ली और आध्यात्मिक साधना की अगली सीढी के लिए पूरे बल से तैयारी करने लगे। सारी माया-ममता को छोड वे क्षुल्लक-जीवन की कठोर साधना करते हुए बम्बई, कलकत्ता और जयपुर के प्रमुख ग्रन्थागारो की खोज-यात्रा पर निकल पडे। क्षुल्लकत्व और मुनित्व के मध्यवर्ती जीवन मे उन्होने लगभग आधा लाख ग्रन्थो का अध्ययन-मनन किया और निर्ग्रन्थता की ओर बडी निष्ठा से आगे बढ आये। सन् १९६३ मे वे दिल्ली आये और वहाँ आचार्यरत्न मुनिश्री देशभूषणजी से उन्होने मुनि-दीक्षा ग्रहण की।

मुनि-दीक्षा के बाद उनकी ज्ञान-पिपासा और बढ गयी और वे राजस्थान की राजधानी जयपुर आ गये। यहाँ उन्होने अपना पहला वर्षायोग सपन्न किया। पडित-

म किसी बन्धन मे नही बधता मालवा का आग्रह वे टाल नही सके।

प्रवरस्व चैनसुखदासजी से यही उनकी भेट हुई। लगा जैसे दो ज्वालामुखी एक साथ मिले हो। पडितजी की प्रार्थना पर मुनिश्री ने निश्चय किया कि धर्म को मदिरा की चहरदीवारी से बाहर लाया जाए और उसे जन जन तक पहुँचाया जाए। इसी तारतम्य म उन्होने सामाजिक दुराग्रहो और मतभदो को चुनौती दी और कुछ लोक मगलकारी कदम उठाये। इस तरह धम को सामाजिक प्रबद्धता की दिशा म मोडकर एक नयी ही सामाजिक चेतना को जगाया और महावीर की जनवादी परम्परा को पुन लोकमन से जोडा।

जयपुर से उनकी धवलकीर्ति आग बढी। मेरे हृदय मे उनके प्रति अपार श्रद्धा तब उमगी जब मैंने सुना कि इस दिगम्बर महामनि ने मलतान पाकिस्तान से राजस्थान आये हुए जैन भाइयो को उनके बीच पहुचकर दूध म शक्कर की भाँति एक मेक कर लिया। ब त यह थी कि पाकिस्तान से आये जैन भाइयो को लेकर जयपुर समाज में एक विवाद खडा हुआ जिसने आगत भाइयो को इस दुविधा मे डाल दिया कि या तो व

धर्म बदलें या फिर समाज उन्हें आत्मसात् करे। मामला मुनिश्री तक पहुँचा। उन्होंने दूसरे ही दिन अपार जन-मेदिनी के बीच घोषणा की कि वे मुलतान से आये भाइयों की कालोनी मे विहार करेंगे और जब तक जयपुर-समाज उन्हें मिला नही लेगी वे वही रहेंगे। मुनिश्री वहा गये, जिनालय बना और अन्तत मुलतानी जनो को मिलाया गया। यह था एक प्रखर सूर्योदय जिसे राजस्थान ने देखा।

जयपुर-वर्षायोग के बाद मुनिश्री विद्यानन्दजी श्रमण-सस्कृति की सार्वभौम अन्तरात्मा का शखनाद करते हुए भगवान् ऋषभदेव की साधना-भूमि हिमालय की ओर बढे। श्री बद्रीनारायणजी की यात्रा करते हुए उन्होंने श्रमण और वैदिक संस्कृतियो के बीच कई आध्यात्मिक अनुबन्ध किये और चारो ओर समन्वय और सौहार्द की निर्मल धारा प्रवाहित की। कैलाशवासी श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार के स्नेहाग्रह पर मुनिश्री ऋषिकेश एव हरिद्वार गये और वहाँ अपनी अनैकान्तिनी वाणी से जनता-जनार्दन को उपकृत किया।

श्री बद्रीनारायण तीर्थ के प्रवेश-द्वार मे भगवान् पार्श्वनाथ का एक अत्यन्त प्राचीन जिनालय है। अलकनन्दा के मनोज्ञ तट पर स्थित यह मन्दिर वर्षा के थपेडे खाकर बिलकुल जीर्ण-शीर्ण हो गया था। समाज के आपसी मतभेद के कारण मन्दिर की हालत इतनी दयनीय थी कि वह जलाऊ लकडी की टाल के रूप मे परिवर्तित हो गया था। मुनिश्री ने श्रीनगर-समाज के नेताओ को एकत्रित किया, किन्तु घोर निराशा हुई। मुनिश्री मौन रहे किन्तु उन्होने श्रीनगर मे वर्षायोग का निश्चय कर लिया। उन्होंने अपने इस दृढ सकल्प के साथ पास के ही मठ मे अपना पडाव डाल दिया और जैन-जैनेतरो की एक सभा बुलायी। सब ने उत्साहपूर्वक सहयोग का हाथ बढाया और कुछ ही दिनो में जलाऊ-लकडी की टाल एक सुन्दर जिनालय मे परिवर्तित हो गयी। जिनालय के इर्द-गिर्द एक उद्यान बनाया गया, जहाँ सुयोग से जिनाभिषेक के लिए एक जलस्रोत भी निकल आया। फिर एक धर्मशाला बनी और आपसी बैर समाप्त हो गया। देश-भर के लोग श्रीनगर पहुँचे और हिमालय एक आध्यात्मिक तीरथ बन गया।

इधर मालवा मे भी मुनिश्री की शुभ्र कीर्ति जन-जन मे फैली। इन्दौर से हम लोग श्रीनगर पहुँचे। इस अद्वितीय तपस्वी के दर्शन से कृतकृत्य हुए और प्रार्थना की कि "मुनिश्री, आप मालव भूमि को अपने मगल विहार से उपकृत कर।" मुनिश्री ने आश्वस्त किया कि वे प्रयत्न करेंगे किन्तु साथ ही यह भी कहा "मैं किसी बन्धन मे नही बधता। निग्रन्थ हूँ, वीतराग-पथ का पथिक। मुझे तो भारत के चप्पे-चप्पे मे श्रमण-सस्कृति की प्रतिध्वनिया सुनायी देती है। अब हम इसे किसी कैद मे नही रख

सकते। यह सार्वभौम संस्कृति है। मैं चौराहे-चौराहे इसका संदेश पहुँचाऊँगा। क्या इन्दौर मेरे इस संकल्प को बर्दाश्त कर सकेगा ? " मैं सच कहता हूँ, उस समय मेरा वक्षस् गर्व से तन गया और मस्तक गौरव से ऊँचा उठ गया। मुझ मे उत्साह की एक अपूर्व लहर दौड गयी। लगा जैसे सदियो बाद अकलंक और समन्तभद्र की परम्परा जीवन्त हुई है और भारत का मगल विहार कर रही है। मेरा सकल्प अविचल हो गया और मैंने मन ही मन निश्चय किया कि मुनिश्री को हर हालत में इन्दौर लाया जाएगा। मालवा के आग्रह को वे किसी तरह टाल नहीं पायेंगे।

हम लोग पुन ज्वालापुर गये। मुनिश्री ने मालवा का नम्र निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। ज्वालापुर मे जो अलख जगा था, उसे देख मैं अचम्भित रह गया। सतीश जैन सूट मे नगे पाव मुनिश्री के साथ दौड-दौडकर चल रहे थे। मैंने कल्पना भी नहीं की थी मुझ-जैसा व्यक्ति जो किसी मुनि को देखकर किनारा कस जाता था, आज आहार देने जा पहुँचेगा और कोई दिगम्बर मुनि मेरे हाथो आहार ग्रहण करेगा। सच, मैं उस दिन धन्य हो गया जब मुझ भाग्यशाली के हाथो से, इन्द्र की विभूति जिनका चरण-चुम्बन करती है, नतशिर रहती है आठो प्रहर जिनके सम्मुख उन्होने आहार ग्रहण किया। मुनिश्री ने मालवा ने मालवा की ओर विहार किया। पूरे मार्ग मैं उनके साथ रहा। मुझे लगा-जैसे साक्षात् समवशरण संचरण कर रहा है। अपार जनमेदिनी मारे विद्वेष छोडकर उनके प्रवचनो मे उमडी पडती थी। भीषण गर्मी मे भी सतवाणी सुनने के लिए वर्ग और संप्रदाय का भेद भूलकर प्राय. सभी लोग उनकी प्रवचन-सभाओ मे पहुचते थे। मैंने देखा उनकी वाणी में अपार तेज, अदृप्त करुणा, समन्वयमूलक अनेकान्त और स्याद्वाद थे और वे मानव-मगल की अरुक यात्रा पर अविराम चल रहे थे।

जब वे इन्दौर पहुँचे तो महस्रो-सहस्रो लोग उनकी मगल अगवानी के लिए उमड पडे। क्या आप विश्वास करेंगे कि एक या दो दिन नही वरन् सपूर्ण वर्षायोग मे लगभग छह मास तक जत्थ के-जत्थ लोग नियमित उनकी प्रवचन-सभाओ में सम्मिलित हुए और उनके रसास्वादन से कृतकृत्य हुए। भगवान् राम के जीवन पर हुआ मुनिश्री का प्रवचन इन्दौर नगर ही नही सारे देश के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो में लिखे जाने जैसी घटना है। वैष्णव विद्यालय के प्रागण मे हुई इस सभा मे एक लाख से अधिक लोग पूरे तीन घटे तक बैठे इस तरह मौन कि ओस की बूद के गिरने की आवाज भी सुनी जा सके। अनुशासन मे कठोर, मुमुक्षुओ के लिए विश्वकोश, और विद्वज्जनो के स्वाति-नक्षत्र पूज्य मुनिश्री के इक्यावनवे जन्मदिन पर उन्हे मेरे कोटि-कोटि प्रणाम !

□□

मुनिश्री विद्यानन्दजी की हस्ततल-रेखाओं का करसामुद्रिक विश्लेषण

दिल्ली ७ जुलाई १९६७

करसामुद्रिक समीक्षण के अनुसार मुनिश्री की जीवन-वितति १०१ वर्ष होगी। आपका स्वास्थ्य श्रेष्ठ रहेगा, शरीर मे कहीं कोई विषम-असाध्य रुग्णता नही होगी।

आपका शुक्र उन्नत है, ठीक वैसा ही जैसा श्री जवाहरलाल नेहरू के हस्ततल मे था, अतः आप अपनी वास्तविक वय के अनुपात मे अधिक युवा और उल्लसित दिखायी देंगे। आपमे मानसिक और कायिक ऊर्जा अदम्य और अद्वितीय है, अत आप सब तरह के उपसर्ग, दबाव और भ्रान्तियो के प्रति अपरम्पार सहिष्णुता और धैर्य बनाये रख सकेंगे। आपके पदतल मे 'पद्मरेखा' है, जिसका अर्थ है सर्वोच्च कोटि का राजयोग, विश्व-भ्रमण, अपार ख्याति और नाम। गुरु, बुध और शुक्र के कारण आपकी वाणी स्वर्णाभ और सम्मोहक रहेगी, इसीलिए अन्तहीन जनमेदिनी को सम्मोहित तथा मन्त्रमुग्ध रखने मे आपको बेजोड सफलता प्राप्त होगी। प्रत्येक मास की भाग्यशाली तिथियाँ है ७, १४, २३ और २५, प्रतिवर्ष के भाग्यशाली माह है जनवरी, अप्रैल, मई, जून, जुलाई, सितम्बर और नवम्बर। सामुद्रिक तथ्यो के अनुसार आपको अन्तर्राष्ट्रीय कोटि की प्रसिद्धि प्राप्त होगी। ७ जुलाई १९६५ से १९७५ तक आपके जीवन मे कई महत्वपूर्ण अध्याय खुलेंगे। जीवन के ३४, ३७ और ४१वें वर्ष अधिक महत्त्वपूर्ण साबित होंगे। २५वे और २७वे वर्ष भी महत्त्वपूर्ण और स्मरणीय थे; इन्हे इसलिए महत्त्व का कहा जाएगा क्योकि क्रमिक परिवर्तन, अर्थात् आध्यात्मिक उपलब्धियो और अभिनिष्क्रमण की दृष्टि से इनका महत्त्व है। इन्ही वर्षों मे भवितव्य की भूमिका का निर्माण हुआ। आपके शत्रु और प्रतिद्वद्वी सदैव परास्त और समर्पित होते रहे है, होते रहेंगे तथा लोकहृदय सदैव आपकी उपासना और सम्मान करता रहेगा। ४३, ४५, ४७ और ५२वे वर्ष आपके जीवन के अत्यन्त सौभाग्यशाली वर्ष सिद्ध होंगे। आप जैसे-जैसे जीवन के उत्तरार्द्ध का आरोहण शुरू करेंगे ऊचाइयाँ स्वत प्रकट होती जाएगी। मगा और पन्ना आपके मागलिक नग है। सोमवार का उपवास आपके लिए आवश्यक है। केशरिया (जाफरान) आपके लिए भाग्यशाली रग है। आपकी हस्तपगागुलियो म 'शख' चिह्नित है, जो विश्व-विख्यात आध्यात्मिक जीवन की ख्याति के प्रबल राजयोग के प्रतीक है। बुध अत्यन्त उन्नत स्थिति मे है।

—बाबू मेहरा, दिल्ली

हम बीतते हैं

समय नहीं बीतता, सिर्फ हम बीतते है, हम आते है, जाते है, होते है नहीं हो जाते हैं। समय अपनी जगह है। समय नहीं बीतता है लेकिन लगता है कि समय बीत रहा है, इसलिए हमने घडियाँ बनायी हैं जो बताती हैं कि समय बीत रहा है। सौभाग्य होगा वह दिन जिस दिन हम घडियाँ बना लेगें जो हमारी कलाइयों मे बधी हुई बता देंगी कि हम बीत रहे है।

—रजनीश

मुनिश्री विद्यानन्दजी की जन्म-पत्रिका
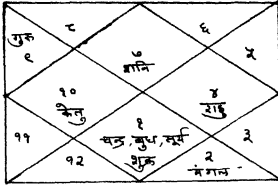
शुभ नाम–सुरेन्द्रकुमार उपाध्ये, पितृनाम–श्रीकाप्पा अण्णप्पा उपाध्ये, मातृनाम-श्रीमती सरस्वतीदेवी उपाध्ये, जन्मस्थान–शेडवाल (मिरज के पास, जिला-बेलगाव, राज्य-कर्नाटक), जन्म-समय वैशाख कृष्ण १४, बुधवार, विक्रमाब्द १९८२ (दाक्षिणात्य चैत्र कृष्ण १४), जन्मकाले अमावस्या, ११।४० क्राति घटीपलानि, ६।४५, सायकाल; दिनाक २२ अप्रैल १९२५, शेडवालस्थानपरत्वेन सूर्योदय ५।४४ स्थानीय, ६।१३ भारतीय मानक समय, सूर्यास्त ६।१६ स्थानीय, ६।४५ भारतीय मानक समय; दिनप्रमाण ३१।२० घटी-पल, १२।३२ घटा-मिनिट, चन्द्रस्पष्ट ०।२।२४ अश्विनी-प्रथमचरण मुक्तकाला १४४, नामाक्षर–'च', गण–देवगण; इष्टकाल–३१।२० घटी-पल प्रात सूर्यस्पष्ट ०।८।३३।१०, लग्न–६।९, दशम–३।८।१८

स्पष्टा ग्रहा सूर्य ०।१।२।२७, बुध ०।२।५०, शनि ६।१८।७
चन्द्र ०।२।२४, गुरु ८।१९।९, राहु ३।१६।।७
मगल १।२६।६, शुक्र ०।८।४०

महादशाया वर्षमासदिनानि

महादशा	वर्ष	मास	दिन	दिनाक	
केतु	५	८	२६	२२-४-२५	१८-१-३१
शुक्र	२०	०	०	१८-१-३१	१८-१-५१
सूर्य	६	०	०	१८-१-५१	१८-१-५७
चन्द्र	१०	०	०	१८-१-५७	१८-१-६७
मगल	७	०	०	१८-१-६७	१८-१-७४
राहु	१८	०	०	१८-१-७४	१८-१-९२
बृहस्पति	१६	०	०	१८-१-९२	१८-१-२००८

मुनिश्री विद्यानन्द : जैसा मैंने देखा-समझा

मेरा तो कभी-कभी ऐसा विश्वास हो जाता है कि आज २५०० वर्षों के बाद जो स्थिति (जनता की दृष्टि में) तीर्थंकर महावीर की है, वही स्थिति आज से २५०० वर्षों बाद मुनिश्री विद्यानन्द की भी हो सकती है।

☐ पद्मचन्द जैन शास्त्री

परम पुरुष विद्यानन्दजी के सर्वप्रथम दर्शन मुझे १९६३ मे दिल्ली-वर्षावास मे हुए। उन दिनों वे समन्तभद्र विद्यालय मे विराजमान थे। मैंने देखा–मुनिश्री मध्यममार्गी हैं। और वे किसी भी विषय पर धारा-प्रवाह जन-मन-उद्बोधक वाणी बोलते हैं। वे जो बोलते है परिमार्जित और परिपक्व। जनसाधारण को भी उनके विचार हृदयंगम करते देर नही लगती। वे उभयत शरीर और जाति-पंथ-सम्प्रदायगत भावनाओ की अपेक्षा से दिगम्बर है। वे अन्य बहुत से बाह्याचार-विपुल-साधु-त्यागियो से सर्वथा विपरीत उठे हुए है। उनके पास ज्ञानध्यान-क्रिया-शोधक उपकरणो के अतिरिक्त बाह्याडम्बर, परिग्रह, बस-मोटर, मणि-मृगे आदि अपने नही। अपने सघ के व्यक्तियो को संचय-मुक्त रहने की दिशा मे आदेश देते हुए मैने उन्हे अनेक बार देखा है, उनसे आदेश भी पाया है। इसके अतिरिक्त वे आगन्तुक से प्रभावकारी, सौम्य व्यवहार रखते हैं। इस कारण भी अभ्यागत उन्हे चाहता है–उनकी ओर आकृष्ट होता है। मैं भी आकर्षित हुआ–मैंने भी उनके चरणो मे हिमालय से मालवा तक सैकडों मीलो की पद-यात्रा की और अनेक अनुभव लिये–गरीबो के बीच और अमीरो के बीच भी।

मुनिश्री विद्यानन्द का जीवन, उनके द्वारा प्रस्तुत धर्म की व्याख्या और जनता से उनका तादात्म्य तीनो इतने एकाकार हैं कि ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय में मन-वचन तथा काया किसी द्वार से किंचिन्मात्र भी अन्तर प्रतिभासित नही होता। जहाँ मुनिश्री का साकार जीवित शरीर समस्त जीवों से स्वाभाविक जन्म-जात समता रखता है, वहाँ उनके द्वारा प्रस्तुत धर्म की परिभाषा भी सर्वजीव समभाव से ओत-प्रोत रहती है और उनकी वाणी भी सदा विश्वैकरूप–विश्वधर्म का प्रतिपादन करती है। फलतः उनके सम्पर्क में समागत लाखो-लाखो जन उन्हे भेद-भाव-शून्य त्रियोग से निरखते, सुनते और समझते हैं। विभिन्न ज्ञाता विभिन्न समयों मे उन्हे चाहे जिस रूप मे देखे, जाने और मानें; पर नि.सन्देह वे मुनिश्री की उस प्रतिमा को आँखों से ओझल नही कर सकते, जो जन-जन की दृष्टि मे अपना अस्तित्व जमाये और हृदयो मे स्थान बनाये हुए है। मूर्त-रूप मे मुनिश्री को हम जैन दर्शन के 'स्यात्पदलांछित अनेकान्तवाद' के पूर्ण-प्रतीक रूप मे पाते है–वे ऐसे भी है और वैसे भी हैं;

अर्थात् 'जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' का वे पूर्ण-समन्वय है । वे 'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि 'रूप हैं, द्वैत-अद्वैत की समष्टि है और प्रकृति-पुरुष के तीरथधाम है । मुनिश्री विद्यानन्दजी ज्ञान-स्व की साधना और सरस्वती जिनवाणी की आराधना मे युगपत् तत्पर है-उन्होंने दोनो को एकाकार कर लिया है । वे वीर-वाणी को देश मे उसी प्रकार बिखेर रहे है जिस प्रकार एक चतुर बागवान तैयार की हुई भूमि मे बीज बिखेर देता है और अल्पकाल बाद ससार को लहलहाते पुष्पो वाले सुरभित पौधे तैयार मिलने है वे उनकी सुरभि से मुदित होते है । स्मरण रहे, मुनिश्री के विहार से पूर्व ही अग्रिम नगर मे अग्रिम भूमि तैयार हो जाती है और मुनिश्री धर्म-बीज-वपन का कार्य करते अविरल गति से चलते चले जाते है ।

यम से यम-विजय

सुना जाता है 'यम जिसे पकड लेता है, छोडता नही । सब डरते है यम से । पर हिम्मत है मुनिश्री की जो यम को पकडे हुए है । वे कहते है-तू औरो को नही छोडता तो हम तुझे नही छोडेंगे- परित्राणाय जीवानाम् । और यह सच है कि चाहे जो भी परिस्थिति क्या न हो मुनिराज यम (जीवन-पर्यन्त प्रतिज्ञा निभान) को नही छोडते, छोड भी नही सकते । जैनाचार म जीवन-पर्यन्त के लिए धारण की हुई मर्यादा को यम नाम दिया गया है । सच्चे मुनि यम पर सर्वथा विजय पाकर ही रहते है और आश्चर्य यह कि वे स्वय कोई साधन नही बनते इस विजय मे । यम को ही यम (राज) के अन्त का साधन बनाते है । मेरी दृष्टि मे मुनिश्री ने हिमालय पर पदन्यास कर यम-विजय के **महान्यास** का मार्ग खोल दिया ।

न जाने लोगो को क्यो रुचि जागत हुई है अब ? उप+न्यास करने की ! हमारे महापुरुषो न तो जो किया सदा महत् ही किया । उनके कर्तव्य और पुराण सभी महान थे । लघु, उप, निकट आदि जैसे न्यासो की कल्पना भी न थी उन्हें । भला, वे उप-निकट जाते भी तो किसके ? जबकि उनके ध्यान ध्याता, ध्येय सभी एक थ । महान् कार्य मे लघु का तो प्रश्न ही न था उन्हे ।

हम गौरव है कि हमारे मुनिश्री का उत्साह आत्मानुरूप रहा और उन्होने हिमालय पर चरणा का 'उप नही अपितु 'महा न्यास किया । मैं समझता हूँ-सभवत मुनिश्री को अपने मूल-देशनाम से भी कुछ प्रेरणा मिली हो इस महान्यास म । वे कर्नाटक के रहे हैं। और कर्नाटक का सीधा, सरल ग्रामीण अर्थ है- कर + न + अटक अर्थात् कर, अटक मत— अविरल गति से करते चल । फलत मुनिश्री बढे और बढते रहे द्वार से द्वार तक । ठीक ही है, प्राचीन युग क साधु-सन्त भी द्वार-द्वार अलख लगाते फिरे हैं ।

द्वार से द्वार (कोटद्वार-श्रीनगर-हरद्वार)

मुनिश्री ने हिमालय पर आरोहण किया–प्रारम्भिक स्थान कोटद्वार था और अन्तिम हरद्वार। आदि-अन्त दोनो द्वार, साथ ही मध्यद्वार भी। न जाने मुनिश्री को इस यात्रा मे कितने द्वार मिले ? दीनद्वार, दुखीद्वार, श्रावकद्वार, श्राविकाद्वार आदि, इनके अतिरिक्त और भी अनेकों द्वार थे–अमुक नदीद्वार, अमुक झरनाद्वार, अमुक नगरद्वार, अमुक उपत्यकाद्वार आदि। मुनिश्री बढे, साथी बढ़े, जल्दी बढ़े, धीरे बढ़े। बढे, बढे और बढ़े ! मुनिश्री ने हिमालय मे १९७ दिन व्यतीत किये। इस यात्रा मे वे तिब्बत की सीमा माणागाँव और नीलगिरि के सान्निध्य तक पहुँचे। बद्रीविशाल आदि मूलस्थिति, डिमरी जाति का प्राचीनतम (दिगम्बरत्व) इतिहास आदि अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों के उद्घाटन इस यात्रा मे हुए। यात्रा के बहाने आदि तीर्थंकर के विहार-तपस्थल आदि पर भी जन-जागरण हुआ। सर्वधर्माराधको मे दिगम्बरत्व की प्रतिष्ठा होना इस युग की नयी बात है।

कुछ लोगो का स्वभाव होता है–वे अवसर मिलते ही, दबे मुँह ही सही, गुणवानों मे दोष निरीक्षक दृष्टि रखते हैं। फलत एक बार एक महामान्य मुझसे बोल उठे– 'विद्यानदजी तो राजनीति मे पड गए और वे मुक्ति के स्थान पर यश की उपासना भी करने लगे।' मैं कहाँ चुप रहने वाला था। झट बोल उठा–'इस युग मे दक्षिण ने उत्तर को अनेक विभूतियाँ दी है। पू आ शान्तिसागरजी भी उन्हीं मे थे। आ श्री देशभूषणजी के शिष्य मुनिश्री विद्यानन्द भी उन्ही विभूतियो मे है। इन्होने सुदूरदक्षिण-पथ से उत्तर-हिमालय के उत्तुग शिखरो (बद्रीनाथ-माणागाव) तक जैन-धारा बहाने के लिए मगल-विहार किया। भावी पीढ़ियाँ ऐसे मुनिराज की गाथाएँ युग-युगो तक गाएँगी।

मुनिश्री राजनीतिज्ञ तो है, राजनैतिक नही। वे राजनीति और राजनैतिको के मंच से कोसों दूर रहते है। मुझे याद है, दिल्ली मे गोरक्षा-आन्दोलन के प्रसग मे मुनिश्री ने अन्य सप्रदायी सन्त को स्पष्ट कहा था–'साधु-सन्त को आन्दोलनो से क्या प्रयोजन ?' इसी प्रकार मुनिश्री के उज्जैन-प्रवास मे उन्हें केन्द्रीय सरकार का पत्र मिला, तो मुनिश्री ने अपने उद्गार निम्नभावो मे स्पष्ट किए–दिगम्बर साधुओ को समिति-सदस्यता से क्या प्रयोजन ? वे तो ग्राम-ग्राम घूमकर तीर्थंकरो के सन्देश पहुँचाते ही रहे है, जो धर्म-सेवा होती रहेगी, स्वय करते रहेंगे और करते भी है।

मुनिश्री किसी का लिहाज किए बिना ही, न्याय-नीति और धर्मसम्मत बात कह देते है। ऐसा सर्वसाधारण के लिए करना बड़ा कठिन है, उसे आगा-पीछा सोचना पड सकता है। मुझे स्मरण है-जब मुनिश्री ने दिल्ली से इन्दौर के लिए विहार किया, तब २५०० वी निर्वाण-तिथि मनाने की चर्चा बहुचर्चित बन रही थी। लोग निर्वाण-तिथि समिति के अध्यक्ष के नामांकन के विषय में चर्चा उठा चुके थे। ऐसी चर्चाओ मे राजनैतिक, धनी, विद्वान् प्रायः सभी प्रकार के लोग होते थे। जब मुनिश्री का ध्यान उधर गया तब उन्होने भोगल-दिल्ली

(शेष पृष्ठ १२१ पर)

व्यक्ति, समाज, सस्थाएं, कार्यकर्ता, पत्र-पत्रिकाए

३१ दिसम्बर १९७३ को मेरठ मे एक पत्रकार ने मुनिश्री विद्यानन्दजी से कुछ प्रश्न किये थे, जिनके समाधान उपयोगी होने के कारण यहाँ दिये जा रहे हैं।

सत्रास, संदेह, तनाव, अविश्वास और भ्रष्टाचार के इस युग में व्यक्ति को क्या करना चाहिये ?

व्यक्ति एक महत्त्वपूर्ण इकाई है, उसे आत्मशुद्धि की अनवरत साधना करनी चाहिये। वह यदि परिशुद्ध होता है, तो समाज का ढाचा बदला जा सकता है, अन्यथा सब कुछ असभव ही है। आज सामुदायिक क्रान्ति की बात सब करते हैं, आत्मक्रान्ति के लिए कोई नही कहता, किन्तु धर्म का अभियान व्यक्ति मे ही आरंभ होता है। इसलिए मै कहूँगा कि व्यक्ति को अपने जीवन मे धर्मतत्व की गहरी साधना करनी चाहिये। धर्मविमुख होकर व्यक्ति कोई मगलकारी भूमिका नही निभा सकता। व्यक्ति को सबसे पहला काम यह करना चाहिये कि वह अपने जीवन मे कृत्रिमताओ को विदा कर दे और अपनी साहजिकता मे आ जाए। सहज होने पर कोई समस्या नही होगी। स्वाभाविकता समस्या नही है, बनावटीपन समस्या है। इससे लोकजीवन मे कथनी-करनी का अन्तर मिट जाएगा, तनाव कम होगा सत्रास मिटेगा। और परस्पर विश्वास का सस्कार जमेगा। जब तक व्यक्ति मे स्वाभाविकता के झरने नही खुलते लोकमगल की सभावनाए समृद्ध नही होंगी।

समाज को क्या करना चाहिये ? आज सामुदायिक जीवन बिलकुल फीका है, कहीं किसी में बर्बरता और हिंसा का सामना करने का साहस नहीं है ? इस संदर्भ में क्या करना होगा ?

क्या करना होगा, यह तो एक लम्बी प्रक्रिया है, किन्तु इतना अवश्य किया जाना चाहिये कि समाज नयी पीढी के लिए उदार और युक्तियुक्त बने। उस पर कुछ भी थोपा न जाए, उसकी आकाक्षाओ की अवहेलना भी न की जाए और उससे ऊलजलूल अधी अपेक्षाएँ भी न की जाएँ। उसके लिए धार्मिक आचार-विचार के साधन जुटाये जाएँ ताकि धर्म पर उसकी आस्था अडिग हो और आत्मा-परमात्मा के सबध मे वह स्वतन्त्र रूप मे कुछ जान सके। बढ़ती हुई भौतिकता के समानान्तर यदि सहज आध्यात्मिकता को नयी पीढी तक नही पहुँचाया गया तो वर्तमान स्थिति लगातार बिगडती जाएगी, उसमे सुधार की अपेक्षा हम नही कर सकते। इस दृष्टि से भौतिक और आध्यात्मिक ऊर्जा मे संतुलन बनाये रखना समाज के हित मे ही होगा।

इन दिनों आप नयी-नयी संस्थाओं को जन्म दे रहे हैं, किन्तु जो पुरानी संस्थाएं पहिले से कार्यरत हैं, उन्हें बदले हुए संदर्भों में क्या करना चाहिये ?

कोई भी सस्था ईंट-पत्थर, चूने-गारे से नही बनती। वह जड़ पदार्थों की सभा मात्र नही है अत हमे चाहिये कि हम सस्था को साधन माने और उत्तम कार्यकर्ता तैयार करने को साध्य। आज सस्थाएँ तो बनती हैं किन्तु कार्यकर्ता नही होते। मैं जिन सस्थाओं को प्रेरित करता हूँ, उनमे कार्यकर्ता पहले देखता हूँ। नयी-पुरानी सभी सस्थाओ को कार्यकर्ताओ पर ही अधिक ध्यान देना चाहिये। आज न तो विद्वान् पडित ही है और न ही समाजसेवी व्यक्तित्व, जो हैं, वे भी जाने लगे हैं। अत हमे अपने सपूर्ण साधन-स्रोतो के साथ इस कमी को पूरा करने मे जुट जाना चाहिये। प्रशिक्षित और निष्ठावान कार्यकर्ता जब तक आगे नही आयेगा, सस्थाए निष्प्राण रहेगी, कागज पर बनी हुई तस्वीर-मात्र।

आज हिंसा और परिग्रहमूलक व्यवस्था में जैन पत्र-पत्रिकाओं की क्या भूमिका होनी चाहिये ?

पत्र-पत्रिका फिर वह चाहे जैन हो या जैनेतर, उसे मनुष्य को केन्द्र मानकर चलना चाहिये, और उखड़ते हुए नैतिक और सास्कृतिक मूल्यो के पुन.सस्थापन मे पूरे बल से सहायता करना चाहिये। उन्हे प्राचीन इतिहास की उज्ज्वलताओ को उजागर करना चाहिये और सत्प्रवृत्तियो को अनवरत प्रोत्साहित और पुरस्कृत। उनका सदाचार भ्रष्टाचार, हिंसा और सामुदायिक जीवन को पतन के रास्ते जाने से रोक सकता है। □□

जैसा मेने देखा–(पृष्ठ ११९ का शेष)

की एक जन-सभा मे यह घोषणा की कि तीर्थंकर महावीर की निर्वाण-तिथि प्रबन्धक समिति मे उसीको अध्यक्ष बनाया जाय जो धर्माचरण के अनुकूल हो और शराब न पीता हो, कुव्यसन-सेवी न हो। मै नही जानता कि तब लोगो ने क्या अनुभव किया–कैसा अनुभव किया या तदनुसार आचरण के लिए क्या प्रयत्न किया? और अब कैसा प्रोग्राम होना है? यहा तो मेरा तात्पर्य केवल मुनिश्री की निर्भीक वक्तृता से है कि वे कितने स्पष्ट वक्ता हैं। 'कह दिया सौ बार उनसे, जो हमारे दिल मे है।'

उक्त तथ्यों के आधार पर यदि हम निष्कर्ष निकालना चाहे, तो यो कह सकते है कि *पूज्य मुनिवर हर क्षेत्र मे अनमोल है। वे सर्वगुणसपन्न है। उन्हें ज्ञान है, विशेष ज्ञान*–विज्ञान है और भेद-विज्ञान भी है। मेरा तो कभी-कभी ऐसा भी विश्वास हो जाता है कि आज २५०० वर्षों के बाद जो स्थिति (जनता की दृष्टि मे) तीर्थंकर महावीर की है, वही स्थिति आज से २५०० वर्षों बाद मुनिश्री विद्यानन्द की भी हो सकती है। तीर्थंकर को ज्ञान-विज्ञान के साथ भेद-ज्ञान की चरमोपलब्धि प्राप्त थी और ये भी भेद-विज्ञान की आत्म-परक चरमोपलब्धि करते ही उस स्थिति को पाने में समर्थ हो सकते हैं–जन-जन से दूर, शान्त एकान्त मे विराजते हैं, वैसी सामर्थ्य रखते है। मैंने मुनिश्री की हिमालय-उपलब्धि में ये ही भाव-एकान्तवास के उद्गार अनेक बार मुनिश्री के श्रीमुख से श्रवण किये।

□□

शास्त्र पढकर ही यदि कोई सत्य को जान ले तो सत्य बडी सस्ती बात हो जाएगी, फिर तो शास्त्र की जितनी कीमत है उतनी ही कीमत सत्य की भी हो जाएगी। शास्त्र पढकर सत्य जाना नही जा सकता है, सिर्फ पहिचाना जा सकता है।

—रजनीश

महावीर खण्ड

सूरज वह.....

पुरबिया क्षितिज पर जो उदित हुआ
आज तक नही डूबा

तीर्थंकर
वर्धमान महावीर

जन्म कुण्डग्राम

पिता सिद्धार्थ

माता त्रिशला

कुल नाथ

जाति लिच्छवि

वश इक्ष्वाकु

गोत्र काश्यप

पंच कल्याणक

गर्भ आषाढ शुक्ला ६
शुक्रवार, १७ जून ५९९ ई पू

जन्म चैत्र शुक्ला १३
सोमवार २७ मार्च ५९८ ई पू

दीक्षा मगसिर कृष्ण १०
सोमवार, २९ दिसम्बर ५६९ ई पू

कैवल्य वैशाख शुक्ला १०
रविवार २६ अप्रैल ५५७ ई पू

देशना श्रावण कृष्णा १,
शनिवार १ जुलाई ५५७ ई पू

निर्वाण कार्तिक कृष्ण ३०, मगलवार
१५ अक्टूबर, ५२७ ई पू

□ नईम
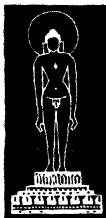
१

आये तुम
धरती के चेहरे पर पीडा के साये
तुम आये
रीत रहे ताल्लो-सा अदेशा,
लाये तुम प्यासो को सदेशा,
घर-बाहर, मेघदूत बनकर घहराये

सूखी जो छाती थी माओ की,
काठी खट गयी थी पिताओ की,
मृगतृष्णा के पठार तोड छितराये

ठीक सामने से हर वार सहा,
बिना जिये अक्षर भी नही कहा,
मानव की क्या बिसात देवता लजाये.
आये तुम आये.

२

आज अपने सामने—
जो कर गया हमको खडा,

कुछ अधिक था आदमी से, मूर्तिमय विश्वास था,
आँख वालो के लिए वह समूचा मधुमास था
भीतरी औ' बाहरी
दो मोर्चों पर वह लडा

सभ्यता को भेडियो की मांद से खीचा, निकाला,
ये नही देंगे गवाही, वो नही देंगे हवाला ?
बोझ कधो पर लिए–
सीधी चढाई वह चढा

हम अनाभारी नही है किन्तु यह साक्षातSSर
हर मुखौटे को हमारे कर रहा है तार तार
पारदर्शी आइना था
आदमी से भी बडा
आज अपने सामने जो
कर गया हमको खडा

३

सूरज वह · ·
पुरबिया क्षितिज पर जो उदित हुआ
आज तक नही डूबा
देखे आकाश और, सूरज भी देखे है,
लेकिन उसके आगे इनके क्या लेखे है ?
लोक-वेद ने गाया, मन आखिर मन ही है–
आज तक नही ऊबा

ताप और शीतलता साथ-साथ लिये हुए,
दुखियारे दीनो के हाथो मे हाथ लिये,
मरुथल मे कटीली खजूर नही––
हरी-भरी-सी दूबा

एक चुनौती-सा वह काल के लिए अब तक,
दुनिवार यात्रा पर चला जा रहा अनथक,
पूछो मत साधू से जात-पाँत,
ग्राम, धाम, या सूबा
पुरबिया क्षितिज पर ·
आज तक नही डूबा

○○

महावीर : सामाजिक क्रान्ति के सूत्रधार

आत्मजीवन का परम सत्य ही लोकजीवन का परम सत्य है, यह स्वयंसिद्ध है और इसी मे महावीर के मार्ग की सामाजिक महत्ता छिपी है।

☐ भानीराम 'अग्निमुख'

महावीर एक आत्म साधक थे, समाज-सुधारक नही। आत्म-साधना वैयक्तिक होती है, समाज के लिए उद्दिष्ट नही, लेकिन जिसे हम समाज कहते है वह व्यक्ति की सामूहिक इच्छा की ही परिणति-मात्र है। अगर व्यक्ति नही चाहता तो समाज नही होता। यदि आज व्यक्ति न चाहे तो उसके लिए समाज का अस्तित्व रहता ही नही। व्यक्तियो से मिलकर समाज बना है, अत. उसकी रचयिता और नियामक व्यक्ति-व्यक्ति के अन्त.करण मे निहित भावना-मात्र है। समाज मे यदि पाप है तो वह व्यक्ति का अपना है, पुण्य है तो वह भी व्यक्ति का अपना है। समाज की नीव सहकार है। इसके अभाव मे एक पल भी समाज का अस्तित्व नही रह सकता।

हम जब समाज की बात करते है तो अपने को उससे काटकर अलग कर लेते हैं। हर व्यक्ति यही करता है। अगर सारे ही व्यक्ति समाज से अलग हैं, उसके गुण-दोषो के लिए उत्तरदायी नही, तटस्थ आलोचक-मात्र है, तो फिर समाज किसका है? किसने निर्मित किया है? किसने कायम रखा है? हम इन प्रश्नो से भाग नही सकते, इनका उत्तर हर व्यक्ति को अपने मे ईमानदारी से खोजना है, उनके अनुसार उचित कदम उठाना है। यदि समाज मे विषमता है, शोषण और हिंसा है तो इसका बीज हमे अपने अत करण के शून्य विवर मे कही मिलेगा और वही से उसका उन्मूलन भी सभव है। समाज और उसकी व्यवस्था तो छाया-मात्र है व्यक्ति की, और व्यक्ति प्रतिबिम्ब मात्र है, अपने अन्त.करण के रग-रूपो का।

महावीर आत्म-साधना का मार्ग बताते है और यह व्यक्ति के लिए है लेकिन व्यक्ति के अनेक बाहरी आयाम हैं जो समाज, राष्ट्र और समग्र विश्व मे रचे-पचे है। व्यक्ति का रूपान्तरण हो गया तो सारी मानवता का हो गया, अन्त व्यक्ति-क्रान्ति हो गयी तो विश्व-क्रान्ति भी स्वत. हो गयी। वह नही हुई तो कुछ भी नही हुआ। पैगम्बर मुहम्मद के शब्द इस सदर्भ मे एक जीवन्त सत्य का उद्घाटन करते हैं· "एक आदमी का विनाश हो गया तो समझ लो, सारी मानव-जाति का

विनाश हो गया और एक व्यक्ति का कल्याण हो गया तो समझ लो सारी मानवता का कल्याण हो गया। व्यक्ति एक ही होता है एक-एक व्यक्ति मिलकर समाज देश और सारी मानवता बन जाती है।

अत महावीर का मार्ग समाज के सम्थागत रूप के लिए उद्दिष्ट नही है लेकिन समाज पर उसका प्रभाव पडे बिना रह नही सकता।

अत महावीर आत्म-साधना के प्रचेता है लेकिन लोकजीवन मे उससे क्रान्ति होती है यह एक स्वय प्रमाणित सत्य है।

□

माधना की एक अनिवाय शत है–जीवन शुद्धि। धन्य हैं वे जिनका अन्त करण निमल है –ईसा मसीह ने जेतून के पवत से कहा— क्योकि वे प्रभु को देखेगे। यह प्रभ क्या है? महावीर का उत्तर स्पष्ट है–सच्च भव –सत्य ही प्रभु है सच्च लोयम्मि सारभूय –सत्य ही लोक मे सारभूत है। सत्य क्या है? जो है वह सत्य है—अस्तित्व अपनी समग्र पूणता म। अस्तित्व एक ओर अखण्ड अविभाज्य और अभेद सत्ता है जिसम हम सब समाहित हैं और जो हम सबमे समाहित है। एगे आया –एक आत्मा की मूलभत सत्ता महावीर का सत्य है सम्पूण और अखण्ड। वह भगवान है। इस सत्य की अराधना जीवन का लक्ष्य है। सम्पूण अस्तित्व के साथ एकात्मकता का बोध जिसमे हमारा व्यक्तिमूलक अह समुद्र मे बूँद की तरह विलीन हो जाता है और उस एकाकारता–एकात्मकता मे अपने को खोना ही अपने को वास्तव मे पाना है। क्राइस्ट के शब्दो मे जो अपन को खो देते है व अपन का पा लेत है और जो अपने को कायम रखना चाहते हैं व अपने को खो डालत है।

एकात्मकता के समग्रबोध म अहिसा स्वत समाहित है उसकी व्यवहारिक फलश्रुति के रूप मे। गाधीजी ने ठीक कहा था। 'सत्य की खोज मे निकलने पर मझे अहिसा मिली। आन्तरिक मलसत्ता मे जो आत्मबोध है व्यवहार के स्तर पर वह अहिसा है। अल्बट स्वाइत्जर के शब्दो मे यह जीवन का सम्मान– रेवरेंस फॉर लाइफ है। समाज राष्ट्र और मानवता बहुत ही ऊपरी स्तर पर इस अहिसा की ही अभिव्यक्ति है। इसके अभाव मे उनका न सृजन सभव है न सरक्षण न अस्तित्व और न विकास। आत्मजीवन का परम सत्य ही लाकजीवन का परम सत्य है यह स्वय प्रमाणित है और इसी म महावीर के मार्ग की सामाजिक महत्ता छिपी है।

धर्म की परिभाषा महावीर न आचार के स्तर पर अहिसा पर ही आधारित की है। सव्व पाणा सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हतव्वा ण अज्जावेयव्वा ण परिता-

वेयव्वा, ण परिवेतव्वा, एस धम्मे धुवे णिइए सासए"—सारे प्राणी, सारे जीव, सारे स्वत्वों का शोषण, पीडन, स्वत्वहरण, दासत्व तथा प्राणविमोचन न करना, यही शाश्वत, चिरन्तन और अटल धर्म है, क्योंकि 'सव्वेपाणा जोविउ कामा'—सब प्राणी जीना चाहते है, 'मरणभया' मरने से डरते हैं, 'सुहसाया'—सुख चाहते हैं, 'दुक्ख पडिकूला'—दुःख सबको प्रतिकूल लगता है।

महावीर की अहिंसा केवल व्यवहार या वाणी के स्तर पर ही नही, क्योकि ये तो उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम मात्र हैं, वह मन के अतल गह्वरो मे घूमने वाले सूक्ष्म चेतना-चक्र में समाहित होकर उसे रूपान्तरित कर देती है, इसी मे उसकी सार्थकता है, अत मन, वचन, कर्म तीनो योग तथा करना, कराना और अनुमोदित करना, तीनो करणो के समस्त स्तरो तक उसकी व्याप्ति है। आत्म-साधना के इस परम सत्य मे ही सामाजिक क्रान्ति के बीज अन्तर्निहित है।

□□

समाज की नींव व्यक्ति है । समाज का आधार सहयोग है। समाज व्यक्ति की सामूहिक इच्छा की अभिव्यक्ति है । समाज के साथ व्यक्ति का सम्बन्ध कुछ करने, कुछ कराने और कुछ अनुमोदित करने मे प्रकट होता है। यही महावीर के तीन करण है। यदि समाज मे शोषण, विषमता और हिंसा हो तो यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति की इच्छा की अभिव्यक्ति है—समूह के स्तर पर। स्तर चाहे समूह का हो, लेकिन इच्छा व्यक्ति की है। लिप्सा व्यक्ति की है, उसका बीज व्यक्ति मे है। व्यक्ति शोषण न करे, न कराये, न करने मे सहयोगी बने, न उसका अनु-मोदन करे, न शोषणशील व्यवस्था के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध कायम रखे तो समाज के सामने मिट जाने या बदल जाने के अलावा कोई विकल्प रहता ही नही। यह समाज-क्रान्ति का सबसे सशक्त सूत्र है जिसकी महत्ता गाधीजी समझ सके और उन्होंने असहयोग और अवज्ञा के रूप मे इसका सफल प्रयोग किया।

महावीर का स्पष्ट मतव्य है कि अहिंसा धर्म है, हिंसा अधर्म, कि विषमता हिंसा है, शोषण हिंसा है, किसी पर किसी भी प्रकार की बाध्यतामूलक सत्ता हिंसा है। इस हिंसा को स्वयं करना, किसी से कराना, करते हुए किसी के साथ किसी प्रकार का सहयोग रखना, उसको किसी भी प्रकार अनुमोदन देना, उसका अनुशासन, नियम, कानून और सत्ता को मानना—सब हिंसा है, एक जैसी ही, एक जितनी ही। अत महावीर के वास्तविक अनुयायी का आत्मधर्म स्वय अहिंसा की साधना करना तथा हिंसा के किसी भी प्रकार पर टिकी व्यवस्था के साथ पूर्ण असहमति (टोटल डिस्सेण्ट) व्यक्त करना, पूर्णत उसकी अवज्ञा करना, उससे पूर्णत असहयोग करना है। पल-भर भी समाज इस स्थिति में अपने को एकदम बदले

बिना कायम नही रह सकता। मार्क्स की रक्त-क्रान्ति और वर्ग। सघर्ष की व्यूह-योजना जो सम्पूर्ण कायाकल्प नही कर सकती उसका सूत्र महावीर ने स्पष्ट बताया है। यद्यपि उसका मूल धरातल आत्मिक है, लेकिन निष्पत्तियाँ समाज-परिवर्तनकारी हैं।

मार्क्स इस शताब्दी के सबसे बडे साम्य-प्रचेता है। उनका करुणाशील हृदय वर्ग-भेद, वैषम्य और शोषण पर आधारित समाज-व्यवस्था का बीभत्स रूप देखकर कराह उठा और उन्होने वर्ग-सघर्ष द्वारा साम्य-मूलक समाज-व्यवस्था की स्थापना का सूत्र दिया। आज आधा ससार उसे साकार करने मे लगा है, लेकिन कर नहीं पा रहा है क्योकि मूल मे ही मार्क्स की कुछ भूल रही है। प्रथम, व्यवस्था पर सारा दोष आरोपित कर वह उसे बदलने का उपाय बताता है, लेकिन व्यवस्था का बीज व्यक्ति का अन्तर्मन है इस बात को वह भूल गया है। दूसरे हिंसा और वर्ग-घृणा स्वय शोषण तथा विषमता के बीज है जिनसे साम्य-मूलक समाज-रचना सभव ही नही है। जिस द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर मार्क्स की क्रान्ति-व्यूह-रचना टिकी है, वह अपने-आप मे ही भलो से भरा है।

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व महावीर ने अपरिग्रह तथा विसर्जन के सूत्र ससार को दिये थे। महावीर की भावना पर निर्मित समाज मे स्वामित्व का सम्पूर्ण विसर्जन अनिवार्य है क्योकि वे 'सविभाग' को जीवन का आधार मानते है और सविभाग का अर्थ ही है समान विभाजन या वितरण। 'दान' मे देने वाले और लेने वाले के बीच वर्ग-भेद रहता है लेकिन सविभाग मे वर्गहीनता अन्तर्निहित है। महावीर की स्पष्ट घोषणा है कि "असविभागी नह तस्स मोक्खो"–असविभागी के लिए धर्म या मोक्ष का अस्तित्व तक नही है। यह सविभाग करना कराना, उसका अनुमोदन करना, असविभागमयी व्यवस्था के साथ पूर्ण असहमति असहकार और अवज्ञा करना, यह है साम्य-मूलक समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए महावीर का क्रान्ति-सूत्र। □□□

'स्वाध्याय-रूपी चिन्तामणि जिसे मिल जाती है, वह कुबेर के रत्नकोषों को पराजित कर देता है। ज्ञान के क्षेत्र मे नवोन्मेष और ज्ञान-विज्ञान की खोज मे स्वाध्याय ही प्रबल कारण है।

–मुनि विद्यानन्द

अहिंसा : महावीर और गांधी

यदि मनुष्य को मनुष्य रहना है तो उसे साबित बनना होगा। जैन लोग तो खण्डित प्रतिमा को नमस्कार भी नही करते। प्रतिमा खण्डित नही चलेगी, तो मनुष्य कैसे खण्डित चलेगा ? और मनुष्य साबित तभी बनेगा जब वह भीतर-बाहर का जीवन सहज बनाये।

—माणकचन्द कटारिया

अहिसा कोई नारा नही है, न ही यह कोई धर्मान्धता (डॉगमा) है। न अहिंसा परिभाषा की वस्तु है न वह पथ है। उसे न हम वाद कह सकते हैं, न हम उसे महज विचार मान सकते हैं। अहिसा तो एक जीवन है, मनुष्य के जीवन की एक तर्ज, जो केवल जीकर पहचानी जा सकती है, समझी जा सकती है।

प्रकाश की आप क्या व्याख्या करेंगे ? वर्णन से अधिक वह अनुभव की वस्तु है—उसी तरह अहिसा मनुष्य के जीवन की एक विशेषता है। उसे जीता है तो वह मनुष्य रहता है, नही तो अहिसा को खोकर समची मानवता ही डूब सकती है।

अब क्या आप महज खाने-पीने की परिधि के साथ अहिंसा को जोड़ेंगे ? क्या आप रहन-सहन के दायरे से इसे बाधेंगे ? मैं मास नही खाता तो क्या अहिसक हो गया, या निरा शाकाहारी हूँ तो अहिसक हो गया ? मैं किसी की हत्या नही करता, न शिकार खेलता हूँ, न कीट-पतगो को मारता हूँ—मेरे लिए मास-मछली-अडा आदि अखाद्य हैं तो क्या मैंने अहिंसा को वर लिया ?—अब ये ऐसे प्रश्न है जिनकी तह मे आप जाएं तो महावीर के नजदीक पहुँचेंगे। महावीर पशु-बलि से घबडाकर, युद्ध मे हो रहे विनाश को देखकर, राज्य-धन-यश की लोलुपता के कारण मनुष्य के द्वारा मनुष्य का हनन देखकर ससार से भागा और गहरा गोता लगा गया। अपने आप मे डूब गया। अपने हृदय की अतल गहराई मे उतर गया और जो रत्न वह खोजकर लाया वे अमूल्य हैं, अहिसा को समझने मे सहायक हैं, अहिसा को जीने की कीमिया हैं।

मुझे एक धर्मालु मिले, जो जीवदया के हिमायती है—कबूतर के लिए जुआर और चीटी के बाबियो मे आटा डालने का उन्हे अभ्यास हो गया है। प्राणिमात्र

के लिए बहुत दयावान हैं। खान-पान की भ्रष्टता से वे बहुत चिन्तित है। उनके लिए अहिंसा याने शुद्ध शाकाहार–खाद्य-अखाद्य का विवेक और जीवदया। मैं उन्हें समझाता रहता हूँ कि इतना तो आज के इस विज्ञान युग मे परिस्थिति-विज्ञान (इकॉलॉजी) भी कर देगा। एक पूर्ण मासाहारी के लिए पाँच एकड जमीन चाहिये, जबकि एक पूर्ण शाकाहारी के लिए एक एकड जमीन ही पर्याप्त है। मनुष्य को अपनी जनसख्या का सतुलन बैठाना हो तो अपने-आप उसे मासाहार छोडना होगा। आबादी के मान से इतनी जमीन है नही कि मनुष्य मासाहार पर टिका रहे। शायद बहत ही निकट भविष्य मे मनष्य को अपनी सीमा पहचानकर मासाहार छोड ही देना होगा—तब क्या हम सम्पूर्ण मानव-जाति को अहिंसा धर्मी मानगे ? लेकिन इतना सरल माग अहिसा का है नही।

मूल बात दृष्टि की

इसलिए महावीर बाहर की आचार सहिता म नही गया। भीतर मे अहिसा उगगी ता बाहर का आचार-व्यवहार रहन-सहन अहिसा के अनुकल बनने ही वाला है। उसकी चिन्ता करनी नही पडगी। महावीर ने मनुष्य को भीतर से पकडा। उसने जान लिया कि मनष्य हारता है तो अपनी ही तृष्णा से हारता है भस्म होता हे तो अपने ही क्रोध स भस्म होता है उसे उसका ही द्वष परास्त करता है अपनी ही वैर भावना म वह उलझता है। बाहर से तो कुछ है नही। वस्तुओ स घिरा मनष्य भी अलिप्त रह सकता है वस्तु का नही छूकर भी वह उसक मोह-जाल मे फँस सकता ह। महावीर की यह अनुभति बड मार्के की है। उन्होने कहा है–

> अनाचारी वृत्ति का मनुष्य भले ही मृगचम पहने नग्न रहे जटा बढाये सघटिका आढ अथवा सिर मुडा ले—तो भी वह सदाचारी नही बन सकता।

मूल बात वृत्ति की है दृष्टि की है। हम भीतर से अपन का देख और उसकी सापेक्षा मे इस जगत को समझ। महावीर हमे बाह्य जगत म खीचकर एकदम भीतर ले गये—यह है तुम्हारा नियत्रण-कक्ष। क्रोध को अक्रोध से जीतो वैर से अवैर को पछाडो घृणा को प्रम से पिघलाओ वस्तुओ का मोह सयम के हवाल करो। तृष्णा का मुकाबिला समता करेगी लोभ पर अकुश साधना का रहेगा और इस तरह आत्मा अपने ही तेज-पज म अपने को परखगी जाचेगी सम्यक मार्ग अपनायेगी।

इसी पराक्रम ने महावीर को महावीर की सज्ञा दी। अपने गले का मुक्ताहार किसी को देकर झझट स मुक्त होना सरल है लेकिन गले मे पडी मोतियो की माला से अपना मन छडाना सरल काम नही है। इस कठिन मार्ग की साधना महावीर ने की और कामयाबी पायी।

अपरिग्रह

अहिंसा के मार्ग मे एक और पराक्रम महावीर ने किया। उन्होंने अपनी खोज मे पाया कि अहिंसा की आधार-शिला तो अपरिग्रह है—अपरिग्रह की साधना के बिना अहिंसा टिकेगी नही। वस्तुओ से घिरे इस ससार मे सहज होना है तो परिग्रह छोडना होगा। इससे ही बात नही बनेगी कि आप यह तय कर ले कि मैं यह खाऊँगा, यह नही खाऊँगा, इतना पहनूंगा, इतना नही पहनूंगा, इतना चलूंगा, इतना नही चलूंगा। मेरी धन-मर्यादा इतनी है, वस्तु-मर्यादा इतनी है। **बात वस्तुओं को छोडने की नहीं, वस्तुओं से अलिप्त होने की है।** महावीर की साधना इस दिशा मे गहरे उतरी और उन्होंने वस्तुओ से अलिप्त होने की सिखावन दी। अहिंसा और अपरिग्रह को उन्होने एक-दूसरे के लिए अपरिहार्य बना दिया। यह एक ही सिक्का है—इधर से देखो तो अहिंसा है और उधर से देखो तो अपरिग्रह है। वस्तुओ मे उतरा-डूबा मन अहिसा के पथ पर लडखडा जाएगा, उन्होंने इसका स्वय अनुभव लिया। अब यह जो आप उनका दिगम्बर रूप देखते है, वह महज त्याग नही है। निर्लिप्त रहने की साधना है। त्याग तो बहुत ऊपर-ऊपर की चीज है। अहिसा के साधक को वस्तुओ से घिरे रहकर भी निर्लिप्त होने की साधना करनी होगी। और यह केवल साधक का ही रास्ता नही है, मनुष्य-मात्र का रास्ता है। मनुष्य के जीवन की तर्ज अहिसा है तो उसे अलिप्त होने का अभ्यास करना ही होगा।

सम्यक् जीवन

अहिंसा की साधना मे महावीर एक और रत्न खोज कर लाये। धर्म-जाति-लिंग-भाषा के नाम से मनुष्य ने जो ये खैये बना लिये हैं, वे व्यर्थ है। मनुष्य मनुष्य है। अब उसकी काया स्त्री की है या पुरुष की, जन्म उसने इस कुल मे लिया हो या उस कुल मे, वह मूल मे मनुष्य ही है। और मनुष्य के नाते अपने आत्म-कल्याण की उच्चतम सीढी पर चढने का उसे पूरा अधिकार है। स्त्री की छाया से डरने वाला सन्यासी-समाज महावीर की इस क्रान्ति से चौंका। कुलीनता की ऊँच-नीच भावना का हिमायती समाज काँपा, लेकिन महावीर अपनी वीरता मे नही चूके। उनका अहिसा-धर्म मानव-धर्म के रूप मे प्रकट हुआ था। उन्होने तो मनुष्य के बनाये चौखटो और घेरों से अहिंसा-धर्म को बाहर निकाला था। मनुष्य का धर्म वह है ही नही जो उसने पथ, डॉग्मा, जाति या कौम के नाम से स्वीकारा है। उन्होने मनुष्य का असली धर्म मानव-मात्र के हाथ मे थमाया। 'आत्मधर्म'-आत्मा को पहचानो, जाति भूलो, कुल भूलो, स्त्री-पुरुष-भेद भूलो। मनुष्य अगर मनुष्य है तो अपनी आत्मा के कारण है।

जैसे हिसा उसके जीवन की तज नही है उसी तरह धर्म-जाति-वर्ग-लिंग आदि कठघरे भी मनुष्य के जीवन की तर्ज नही हैं। महावीर मानव-धर्म के हिमायती थे। मनुष्य अपना धर्म छोडकर और कौन-सा धर्म अपनायेगा ? उसका धर्म यही है कि वह सम्यक बने। मनुष्य के जीवन की कोई सहिता हो सकती है तो केवल तीन सहिताएँ है—सम्यक दशन सम्यक ज्ञान सम्यक चारित्र्य।

'ही' और 'भी'

उन्होने मनष्य के हाथ मे एक और कसौटी रख दी। मनुष्य जो देखता है सुनता है समझता है और खोजकर लाता है उसके परे भी कुछ है। अपने ही ज्ञान अनभव और अहकार मे डूबा मन ही पर टिक जाता है। समझता है उसने जो देखा—पाया—जाना वही तो सच्चा है लेकिन इस परिधि के बाहर भी कुछ है जिसे और कोई देख परख सकता है। मनुष्य की बुद्धि को इस भी पर टिकाने म महावीर ने गहरी माधना की। विज्ञान-युग मे आइन्स्टीन के इस थ्योरी आफ रिलेटिविटी—सापेक्षवाद को प्रयोगशाला से सिद्ध कर दिखाया है। मनुष्य को सहज बनाने मे नम्र बनाने म उसकी बद्धि को खली रखने मे उसे अहकार से बचाने मे और इस व्यापक जगत का सही आकलन करने मे यह सापेक्षवाद बड महत्त्व का तत्त्व है। □□

इस तरह महावीर अपने यग क तीथकर थे। उन्होने मनुष्य के जीवन की तज ही बदल दी। उसे व हिसा स अहिसा की ओर ले गये वैर से क्षमा की ओर ले गये घणा स प्रम की ओर ले गये तृष्णा से त्याग की ओर ल गये। तीर-तलवार के बजाय मनष्य का आत्म विश्वास अपने ही आत्मबल पर टिका। ईसा मसीह को यह कहन की हिम्मत हुई कि—यदि तुम्हारे एक गाल पर कोई थप्पड मारे ता उसक सामने अपना दूसरा गाल कर दो। मनुष्य के आरोहण म यह महत्त्वपूण ऊँचाई थी। मीरा हँसकर गा सकी कि—जहर का प्याला रानाजी न भजा मीरा पी पी हासी रे। त्याग बलिदान सहिष्णता और क्षमा के उपकरण मनुष्य के हाथ लग और उसे अपने अनुभव स यह समझ मे आया कि ये उपकरण घातक उपकरणो क मकाबिल अधिक कारगर हैं। सारा पशुबल आत्मोत्सग के सामने फीका पड जाता है।

उलझन

यो महावीर ने मनुष्य को आत्म विश्वास दिया आत्म-बल दिया सम्यक दृष्टि दी और अपने ही भीतर बसे शत्रुओ से लोहा लेने की कीमिया मनुष्य के हाथ मे रख दी। यह एक ऐसी साधना थी जिस पर अहिंसा धम का हर राही चल सकता था। मनुष्य ने चलना शुरू किया। युगो-यगो तक चलता रहा और आज भी इसे निजी जीवन का आरोहण मानकर वह चल रहा है। एक से एक ऊँचे साधक आपको समाज मे दीखगे—सब कुछ छाड देने वाल आत्मलीन महातपस्वी। व अपने आपमे

रममान रहे हैं—बाहर से जैसे उन्हें कुछ छू ही नही रहा है। उनके चारो ओर समाज हिंसा की ज्वाला में धू-धू जल रहा है। और वे सहज हैं, निश्चल है। बम गिर रहे है और बस्तियाँ नष्ट हो रही हैं—पर साधक अपनी साधना मे लीन है। उन्हे मनुष्य की तर्ज को बदलनेवाली हिंसाओ से कोई मतलब नही। वे अपने खेमे मे भीतर हैं और वहाँ की छोटी-छोटी हिंसाओ पर नियत्रण पाने मे लगे हुए हैं।

दूसरी ओर, जैसे साधक को बाहर का जीवन नही छू रहा, वैसे ही समाज को साधक की साधना नही छू पा रही है। समाज उसे महात्मा, महामानव, महापुरुष और तपोपूत की सज्ञा देकर चरण छू लेता है और अपने हिंसक जीवन के मार्ग पर अबूझ दौड रहा है। राम कृष्ण, बुद्ध, ईसा, महावीर मुहम्मद-जैसे महाप्रभु आये, और साधुमना लोगो की लम्बी जमात हमारे बीच आयी रही हमे उपदेश देती रही। सिखावन दे गयी और खुद उन पर चलकर अहिंसा का पाठ पढा गयी थी कि मनुष्य के जीवन की यही तज है––इसे खोकर वह मनुष्य नही रहेगा लेकिन दुर्भाग्य कि मनुष्य ने अपने जीवन की दो समानान्तर पद्धतियाँ बना ली। भीतर से वह अहिसा का पथिक है और बाहर समाज मे वह वस्तु-धन-सत्ता पशुबल और अहकार पर आधारित है।

गाधी ने इस उलझन को समझा। कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा लगाये तो नम्र होकर दूसरा गाल उसकी ओर कर देने से तुम्हारा अहकार तो गलेगा, लेकिन महज इस व्यक्तिगत साधना स समाज नही बदलेगा। समाज को अहिसा की ओर ले जाना हो तो दिन-रात समाज मे चलनेवाले शोषण अपमान जहालत और सत्ता की अन्धाधुन्धी से लोहा लेना होगा। अन्याय का सामना करना होगा। तब तक सामाजिक या राजनैतिक अन्याय के प्रतिकार का एक ही माग दुनिया ने जाना था––बल और बल-प्रयोग। विधि-विधान दण्ड जेल, फौज युद्ध और न्यायालय भी इसी विचार को पोषण देनेवाले उपकरण है। हजारो सालो मे मनुष्य ने बल की सत्ता का खुलकर प्रयोग किया है। मनुष्य मनुष्य का बदी रहा है बल के सामने पगु है, सत्ता ने उसे भयभीत बनाया है वस्तुओ ने उसे तृष्णा दी है और वह अपने आप म ही विभाजित हो गया है। ए ब्रोकन मैन––एक टूटा हुआ मनुष्य। उसने अपने आत्ममार्ग के लिए मदिरो की रचना की है मसजिद और गिरजाघरो का निर्माण किया है। वह घटो पूजा-पाठ कर लेता है कीर्तन-भक्ति म रमा रहता है। उपवास-व्रत मे लग जाता है। भूत दया की बात करता है। पशु-पक्षियो के लिए भोजन जुटाता है। लाचार मनुष्यो की सेवा के लिए उसने सामाजिक सस्थान खोले है। वह सेवक है, भक्त है, पुजारी है, उपासक है, विनम्रता ओढे हुए है, छोटे-छोटे त्याग साधता है, दयालु है, करुणा पालता है और प्रेम सजोता है। पर यह सब उसका व्यक्तिगत संसार है—आत्मसतोष के महज उपकरण। वहाँ वह धर्मालु है, धर्मभीरु है।

लेकिन जब वह समाज जीवन मे प्रवेश करता है—और उसका अधिकाश समय समाज-जीवन मे ही व्यतीत होता है तब वह व्यापारी है राजनीतिक है सत्ताधीश है धनपति है शोषक है स्वार्थी है अहकारी है उसकी सारी बुद्धि सारी युक्ति अधिकाधिक पाने और स्वाथ-साधना मे लगती है । परिणाम यह है कि मनुष्यो मे एक हायरआरकी—–श्रणिबद्धता खडी हो गयी है। आप बहुत मज मजे मे दीन हीन कगाल निवसन और निराहार मनुष्य को नीचे की सीढी पर देख सकते हैं—बिलकुल दिगम्बर—त्याग के कारण नही लाचारी के कारण। और उच्चतम सीढी पर वैभव म लिपटे हुए समृद्ध मनष्य को देख सकते है जो अपने ही ऐश्वय और मद मे मदहोश है। मनुष्य की इस हायरआरकी ने मनुष्य को प्राय समाप्त ही कर दिया है।

गाधी ने अच्छी तरह पहचाना कि मनुष्य की ये दो समानान्तर रेखाए इसे मनुष्य रहने ही नही देगी। एसे मे उसकी निजी नम्रता और भक्ति त्याग और सयम भी उसे अहकारी ही बनायेगा। इसलिए उसने मनुष्य को इस खडित जीवन से बचाने की साधना की मनुष्य को मनुष्य रहना हे तो उसे साबित बनना होगा । जैन लोग तो खडित प्रतिमा को नमस्कार भी नही करते। प्रतिमा खडित नही चलेगी तो मनुष्य कैसे खडित चलेगा ? और मनुष्य साबित तभी बनेगा जब वह भीतर-बाहर का जीवन सहज बनाये। अहिसा की साधना म यह एक धीर गम्भीर कठिन और लम्बा आरोहण है। उतना सरल नही जितना व्यक्तिगत साधना का माग है। एकला चलो रे की भावना गुरुदेव टगोर को बल दे सकी नोआखाली मे गाधी अकला हो शान्ति यात्रा पर चल पडा था परन्तु समाज जीवन यदि पशु बल म घिरा हुआ है और उसी पर आधारित है तो मनष्य कितना ही मदिर मसजिद की आराधना म लगा रहे और ध्यान धारणा करता रहे अपन आपको साबित नही रख सकेगा। रख पाया ही नही—–इसीलिए तो वह टटकर दो समानान्तर रेखाओ पर दौड रहा है।

गाधी का विस्फोट

इस दृष्टि स दख तो महावीर के बाद लगभग ढाई हजार साल क अन्तर पर एक दूसरा विस्फोट गाधी ने अहिसा क क्षत्र म किया। उसन समाज जावन को बदलने का बीडा उठाया। **गुलामी से मुक्ति शोषण से मुक्ति भय से मुक्ति।** डरा हुआ मनुष्य कौन-सा धम साधना कर सकता है ? कायर की अहिसा अहिसा नही है। समार गाधीजी की इस साधना का प्रत्यक्षदर्शी है । निहत्थे लोगो ने महज अपने आत्मबल स साम्राज्य का झडा झकाया है उसकी तापो क मह माड है। बहके हुए इन्साना क सामन वह महा मा अपना सीना तान अडा रहा। लोगो के मन बदले। उसने आग उगलती ज्वालामुखी धरती पर प्रम के बीज बोये उगाये।

मनुष्य को सत्ताधीशो का और मनुष्य क समुदायो को जीतने मे उसने शरीर बल का आधार लिया ही नही। मरा कष्ट सहिष्णता आपके दिल को पिघलायेगी, मेरा त्याग आपके लालच को रोकेगा मरा सयम आपकी अफलातूनी पर बदिश लायेगा। आप बहक रहे है मैं मर मिटूगा। मैं आपकी हिसा का रास्ता रोकूँगा और आपको अहिसा की ओर मोडूगा—बदूक से नही स्वय मर मिट कर। बात खुद के अहिसक होने या अहिसा धर्म पर चलने से नही बनेगी वह तब बनेगी जबकि

मैं आपकी हिंसा को रोकने के लिए उत्सर्ग हो जाऊँ। **महावीर ने तप सिखाया अपने आत्म धर्म के लिए, गांधी ने मरना सिखाया समाज को अहिंसक बनाने के लिए। दोनों कठिन मार्ग हैं—जी-तोड़ श्रम-साधना के मार्ग हैं।** महावीर और गाधी—दोनो यह कर गये। मनुष्य को सिखा गये। गाधी ने 'सत्याग्रह' का एक नया उपकरण मनुष्य के हाथ मे थमाया। एटम बम जहाँ फेल होता है, वहाँ सत्याग्रह पर आधारित जीवन-बलिदान सफल होता है। मनुष्य की आस्था निजी जीवन मे 'हिंसा' पर से डिग चुकी थी, गाधी के कारण समाज-जीवन की 'हिंसा' पर से भी डिग चुकी है। समाज-जीवन मे प्रेम, सहयोग, समझाइश, मित्रता और सहिष्णुता का आधार मनुष्य ले रहा है। दिशा मुड गयी है। यो लगातार ढेर-के-ढेर शस्त्र बन-रहे है, सहारक शस्त्र बन रहे है, फौजे बढ रही हैं, भय छा रहा है तथा दुनिया विनाश की कगार पर खडी है, पर भीतर से मनुष्य का दिल सहयोग और सहि-ष्णुता की बात कर रहा है। शस्त्र अब उसकी लाचारी है, आधार नही।

जैसे व्यक्तिगत जीवन मे तृष्णा मनुष्य की लाचारी है आकाक्षा नही, क्रोध-वैर बेकाबू हैं, पर चाहना नही। लोभ और स्वार्थ उसके क्षणिक साथी है, स्थायी मित्र नही। उसी तरह सामूहिक जीवन मे हिसक औजार, सहारक शस्त्र, बल-प्रयोग एकतत्र राज्य-प्रणाली फासिज्म आतकवाद मनुष्य की पद्धति नही हैं वह उस वहशीपन है। इस बुनियादी बात को गले उतारने मे गाधी कामयाब रहा है।

महावीर ने मनुष्य क भीतर अहिंसा का बीज बोया तो गाधी ने उसकी शीतल छाया समाज-जीवन पर फैलायी। यह सभव ही नही है कि मनष्य अहिंसा-धर्म की जय-जय बोले और रहन-सहन, खान-पान का शोधन करता रहे और समझता रहे कि वह अहिंसा-धर्मी हो गया। अपने भीतर की जीवन-तर्ज उसे समाज-जीवन मे उतारनी होगी तभी अहिसा की साधना मे वह सफल हो सकेगा। यो हम देखें तो पायेगे कि महावीर और गाधी एक ही सिक्के की दो बाजुएँ हैं। महावीर ने आत्म-बोध दिया और गाधी ने समाज-बाध। बात बनेगी ही नही जब तक आत्म-बोध और समाज-बोध एक ही दिशा के राही नही होगे। महावीर के अनुयायियो पर एक बडी जिम्मेवारी गाधी ने डाली है। महावीर के अनुयायी अच्छे मनुष्य है—जीव-दया पालते है करुणा और प्रेम के उपासक है सयमी हैं, व्रती है, त्याग की साधना करते है, धर्मालु है—इतना करते हुए भी खडित मनुष्य है।

अपनी व्यक्तिगत परिधि से बाहर समाज-जीवन मे आते ही वे टूट जाते हैं। वहाँ उनकी सारी जीव-दया समाप्त है, सारा सयम बह जाता है, त्याग का स्थान सग्रह ले लेता है, स्वार्थ-तृष्णा-सत्ता उन पर हावी हो जाती है और तब अहिंसा महज एक चिकत्ती—'लेबल'—रह जाती है। अहिसा तो एक साबित मनुष्य के जीवन की तर्ज है—उसके भीतर के, बाहर के जीवन की। महावीर और गाधी को जोड दे तो यह बाहर-भीतर की विरोधी तर्जें समाप्त होगी और मनुष्य अहिंसा का सच्चा पथिक बन सकेगा। □□

अपरिग्रह के प्रचेता भगवान महावीर

अन्त मानस का परिवतन साध्य-साधन की एकरूपता एव अहिसा तथा प्रम का माग आज तक सामूहिक क्रान्ति के लिए अपनाया ही नही गया अन्यथा इतिहास का एक नया अध्याय ही खुल जाता।

☐ मुनि रूपचन्द

अपरिग्रहके दो पक्ष है आत्मगत और समाजगत। आत्मगत पक्ष का सम्बन्ध अध्यात्म की साधना मे है। अध्यात्म-साधक का मन जितना बाध्य वस्तुआ के प्रति ममत्व से मुक्त होगा उतना ही अन्तमुख होकर साधना को शक्ति-सयुक्त करेगा। इस आधार भूमि पर अपरिग्रह वस्तुओ का नही उनके प्रति ममत्व का विमजन है। वस्तुओ का अभाव हो या अतिभाव मन निर्लिप्त हो यह अध्यात्म साधक क लिए अनिवाय शत है। इमी भमिका पर महावीर अपरिग्रह को प्रति पादित करत है।

लेकिन ममत्व का अभाव अतिभाव और अभाव वस्तु जगत की दोना स्थितियो का जो समाज के लिए घातक है निवारण करता है स्वामित्व का सवथा लोप कर ममत्व पर आधारित सामाजिक अथतत्र का पुर्ननिर्माण करता है और अगर वह एसा नही करता तो यह मानना चाहिय कि मन के धरातल पर ममत्व शष है--आत्मगत भूमिका पर अपरिग्रह नही सधा ह।

महावीर का महाभिनिष्क्रमण महापरिग्रह ग्रस्त मामती मल्यो म जीने वाली हिमक व शोषक समाज व्यवस्था के ऊपर एक करारी चोट था विलास और अप व्यय शोषण और उत्पीड़न विषमता और अहता वगभद और जातिभद के जलावत म फँसे समग्र सामाजिक तत्र को झकझोरने वाला एक कदम था। जिसकी जीवन्त प्ररणा लकर भारतीय समाज अगर अपन को अपरिग्रह और अहिसा की पीठिका पर पुनर्गठित करता तो मानवता के इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ अनायास ही लिखा जा चकता लकिन पता नही इस 'लेकिन' का अन्त हम कभी कर पायगे या निकट भविष्य मे यही हमारा अन्त कर डालेगा।

महावीर ने साधना के दो मार्ग सामने रखे—एक महाव्रत, जो सम्पूर्ण व अनागार हैं अर्थात् जिसमे कोई विकल्प या छूट है ही नही । आत्मगत भूमिका पर यह पूर्ण निर्ममत्व है तथा लोकजीवन की भूमिका पर स्वामित्व का सम्पूर्ण विसर्जन, सर्वस्व का अनाबाध परित्याग । साधु का जीवन इस भूमिका पर नित्य सस्थित है ।

लेकिन उनके लिए जो अभी इस भूमिका से बहुत दूर हैं, महावीर ने साधना का एक ऐसा स्तर भी सामने रखा जो सागार है— जिसमे छूट है, विकल्प हैं और जिसको सामाजिक जीवन मे प्रतिष्ठित किया जा सकता है। महावीर की कल्पना का 'श्रमणोपासक' या 'श्रावक' पूर्णत अपरिग्रही नही हो सकता, लेकिन अणुव्रत के स्तर पर परिग्रह का निरन्तर नियमन करते हुए वह आत्म-साधना की ओर अपने जीवन का क्षेत्र-विस्तार करता जाता है । श्रावक के तीन मनोरथो में सबसे पहला यह है कि वह अल्प और बहु परिग्रह का विसर्जन करते हुए पूर्ण अपरिग्रह की भूमिका पर आरूढ हो जाए जो साधना का प्रवेश-द्वार है।

अपरिग्रह अणुव्रत के अन्तर्गत आत्मगत और वस्तुगत दोनो ही भूमिकाओ पर परिग्रह का सीमाधिकारण तथा विसर्जन है। दोनो भूमिकाएँ परस्पर अविनाभाव एकत्व मे आबद्ध हैं ।

अपरिग्रह की अणुव्रत-स्तरीय साधना के दो पक्ष हैं—आय की साधन-शुद्धि तथा उपलब्ध आय का सीमाधिकरण एव विसर्जन । प्रथम के अन्तर्गत शोषण, अप्रामाणितकता आदि गलत साधनो से उपार्जन का निषेध है जो उद्योग-व्यापार की नैतिक कसौटी निर्धारित कर देते हैं । देश एव दिशा-परिमाण-व्रत के अन्तर्गत क्षेत्रीय स्वावलम्बन लघु एव कुटीर उद्योगो का विकास तथा बहुत लोगो का कार्य-नियोजन निष्पन्न होता है जो भारत-जैसे देश के लिए सहज ही बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है । इसके अलावा अनेक उद्योग ऐसे है जिनका सर्वथा त्याग आवश्यक है—जैसे वे कार्य जिनमे बहुपरिमाण मे जीवो का शोषण पीडन एव हनन होता है तथा मानव का शोषण तथा वैषम्य बेकारी तथा भुखमरी निष्पन्न होते है ? आज के सदर्भ मे बड़े कल-कारखाने इनके अन्तर्गत आते हैं, और इसमे कोई सदेह नही कि वे देश मे वर्ग-भेद, विषमता, शोषण एव सघर्ष के निमित्त बने हैं । आज राष्ट्रीय स्तर पर नेतागण लघु व कुटीर उद्योगो के विस्तार तथा क्षेत्रीय कार्य-नियोजन की महत्ता स्वीकार कर रहे है।

प्राप्त आय का उपयोग भी अपरिग्रह अणुव्रत के अन्तर्गत सीमित हो जाता है, उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत के अन्तर्गत आय का अत्यल्प भाग आवश्यक उपयोग मे नियोजित होता है, शेष विसर्जित हो जाता है ।

श्रावक-प्रतिक्रमण के व्रतो एव अतिचारो के सदर्भ मे अपरिग्रह का जो विवेचन उपलब्ध है वह एक जैन गृहस्थ के लिए अनिवार्य है। अगर वास्तव मे उसे अगीकार किया जाता एक पूरे धार्मिक समाज द्वारा, तो भारतीय सामाजिक-आर्थिक जीवन मे अध्यात्म की तेजस्विता का प्रखर प्रकाशन होता, एक अभूतपूर्व

धर्म-क्रान्ति पूरे राष्ट्र का कायापलट कर देती, लेकिन—इस 'लेकिन' के हज़ारो उत्तर है—लेकिन उन सबको मिलाकर एक भी सही उत्तर बन नही पाता क्योकि उसकी बुनियाद ही आत्म-प्रवचना और लोक-प्रवंचना है।

सामाजिक स्तर पर समता की स्थापना तभी हो सकती है जब लोकमानस में उसका अवतरण हो और लोकमानस में यह तभी हो सकता है जबकि व्यक्ति-चेतना उसमे सपूर्णत अनुप्राणित हो जाए। आज एक मानसिक क्रान्ति की अपेक्षा है, उसके अभाव हजारो मे रक्त-क्रान्तियाँ होने पर भी शोषण तथा विषमता को समाप्त नही किया जा सकता। फ्रास की राज्यक्रान्ति स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के लक्ष्य को लेकर हुई थी लेकिन उसकी अन्तिम परिणति नेपोलियन के साम्राज्यवादी एकतन्त्र मे हुई जिसे हटाकर राजसत्ता पुन स्थापित हो गयी। इंग्लैड की पत्रिका 'टाइम एण्ड टाइड' के अनुसार साम्यवादी देशो मे अब तक दस करोड़ मानवो का रक्त बहाया जा चुका है, लेकिन समानता के नाम पर बुनियादी मानवीय स्वतन्त्रताओ का हनन भी हुआ, व्यक्ति के सारे अधिकार समाप्त कर दिये गये तथा एक नये वर्ग ने, जिसके हाथ मे राजनीतिक और आर्थिक दोनो सत्ताएँ थी, कोटि-कोटि जनो को दासता की जजीरो मे जकड़ कर पूँजीवादी व्यवस्था से भी अधिक भयानक शोषण और उत्पीडन का शिकार बनाकर रख दिया। मार्क्स ने जिस साम्यमूलक समाज का आदर्श रखा था उसमे राज्य, सरकार, न्यायालय, कानून आदि की आवश्यकता ही नही हो सकती, व्यक्ति को अबाध स्वतन्त्रता तथा समाज को वर्गहीन साम्य मिलता, लेकिन आज जो व्यवस्था कायम है वह व्यक्ति को कायर, कमजोर, दास-वृत्ति का शिकार, शोषित, पीड़ित एव प्रताड़ित बना रही है। बोरिस पास्तरनाक, अलेक्जेण्डर सोल्जिनित्सिन, मिलोवन जिलासू, कुजनेत्सोव के साथ जो हुआ इतिहास उसका साक्षी है।

कुछ साम्यवादी देशो को राष्ट्रीय स्तर पर जो यत्किचित् सफलता मिली है उसका एक हेतु वहाँ जनसख्या के दबाव का अभाव है। चीन जैसे देश मे, जहाँ जनसख्या का दबाव अत्यधिक है, साम्यवादी व्यवस्था दरिद्रता, अज्ञान एव शोषण को मिटाने मे कितनी सफल हो पायी है, इसे विश्व के इतिहासज्ञ, राजनीतिज्ञ तथा अर्थशास्त्री जानते है।

इसका मूल कारण यही था कि मार्क्स ने वैषम्य का आरोपण व्यवस्था पर किया जबकि उसका बीज व्यक्ति के अन्त करण मे है, हिसक साधनो को विहित माना जबकि हिंसा मे शोषण अन्तर्निहित है, वर्ग-घृणा व वर्ग-सघर्ष का रास्ता अपनाया जबकि विषमता का बीज इसी मे छुपा है। महावीर और बुद्ध, क्राइस्ट तथा कनफ्यूसियस का मार्ग दूसरा है। अन्त मानस का परिवर्तन, साध्य-साधन की एकरूपता एव अहिंसा तथा प्रेम का मार्ग आज तक सामूहिक क्रान्ति के लिए अपनाया ही नही गया, अन्यथा इतिहास का एक नया ही अध्याय खुल जाता। ☐ ☐

वर्तमान में भगवान महावीर के तत्त्व-चिन्तन की सार्थकता

महावीर ने जनतन्त्र से कई कदम आगे प्राणतन्त्र की विचारधारा को विकसित किया। जनतन्त्र मे मानव-हित को ध्यान मे रखकर अन्य प्राणियों के वध की छूट है, किन्तु महावीर के शासन मे मानव और मानवेतर प्राणियों मे कोई अन्तर नहीं।

—डा. नरेन्द्र भानावत

वर्द्धमान भगवान् महावीर विराट् व्यक्तित्व के धनी थे। वे क्रांति के रूप मे उत्पन्न हुए थे। उनमे शक्ति-शील-सौन्दर्य का अद्भुत प्रकाश था। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। यद्यपि वे राजकुमार थे, समस्त राजसी ऐश्वर्य उनके चरणो मे लौटते थे तथापि पीडित मानवता और दलित-शोषित जन-जीवन से उन्हें सहानुभूति थी। समाज मे व्याप्त अर्थ-जनित विषमता और मन मे उद्भूत काम-जन्य वासनाओ के दुर्दमनीय नाग को अहिंसा, सयम और तप के गारुडी सस्पर्श से कील कर वे समता, सद्भाव और स्नेह की धारा अजस्र रूप मे प्रवाहित करना चाहते थे। इस महान् उत्तरदायित्व को, जीवन के इस लोकसग्रही लक्ष्य को उन्होने पूर्ण निष्ठा और सजगता के साथ सम्पादित किया।

महावीर का जीवन-दर्शन और उनका तत्त्व-चिन्तन इतना अधिक वैज्ञानिक और सार्वकालिक लगता है कि वह आज की हमारी जटिल समस्याओं के समाधान के लिए भी पर्याप्त है। आज की प्रमुख समस्या है सामाजिक-आर्थिक विषमता को दूर करने की। इसके लिए मार्क्स ने वर्ग-सघर्ष को हल के रूप मे रखा। शोषक और शोषित के अनवरत परस्परिक सघर्ष को अनिवार्य माना और जीवन की अन्तस् भाव-चेतना को नकार कर केवल भौतिक जडता को ही सृष्टि का आधार माना। इसका जो दुष्परिणाम हुआ वह हमारे सामने है। हमे गति तो मिल गयी, पर दिशा नही, शक्ति तो मिल गयी, पर विवेक नही, सामाजिक वैषम्य तो सतही रूप से कम होता हुआ नजर आया, पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच अनात्मीयता का फासला बढ़ता गया। वैज्ञानिक अविष्कारो ने राष्ट्रो की दूरी तो कम की पर मानसिक

दूरी बढा दी । व्यक्ति के जीवन मे धार्मिकता-रहित नैतिकता और आचरण-रहित विचारशीलता पनपने लगी । वर्तमान युग का यही सबसे बडा अन्तर्विरोध और सास्कृतिक सकट है । भगवान् महावीर की विचारधारा को ठीक तरह से हृदयगम करने पर समाजवादी लक्ष्य की प्राप्ति भी सभव है और बढते हुए इस सास्कृतिक संकट से मुक्ति भी ।

महावीर ने अपने राजसी जीवन मे और उसके चारो ओर जो अनन्त वैभव की रंगीनी देखी, उससे यह अनुभव किया कि आवश्यकता से अधिक सग्रह करना पाप है, सामाजिक अपराध है, आत्मा को छलना है । आनन्द का रास्ता है अपनी इच्छाओ को कम करना, आवश्यकता से अधिक सग्रह न करना, क्योकि हमारे पास जो अनावश्यक संग्रह है, उसकी उपयोगिता कही ओर है । कही ऐसा प्राणिवर्ग है जो उस सामग्री से वचित है, जो उसके अभाव मे सतप्त है आकुल है, अत हमे उस अनावश्यक सामग्री को सगृहीत कर रखना उचित नही । यह अपने प्रति ही नही समाज के प्रति छलना है, धोखा है अपराध है, इस विचार को अपरिग्रह-दर्शन कहा गया, जिसका मूल मन्तव्य है--किसी के प्रति ममत्व-भाव न रखना । वस्तु के प्रति भी नही व्यक्ति के प्रति भी नही स्वय अपने प्रति भी नही । वस्तु के प्रति ममता न होने पर हम अनावश्यक सामग्री का तो सचय करेंगे ही नही, आवश्यक सामग्री को भी दूसरो के लिए विसर्जित करेंगे । आज के सकटकाल मे जो सग्रह-वृत्ति (होर्डिग हेबिट्स) और तज्जनित व्यावसायिक लाभ-वृत्ति पनपी है, उससे मुक्त हम तब तक नही हो सकते जब तक कि अपरिग्रह-दर्शन के इस पहल को हम आत्मसात न कर ले ।

व्यक्ति के प्रति भी ममता न हो इसका दार्शनिक पहलू इतना ही है कि व्यक्ति अपने स्वजनो तक ही न साचे, परिवार के सदस्यो के हितो की ही रक्षा न करे वरन् उसका दृष्टिकोण समस्त मानवता के हित की ओर अग्रसर हो । आज प्रशासन और अन्य क्षत्रा म जो अनैतिकता व्यवहृत है उसके मल मे 'अपना के प्रति ममता का भाव ही विशेष रूप से प्रेरक कारण है । इसका अर्थ यह नही कि व्यक्ति पारिवारिक दायित्व से मुक्त हो जाए । इसका ध्वनित अर्थ केवल इतना ही है कि व्यक्ति 'स्व क दायरे से निकलकर 'पर तक पहुँचे । स्वार्थ की सकीर्ण सीमा का लाँघ कर पराथ क विस्तृत क्षेत्र मे आये । सन्तो के जीवन की यही साधना है । महापुरुष इसी जीवन-पद्धति पर आगे बढते है । क्या महावीर क्या बुद्ध सभी इस व्यामोह से परे हटकर आत्मजयी बने । जो जिस अनुपात मे इस अनासक्त भाव को आत्मसात कर सकता है वह उसी अनुपात मे लोक-सम्मान का अधिकारी होता है । आज क तथाकथित नेताओ के व्यक्तित्व का विश्लेषण इस कसौटी पर किया जा सकता है । नेताओ के सम्बन्ध मे आज जो दृष्टि बदली

है और उस शब्द के अर्थ का जो अपकर्ष हुआ है उसके पीछे यही लोक-दृष्टि सक्रिय है।

'अपने प्रति भी ममता न हो'—यह अपरिग्रह-दर्शन का चरम लक्ष्य है। श्रमण-संस्कृति मे इसीलिए शारीरिक कष्ट-सहन को एक ओर अधिक महत्त्व दिया है तो दूसरी ओर इस पार्थिव देह-विसर्जन (सल्लेखना) का विधान किया गया है। वैदिक संस्कृति मे जो समाधि-अवस्था, या सतमत मे जो सहजावस्था है, वह इसी कोटि की है। इस अवस्था मे व्यक्ति 'स्व' से आगे बढकर इतना अधिक सूक्ष्म हो जाता है कि वह कुछ भी नही रह जाता। योग-साधना की यही चरम परिणति है।

संक्षेप मे महावीर की इस विचारधारा का अर्थ है कि हम अपने जीवन को इतना सयमित और तपोमय बनायें कि दूसरो का लेशमात्र भी शोषण न हो, साथ ही स्वय मे हम इतनी शक्ति, पुरुषार्थ और क्षमता भी अर्जित कर लें कि दूसरा हमारा शोषण न कर सके।

प्रश्न है ऐसे जीवन को कैसे जीया जाए? जीवन मे शील और शक्ति का यह सगम कैसे हो? इसके लिए महावीर ने 'जीवन-व्रत-साधना' का प्रारूप प्रस्तुत किया। साधना-जीवन को दो वर्गों मे बाँटते हुए उन्होने बारह व्रत बतलाये। प्रथम वर्ग, जो पूर्णतया इन व्रतो की साधना करता है, वह श्रमण है, मुनि है, सत है, और दूसरा वर्ग, जो अंशत इन व्रतो को अपनाता है, वह श्रावक है, गृहस्थ है, ससारी है।

इन बारह व्रतो की तीन श्रेणियाँ है पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। अणुव्रतो मे श्रावक स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का त्याग करता है। व्यक्ति तथा समाज के जीवन-यापन के लिए वह आवश्यक सूक्ष्म हिंसा का त्याग नही करता। जबकि श्रमण इसका भी त्याग करता है, पर उसे भी यथाशक्ति सीमित करने का प्रयत्न करता है। इन व्रतों मे समाजवादी समाज-रचना के सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान हैं।

प्रथम अणुव्रत में निरपराध प्राणी को मारना निषिद्ध है किन्तु अपराधी को दण्ड देने की छूट है। दूसरे अणुव्रत मे धन, सम्पत्ति, परिवार आदि के विषय मे दूसरे को धोखा देने के लिए असत्य बोलना निषिद्ध है। तीसरे व्रत मे व्यवहार-शुद्धि पर बल दिया गया है। व्यापार करते समय अच्छी वस्तु दिखाकर घटिया दे देना, दूध में पानी आदि मिला देना, झूठा नाप, तोल तथा राज-व्यवस्था के विरुद्ध आचरण करना निषिद्ध है। इस व्रत मे चोरी करना तो वर्जित है ही किन्तु चोर को किसी प्रकार की सहायता देना या चुरायी हुई वस्तु को खरीदना भी

वर्जित है। चौथा व्रत स्वदार-सन्तोष है जो एक और काम-भावना पर नियमन है तो दूसरी ओर पारिवारिक सगठन का अनिवार्य तत्त्व है। पाँचवे अणुव्रत मे श्रावक स्वेच्छापूर्वक धन-सम्पत्ति, नौकर-चाकर आदि की मर्यादा करता है।

तीन गुणव्रतो मे प्रवृत्ति के क्षेत्र को सीमित करने पर बल दिया गया है। शोषण की हिसात्मक प्रवृत्तियो के क्षेत्र को मर्यादित एव उत्तरोत्तर सकुचित करते जाना ही इन गुणव्रतो का उद्देश्य हे। छठा व्रत इसी का विधान करता है। सातवें व्रत मे योग्य वस्तुओ के उपभोग को सीमित करने का आदेश है। आठवें मे अनर्थदण्ड अर्थात निरर्थक प्रवृत्तियो को रोकने का विधान है।

चार शिक्षाव्रता म आत्मा के परिष्कार के लिए कुछ अनुष्ठाना का विधान है। नवाँ सामाजिक व्रत समता की आराधना पर दसवाँ सयम पर ग्यारहवाँ तपस्या पर और बारहवाँ सुपात्रदान पर बल देता है।

इन बारह व्रतो की साधना के अलावा श्रावक के लिए पन्द्रह कर्मादान भी वर्जित है अर्थात उस ऐसे व्यापार नही करन चाहिये जिनम हिसा की मात्रा अधिक हो या जो समाज विरोधी तत्त्वो का पोषण करते हो। उदाहरणत चोरा डाकुओ या वैश्याओ को नियक्त कर उन्ह अपना आय का साधन नही बनाना चाहिये।

इस व्रत विधान को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महावीर ने एक नवीन और आदश समाज रचना का माग प्रस्तुत किया जिसका आधार तो आध्यात्मिक जीवन जीना ह पर जा मार्क्स के समाजवादी लक्ष्य से भिन्न नही है।

ईश्वर क सम्बन्ध म जो जैन विचारधारा है वह भी आज की जनतत्रात्मक और आत्मस्वातन्त्र्य की विचारधारा क अनुकल है। महावीर के समय का समाज बहुदेवोपासना और व्यर्थ के कर्मकाण्ड स बधा हुआ था। उसके जीवन और भाग्य को नियन्त्रित करती थी कोई परोक्ष अलौकिक सत्ता। महावीर ने ईश्वर के इस सचालक-रूप का तीव्रता क साथ खण्डन कर इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति स्वय अपने भाग्य का निर्माता है। उसके जीवन को नियन्त्रित करते हैं उसके द्वारा किये गये कार्य। इसे उन्होने कर्म कह कर पुकारा। वह स्वय कृत कर्मों के द्वारा ही अच्छे या बुरे फल भोगता है। इस विचार ने नैराश्यपूर्ण असहाय जीवन म आशा आस्था और पुरुषार्थ का आलोक बिखरा और व्यक्ति स्वय अपने पैरो पर खडा हो कर कर्मण्य बना।

ईश्वर क सम्बन्ध म जो दूसरी मौलिक मान्यता जैन दर्शन की है वह भी कम महत्त्व की नही। ईश्वर एक नही अनेक हैं। प्रत्येक साधक अपनी आत्मा को जीत कर चरम साधना के द्वारा ईश्वरत्व की अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

मानव-जीवन की सर्वोच्च उत्थान-रेखा ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है । इस विचार-धारा ने समाज मे व्याप्त पाखण्ड अन्ध श्रद्धा और कर्मकाण्ड को दूर कर स्वस्थ्य जीवन-साधना या आत्म-साधना का मार्ग प्रशस्त किया । आज की शब्दावली मे कहा जा सकता है कि ईश्वर के एकाधिकार का समाप्त कर महावीर की विचार-धारा ने उसे जनतत्रीय पद्धति के अनुरूप विकेन्द्रित कर सबके लिए प्राप्य बना दिया—शत रही जीवन की सरलता शुद्धता और मन की दृढ़ता । जिस प्रकार राज-नैतिक अधिकारो की प्राप्ति आज प्रत्येक नागरिक के लिए सुगम है उसी प्रकार ये आध्यात्मिक अधिकार भी उस सहज प्राप्त हो गये हैं । शूद्रा का और पतित समझी जाने वाली नारी-जाति का समुद्धार करके भी महावीर ने समाज-देह को पुष्ट किया । आध्यात्मिक उत्थान की चरम सीमा को स्पश करने का माग भी उन्होने सबके लिए खोल दिया—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष चाहे वह शूद्र हो या चाहे और कोई ।

महावीर ने जनतन्त्र स भी बढकर प्राणतन्त्र की विचारधारा दी । जनतन्त्र म मानव-न्याय को ही महत्त्व दिया गया है । कल्याणकारी राज्य का विस्तार मानव क लिए है समस्त प्राणियो के लिए नही । मानव हित को ध्यान म रखकर जनतन्त्र म अन्य प्राणियो क वध की छट है पर महावीर के शासन मे मानव और अन्य प्राणा म कोई अन्तर नही । सबकी आत्मा समान है । इसीलिए महावीर की अहिंसा अधिक सूक्ष्म और विस्तृत है महावीर की करुणा अधिक तरल और व्यापक है । वह प्राणिमात्र के हित की सवाहिका है ।

हमे विश्वास है ज्यो ज्यो विज्ञान प्रगति करता जाएगा त्यो-त्यो महावीर की विचारधारा अधिकाधिक युगानुकूल बनती जाएगी । □□

प्राचीन भारत मे आज जैसी मुद्रण कला नहीं थी किन्तु तब लोगों का मन साहित्यमय था । उस समय के टिकाऊ ताड पत्र पर मोतियों को लजाने वाले अक्षरों मे जो ग्रथ मिलते हैं व आज के युग पर उपहास करते हैं और अपनी दुदशा पर आंसू बहाते हैं । घर घर मे ग्रथों के पुलिन्दे रख है किन्तु अपने पूवजों से सरक्षित उन ग्रथों को आज की नयी पीढी कहाँ देखती है ?

—मुनि विद्यानन्द

भगवान् महावीर का सन्देश और आधुनिक जीवन-सदर्भ

भगवान् महावीर ने जिस जीवन-दर्शन को प्रतिपादित किया है, वह आज के मानव की मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक दोनो तरह की समस्याओं का अहिंसात्मक समाधान है।

□ डा महावीरसरन जेन

भगवान् महावीर के युग मे भौतिकवादी एव सशयमूलक जीवन-दर्शन के मतानुयायी चिन्तको ने समस्त धार्मिक मान्यताओ, चिरसचित आस्था एव विश्वास के प्रति प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया था। पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल, अजित-केसकम्बलि, पकुध कच्चायन, सजय बेलट्ठिपुत्र आदि के विचारो को पढने पर आभास हो जाता है कि उस युग के जनमानस को सशय त्रास, अविश्वास, अनास्था, प्रश्नाकुलता आदि वृत्तियो ने किस सीमा तक जकड लिया था। ये चिन्तक जीवन मे नैतिक एव आचारमूलक सिद्धातो की अवहेलना करने एव उनका तिरस्कार करने पर बल दे रहे थे। मानवीय सौहार्द एव कर्मवाद के स्थान पर घोर भोगवादी, अक्रियावादी एव उच्छेदवादी वृत्तियाँ पनप रही थी।

इन्ही परिस्थितियो मे भगवान् महावीर ने प्राणि-मात्र के कल्याण के लिए, अपने ही प्रयत्नो द्वारा उच्चतम विकास कर सकने का आस्थापूर्ण मार्ग प्रशस्त कर, अनेकान्तवादी जीवन-दृष्टि पर आधारित, स्याद्वादवादी कथन-प्रणाली द्वारा बहुधर्मी वस्तु को प्रत्येक कोण, दृष्टि एव सभावना द्वारा उसके वास्तविक रूप मे जान पाने का मार्ग बतलाकर सामाजिक जीवन की शान्ति के लिए अपरिग्रहवाद एव अहिंसावाद का सदेश दिया।

आज भी भौतिक विज्ञान की चरम उन्नति मानवीय चेतना को जिस स्तर पर ले गयी है वहाँ उसने हमारी समस्त मान्यताओ के सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है। समाज मे परस्पर घृणा एव अविश्वास तथा व्यक्तिगत जीवन मे मानसिक तनाव एव अशान्ति के कारण विचित्र स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। आत्मग्लानि व्यक्तिवादी आत्मविद्रोह, अराजकता, आर्थिक अनिश्चयात्मकता, हडताल और घेराव तथा जीवन की लक्ष्यहीन समाप्ति की प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं।

आज के और पहले के व्यक्ति, समाज और चिन्तन में अन्तर भी है। सम्पूर्ण भौतिक साधनो एव जीवन की अनिवार्य वस्तुओ से वञ्चित होने पर भी पहले का व्यक्ति समाज से लडने की बात नही सोचता था, वह भाग्यवाद एव नियतिवाद के सहारे जीवन को काट देता था। अपने वर्तमान जीवन की सारी मुसीबतो का कारण विगत जीवन के कर्मों को मान लेता था एवं अथवा अपने भाग्य का विधाता 'परमात्मा' को मानकर उसके प्रति श्रद्धा एव अनन्यभाव के साथ 'अत्यनुराग' एव 'समर्पण' कर सतोष पा लेता था।

आज का व्यक्ति स्वतन्त्र होने के लिए अभिशापित है। आज व्यक्ति परावलम्बी होकर नही, स्वतन्त्र निर्णयो के क्रियान्वयनो के द्वारा विकास करना चाहता है। वह अन्धी आस्तिकता एव भाग्यवाद के सहारे जीना नही चाहता अपितु इसी जीवन मे साधनो का भोग करना चाहता है, वह समाज से अपनी सत्ता की स्वीकृति तथा अपने अस्तित्व के लिए साधनो की माँग करता है तथा इसके अभाव मे सम्पूर्ण व्यवस्था पर हथौडा चलाकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहता है।

मानवीय समस्याओ के समाधान के लिए जब हम उद्यत होते हैं तो हमारा ध्यान धर्म की ओर जाता है। इसका कारण यह है कि धर्म ही एक ऐसा तत्त्व है जो व्यक्ति की असीम कामनाओ को सीमित करता है तथा उसकी दृष्टि को व्यापक बनाता है। इस परिप्रेक्ष्य मे हमे यह जान लेना चाहिये कि रूढिगत धर्म के प्रति आज का मानव किंचित् भी विश्वास जुटाने मे असमर्थ है। शास्त्रो मे यह बात कही गयी है केवल इसी कारण आज का मानव एव विशेष रूप से बौद्धिक समुदाय एव युवक उसे मानने को तैयार नही है।

आज वही धर्म एव दर्शन हमारी समस्याओ का समाधान कर सकता है जो उन्मुक्त दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा दे सके। आज जीवनोपयोगी दर्शन की स्थापना आवश्यक है।

धर्म एवं दर्शन का स्वरूप ऐसा होना चाहिये जो प्राणि-मात्र को प्रभावित कर सके एव उसे अपने ही प्रयत्नों के बल पर विकास करने का मार्ग दिखा सके, दर्शन ऐसा नही होना चाहिये जो आदमी-आदमी के बीच दीवारे खडी करके चले। धर्म को पारलौकिक एव लौकिक दोनो स्तरो पर मानव की समस्याओं के समाधान के लिए तत्पर होना होगा। प्राचीन दर्शन ने केवल अध्यात्म साधना पर बल दिया था और लौकिक जगत् की अवहेलना की थी। आज के वैज्ञानिक युग मे बौद्धिकता का अतिरेक व्यक्ति के अन्तर्जगत् की व्यापक सीमाओ को सकीर्ण करने एव उसके बहिर्जगत् की सीमाओ को प्रसारित करने मे यत्नशील है। आज के धार्मिक एवं दार्शनिक मनीषियो को वह मार्ग खोजना है, जो मानव की बहिर्मुखता के साथ-साथ उसमें अंतर्मुखता का भी विकास कर सके। पारलौकिक चिन्तन व्यक्ति के आत्म-

सामाजिक समता एव एकता की दृष्टि से श्रमण-परम्परा का अप्रतिम महत्त्व है। इस पम्परा मे मानव को मानव के रूप मे देखा गया है वर्णों, वादो सप्रदायो आदि का लेबिल चिपकाकर मानव-मानव को बाटने वाले दर्शन के रूप मे नही। मानव महिमा का जितना जोरदार समथन जैन दशन मे हुआ है वह अनुपम है।

विकास म चाहे कितना ही सहायक हो किन्तु उससे सामाजिक सबधो की सम्बद्धता समरसता एव समस्याओ के समाधान मे अधिक सहायता नही मिलती। आज के भौतिकवादी युग म केवल वैराग्य से काम चलने वाला नही है आज हम मानव की भौतिकवादी दष्टि को नियमित करना होगा भौतिक स्वाथपरक इच्छाओ को सयमित करना होगा मन की कामनाओ मे त्याग का रग मिलाना होगा। आज मानव को एक ओर जहाँ इस प्रकार का दशन प्रभावित नही कर सकता कि केवल ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है वहाँ दूसरी ओर भौतिक तत्त्वो की ही सत्ता को सत्य मानने वाला दष्टिकोण भी जीवन के उन्नयन और विकास म सहायक नही हो सकता। आज भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय की आवश्यकता है। इसके लिए धम एव दशन की वतमान सामाजिक सदर्भो के अनुरूप एव भावी मानवीय चेतना के निर्णायक रूप मे व्याख्या करनी होगी। इस दष्टि से आध्यात्मिक साधना के ऋषियो एव मनियो की धार्मिक साधना एव गहस्थ सामाजिक व्यक्तियो की धार्मिक साधना के अलग अलग स्तरो को परिभाषित करना आवश्यक है।

धम एव दशन का स्वरूप एसा होना चाहिय जो वैज्ञानिक हो। वैज्ञानिको की प्रतिपत्तिओ को खोजने का मार्ग एव धार्मिक मनीषियो एव दाशनिक तत्त्व चिन्तको की खोज का माग अलग अलग हो सकता है किन्तु उनके सिद्धान्तो एव मूलभूत प्रत्ययो म विरोध नही होना चाहिये।

आज के मनुष्य न प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को आदश माना है। हमारा धम भी प्रजातन्त्रात्मक शासन पद्धति के अनरूप होना चाहिये।

प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था म प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त होत है। स्वतन्त्रता एव समानता इस जीवन-पद्धति के दो बहुत बड जीवन-मूल्य है। दशन क धरातल पर भी हमे व्यक्ति-मात्र की समता एव स्वतन्त्रता का इसके समानान्तर उदघोष करना होगा।

यगीन विचारधाराओ पर जब हम दष्टिपात करते है तो उनकी सीमाएँ स्पष्ट हो जाती है। साम्यवादी विचारधारा समाज पर इतना बल दे देती है कि मनुष्य की व्यक्तिगत मत्त्व बारे म वह अत्यन्त निमम तथा अकरुण हो उठती

है। इसके अतिरिक्त वर्ग-संघर्ष एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी चिन्तन के कारण यह समाज को बाँटती है, गतिशील पदार्थों में विरोधी शक्तियों के संघर्ष, या द्वन्द्व को जीवन की भौतिकतावादी व्यवस्था के मूल में मानने के कारण सतत संघर्षत्व की भूमिका प्रदान करती है, मानव-जाति को परस्पर अनुराग एवं एकत्व की आधार-भूमि प्रदान नही करती।

इसके विपरीत व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य पर बल देने वाली विचारधाराएँ समाज को मात्र व्यक्तियों का समूह मानती हैं और अपने अधिकारो के लिए समाज से सतत संघर्ष की प्रेरणा देती हैं तथा साधन-विहीन, असहाय, भूखे, पद-दलित लोगो के उद्धार के लिए इनके पास कोई विशेष सचेष्ट योजना नही है। फ्रायड व्यक्ति के चेतन, उपचेतन मन के स्तरो का विश्लेषण कर मानव की आदिम वृत्तियो के प्रकाशन मे समाज की वर्जनाओ को अवरोधक मानता है तथा व्यक्ति के मूल्यो को सुरक्षित रखने के नाम पर व्यक्ति को समाज से बाँधता नही, काटता है।

इस प्रकार युगीन विचारधाराओ से व्यक्ति और समाज के बीच, समाज की समस्त इकाइयो के बीच सामरस्य स्थापित नही हो पाता।

इसलिए आज ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जो सामाजिको मे परस्पर सामाजिक सौहार्द एव बन्धुत्व का वातावरण निर्मित कर सके। यदि यह न हो सका तो किसी भी प्रकार की व्यवस्था एव शासन-पद्धति से समाज मे शान्ति स्थापित नही हो पायेगी। □

इस दृष्टि से, हमे यह विचार करना है कि भगवान् महावीर ने ढाई हजार वर्ष पूर्व अनेकान्तवादी चिन्तन पर आधारित अपरिग्रह एव अहिंसावाद से सयुक्त जिस ज्योति को जगाया था उसका आलोक हमारे आज के अन्धकार को दूर कर सकता है या नही ?

आधुनिक वैज्ञानिक एवं बौद्धिक युग मे वही धर्म एव दर्शन सर्वव्यापक हो सकता है जो मानव-मात्र को स्वतन्त्रता एव समता की आधार-भूमि प्रदान कर सकेगा। इस दृष्टि से भारत मे विचार एव दर्शन के धरातल पर जितनी व्यापकता, सर्वांगीणता एव मानवीयता की भावना रही है, समाज के धरातल पर वह वैसी नही रही है।

दार्शनिक दृष्टि से यहाँ यह माना गया कि जगत् मे जो कुछ स्थावर-जंगम संसार है वह सब एक ही ईश्वर से व्याप्त है, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस प्रकार की मान्यताओ के बावजूद भी यहाँ अद्वैत दर्शन के समानान्तर समाज-दर्शन का विकास नही हो सका।

शांकर वेदान्त मे केवल ब्रह्म को सत्य माना गया तथा जगत् को स्वप्न एव मायारचित गन्धर्व नगर के समान पूर्णतया मिथ्या एवं असत्य घोषित किया गया। इस दर्शन के कारण आध्यात्मिक साधको के लिए जगत् की सत्ता ही असत्य एव मिथ्या हो गयी। परिणाम यह हुआ कि दार्शनिको का सारा ध्यान 'परब्रह्म'-प्राप्ति मे ही लगा रहा और इस प्रकार दर्शन के धरातल पर तो 'अद्वैतवाद' की स्थापना होती रही, किन्तु दूसरी ओर समाज के धरातल पर 'समाज के हितैषियो' ने उसे साग्रह वर्णों, जातियो, उपजातियो मे बॉट दिया। एक परब्रह्म द्वारा बनाये जाने पर भी 'जन्मना' ही आदमी और आदमी के बीच तरह-तरह की दीवारे खडी कर दी गयी।

जात-पॉत एव ऊँच-नीच की भेद-भावना के विकास मे मध्ययुगीन राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था एव धार्मिक आडम्बरो का बहुत योग रहा। इस युग मे राजागण सासारिक सुखो की प्राप्ति के लिए 'शरीर' को अमर बना रहे थे और देव-मन्दिर सुरति-क्रिया-रत स्त्री-पुरुषो के चित्रो से सज्जित हो रहे थे।

इस्लाम के आगमन के पश्चात् भक्ति का विकास हुआ। आरम्भ मे इसका स्वरूप सात्विक तथा लक्ष्य मनुष्य की वृत्तियो का उदात्तीकरण रहा, किन्तु मधुरा भाव एव परकीया प्रेमवाद मे परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सामन्तीकरण की वृत्तियाँ आ गयी। राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था एव भक्ति का विकास लगभग समान आयामो मे हुआ।

'भक्ति मे भक्त भगवान का अनुग्रह प्राप्त करना चाहता है तथा यह मानकर चलता है कि बिना उसके अनुग्रह के कल्याण नही हो सकता। राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था मे भी दरबारदारी 'राजा' का अनुग्रह प्राप्त करना चाहते है, उसकी कृपा पर ही राजाश्रय निर्भर करता है। इस प्रकार मध्ययुगीन धार्मिक आडम्बरो का प्रभाव राजदरबारो पर पडा तथा राजतन्त्रात्मक विलास का प्रभाव देव-मन्दिरो पर। राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था मे समाज मे व्यक्ति की स्वतन्त्रता एव समता की भावना नही होती, राजा की इच्छानुसार सम्पूर्ण व्यवस्था परिचालित होती है भक्ति-सिद्धान्त मे भी साधक साधना के ही बल पर मुक्ति का अधिकार प्राप्त नही कर पाता उसके लिए भगवत्कृपा होना जरूरी है।

इन्ही 'राजतन्त्रात्मक' एव धार्मिक व्यवस्थाओ के कारण सामाजिक समता की भावना निर्मूल होती गयी।

□□

आज स्थितियाँ बदल गयी हैं। प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति को समान सवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं। परिवर्तित युग मे समयानुकूल धर्म

एवं दर्शन के सदर्भ मे जब हम जैन-दर्शन एवं भगवान् महावीर की वाणी पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि जैन-दर्शन समाज के प्रत्येक मानव के लिए समान अधिकार जुटाता है। सामाजिक समता एव एकता की दृष्टि से श्रमण-परम्परा का अप्रतिम महत्त्व है। इस परम्परा मे मानव को मानव के रूप मे देखा गया है; वर्णों, वादों, सप्रदायों आदि की चिगली (लेबिल) चिपकाकर मानव-मानव को बाँटने वाले दर्शन के रूप मे नही। मानव-महिमा का जितना जोरदार समर्थन जैन-दर्शन मे हुआ है वह अनुपम है।

महावीर ने आत्मा की स्वतन्त्रता की प्रजातन्त्रात्मक उद्घोषणा की। उन्होने कहा कि समस्त आत्माएँ स्वतन्त्र हैं, प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। उसके गुण और पर्याय भी स्वतन्त्र हैं। विवक्षित किसी एक द्रव्य तथा उसके गुणो एव पर्यायो का अन्य द्रव्य या उसके गुणो और पर्यायो के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नही है।

इस दृष्टि से सब आत्माएँ स्वतन्त्र हैं, भिन्न-भिन्न हैं, पर वे एक-सी अवश्य है, इस कारण, उन्होंने कहा कि सब आत्माएँ समान हैं, पर एक नही।

स्वतन्त्रता एवं समानता दोनो की इस प्रकार की परम्परावलम्बित व्याख्या अन्य किसी दर्शन मे दुर्लभ है।

उपनिषदो मे जिस '**तत्त्वमसि**' सिद्धान्त का उल्लेख हुआ है उसी का जैन-दर्शन मे नवीन आविष्कार एव विकास है एव प्राणि-मात्र की पूर्ण स्वतन्त्रता, समता एव स्वावलम्बित स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। ससार मे अनन्त प्राणी है और उनमे से प्रत्येक मे जीवात्मा विद्यमान है। कर्मबन्ध के फलस्वरूप जीवात्माएँ जीवन की नाना दशाओ, नाना योनियो, नाना प्रकार के शरीरो एव अवस्थाओं मे परिलक्षित होती हैं, किन्तु सभी मे ज्ञानात्मक विकास के द्वारा उच्चतम विकास की समान शक्तियाँ निहित हैं।

आचाराग मे बड़े स्पष्ट शब्दो मे कहा गया है कि बन्धन मे मुक्त होना तुम्हारे ही हाथ मे है—

बन्धप्प मोक्खो तुज्झज्झत्थेव —आचाराग ५।२।१५०

जब सब प्राणी अपनी मुक्ति चाहते है तथा स्वय के प्रयत्नो से ही उस मार्ग तक पहुँच सकते है तथा कोई किसी के मार्ग मे बाधक नही तब फिर किसी मे सघर्ष का प्रश्न ही कहाँ उठता है। शारीरिक एव मानसिक विषमताओं का कारण कर्मों का भेद है। जीव शरीर से भिन्न एव चैतन्य का कारण है। जैन दर्शन मे जीव की सत्ता शाश्वत, चिरन्तन, स्वयभूत, अखण्ड, अभेद्य, विज्ञ, कर्त्ता एवं अविनाशी मानी गयी है। सूत्रकृताग में निर्भ्रान्त रूप में प्रतिपादित किया गया

है कि आत्मा अपने स्वय के उपार्जित कर्मों से ही बँधता है तथा कृतकर्मों को भोग बिना मुक्ति नही है—

सयमेव कडेहिं गाहइ नो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठय' —सूत्रकृताग १।२।१।४

जब सर्व कर्मों का क्षय होता है तो प्रत्येक जीव अनन्त ज्ञान अनन्त वीर्य अनन्त दर्शन तथा अनन्त शक्ति स स्वत सम्पन्न हो जाता है।

इसके अतिरिक्त जैन दर्शन म अहिसावाद पर आधारित क्षमा मैत्री स्वसयम एव पर प्राणियो को आत्म-तुल्य देखने की भावना पर बहुत बल दिया गया है। इस विचार के पालन स परस्पर सौहाद एव बन्धुत्व के वातावरण का सहज निर्माण सम्भव है। जैन दशन मे यह भी निरूपित किया गया है कि जो ज्ञानी आत्मा इस लोक म छोटे-बड सभी प्राणियो को आत्म-तुल्य देखते हैं षटद्रव्यात्मक इस महान लोक का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते है तथा अप्रमत्तभाव से सयम मे रहते हु व ही मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी है। इसी कारण आचाय समन्तभद्र ने भगवान महावीर क उपदेश को सर्वोदय-तीथ कहा है।

आधुनिक बौद्धिक एव तार्किक युग मे दशन एसा होना चाहिय जो आग्रह रहित दृष्टि से सत्यान्वषण की प्ररणा दे सके। इस दृष्टि से जैन दशन का अनेकान्तवाद व्यक्ति क अहकार को झकझोरता है उसका आत्यन्तिक दष्टि के सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगाता ह। अनेकान्तवाद यह स्थापना करता ह कि प्रत्येक पदाथ म विविध गुण एव धम होत है। सत्य का सम्पूर्ण साक्षात्कार सामान्य व्यक्ति द्वारा एकदम सम्भव नही हो पाता। अपनी सीमित दृष्टि स दखन पर हम वस्तु के एकागी गण धम का ज्ञान होता ह। विभिन्न कोणो स देखन पर एक ही वस्तु हमे भिन्न प्रकार की लग सकती है तथा एक स्थान स देखने पर भी विभिन्न दृष्टाओ की प्रतीतिया भिन्न हो सकती है। भारत मे जिस क्षण कोई व्यक्ति सूर्योदय देख रहा है ससार मे दूसर स्थान स उसी क्षण किसी व्यक्ति को सूर्यास्त के दशन होते है। व्यक्ति एक हा होता है—उसस विभिन्न व्यक्तियो के अलग-अलग प्रकार के सम्बन्ध होते है। एक ही वस्तु म परस्पर दो विरुद्ध धर्मो का अस्तित्व सम्भव है। इसम अनिश्चितता या मन स्थिति बनाने की बात नही ह वस्तु के सापेक्ष दृष्टि से विरोधा गणा क स्थान पान ना बात है। सावभौमिक दृष्टि म देखने पर जो तत्स्वरूप ह एक ह सत्य है नित्य है वही सीमित एव व्यावहारिक दृष्टि स देखन पर अतत अनेक असत्य एव अनित्य ह।

पदाथ को प्रत्यक कोण स देखने का प्रयास करना चाहिये। हम जो कह रहे हैं—केवल यही सत्य है—यह हमारा आग्रह है। हम जो कह रहे हैं—यह भी अपनी दृष्टि से ठीक हो सकता है। हम यह भी देखना चाहिये कि विचार को

व्यक्त करने का हमारे एवं दूसरे व्यक्तियो के पास जो साधन है उसकी कितनी सीमाएँ हैं। काल की दृष्टि से भाषा के प्रत्येक अवयव मे परिवर्तन होता रहता है। क्षेत्र की दृष्टि से भाषा के रूपो मे अन्तर होता है। हम जिन शब्दो एव वाक्यो से सप्रेषण करना चाहते है उसकी भी कितनी सीमाएँ हैं। "राधा गाने वाली है" इसका अर्थ दो श्रोता अलग-अलग लगा सकते है। प्रत्येक शब्द भी 'वस्तु' को नही किसी वस्तु के भाव को बतलाता है जो वक्ता एव श्रोता दोनो के सन्दर्भ मे बुद्धिस्थ मात्र होता है। "प्रत्येक व्यक्ति अपने घर जाता है" किन्तु प्रत्येक का 'घर' अलग होता है। ससार मे एक ही प्रकार की वस्तु के लिए कितने भिन्न शब्द है–इसकी निश्चित सख्या नही बतलायी जा सकती। एक ही भाषा मे एक ही शब्द भिन्न अर्थों और अर्थ-छायाओ मे प्रयुक्त होता है, इसी कारण अभिप्रेत अर्थ की प्रतीति न करा पाने पर वक्ता को श्रोता से कहना पडता है कि मेरा यह अभिप्राय नही था अपितु मेरे कहने का मतलब यह था–दूसरे के अभिप्राय को न समझ सकने के कारण इस विश्व मे कितने सघर्ष होते हैं? स्याद्वाद वस्तु का समग्र रूप मे देख सकने, वस्तु के विरोधी गुणो की प्रतीतियो द्वारा उसके अन्तिम सत्य तक पहुच सकने की क्षमता एव पद्धति प्रदान करता है। जब कोई व्यक्ति खोज के मार्ग मे किसी वस्तु के सम्बन्ध मे अपने 'सन्धान' को अन्तिम मानकर बैठ जाना चाहता है तब स्याद्वाद सम्भावनाओ एव शक्यताओ का मार्ग प्रशस्त कर अनुसन्धान की प्रेरणा देता है। स्याद्वाद केवल सम्भावनाओ को ही व्यक्त करके अपनी सीमा नही मान लेता प्रत्युत समस्त सम्भावित स्थितियो की खोज करने के अनन्तर परम एव निरपेक्ष सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास करता है।

स्याद्वादी दर्शन मे स्यात्' निपात 'शायद', 'सम्भवत ', 'कदाचित्' का अर्थवाहक न होकर समस्त सम्भावित सापेक्ष्य गुणो एव धर्मो का बोध कराकर ध्रुव एव निश्चय तक पहुँच पाने का वाहक है, 'व्यवहार' मे वस्तु मे अन्तर्विरोधी गुणो की प्रतीति कर लेने के उपरान्त 'निश्चय द्वारा उसको उसके समग्र एव अखण्ड रूप मे देखने का दर्शन है। हाथी को उसके भिन्न-भिन्न खण्डो से देखने पर जो विरोधी प्रतीतियाँ होती है उनके अनन्तर उसको उसके समग्र रूप मे देखना है। इस प्रकार यह सदेह उत्पन्न करने वाला दर्शन न होकर सन्देहो का परीक्षण करने के उपरान्त उनका परिहार कर सकने वाला दर्शन है। यह दर्शन तो शोध की वैज्ञानिक पद्धति है। "विवेच्य" को उसके प्रत्येक स्तरानुरूप विश्लेषित कर विवेचित करते हुए वर्गबद्ध करने के अनन्तर सश्लिष्ट सत्य तक पहुँचने की विधि है। विज्ञान केवल जड का अध्ययन करता है। स्याद्वाद ने प्रत्येक सत्य की खोज की पद्धति प्रदान की है। इस प्रकार यदि हम प्रजातन्त्रात्मक युग मे वैज्ञानिक ढग से सत्य का साक्षात्कार करना चाहते है तो अनेकान्त से दृष्टि लेकर स्याद्वादी प्रणाली द्वारा ही वह कर सकते है।

महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन का सापेक्षवाद एवं जैन-दर्शन का अनेकान्तवाद वैचारिक धरातल काफी निकट है। आइन्स्टीन मानता है कि विविध सापेक्ष्य स्थितियो

मे एक ही वस्तु मे विविध विरोधी गुण पाये जाते हैं। 'स्यात्' अर्थ की दृष्टि से 'सापेक्ष्य' के सबसे निकट है।

आइन्स्टीन के मतानुसार सत्य दो प्रकार के होते है—(१) सापेक्ष्य सत्य, और (२) नित्य सत्य।

आइन्स्टीन के मतानुसार हम केवल सापेक्ष सत्य को जानते हैं नित्य सत्य का ज्ञान तो सर्व विश्वदृष्टा को ही हो सकता है।

जैन-दर्शन एकत्व एव नानात्व दोनो को सत्य मानता है। अस्तित्व की दृष्टि से सब द्रव्य एक हैं, अत एकत्व भी सत्य है उपयोगिता की दृष्टि से द्रव्य अनेक हैं अत नानात्व भी सत्य है।

वस्तु के गुण-धर्म चाहे नय-विषयक हो चाहे प्रमाण-विषयक वे सापेक्ष होते हैं। वस्तु को अखण्ड भाव से जानना प्रमाण-ज्ञान है तथा वस्तु के एक अश को मुख्य करके जानना नय-ज्ञान है।

विज्ञान की जो अध्ययन-प्रविधि है जैन-दर्शन मे ज्ञानी की वही स्थिति है। जो नय-ज्ञान का आश्रय लेता है वह ज्ञानी है। अनेकान्तात्मक वस्तु के एक-एक अश को ग्रहण करके ज्ञानी ज्ञान प्राप्त करता चलता है। एकान्त के आग्रह से मुक्त होने के लिए यही पद्धति ठीक है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने जिस जीवन दर्शन को प्रतिपादित किया है वह आज के मानव की मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक दोनो तरह की समस्याओ का अहिसात्मक समाधान है। यह दर्शन आज की प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था एव वैज्ञानिक सापेक्षवादी चिन्तन के भी अनुरूप है। इस सम्बन्ध मे सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का यह वाक्य कि जैन-दर्शन सर्व-साधारण को पुरोहित के समान धार्मिक अधिकार प्रदान करता है अत्यन्त सगत एव सार्थक है। अहिसा परमो धर्म को चिन्तन-केन्द्रक मानने पर ही ससार से युद्ध एव हिंसा का वातावरण समाप्त हो सकता है। आदमी के भीतर की अशान्ति उद्वेग एव मानसिक तनावो को यदि दूर करना है तथा अन्तत मानव के अस्तित्व को बनाये रखना है तो भगवान् महावीर की वाणी को युगीन समस्याओ एव परिस्थितियो के सदर्भ मे व्याख्यायित करना होगा। यह ऐसी वाणी है जो मानव-मात्र के लिए समान मानवीय मूल्यो की स्थापना करती है सापेक्षवादी सामाजिक सरचनात्मक व्यवस्था का चिन्तन प्रस्तुत करती है पूर्वाग्रह-रहित उदार दृष्टि से एक-दूसरे को समझने और स्वय को तलाशने-जानने के लिए अनेकान्तवादी जीवन-दृष्टि प्रदान करती है, समाज के प्रत्येक सदस्य को समान अधिकार एव स्व-प्रयत्न मे विकास करने के साधन जुटाती है। □□

जब मुझे
अकर्त्ताभाव की अनुभूति हुई

(६ जनवरी १९७३ की रात कोटा के 'विश्वधर्म न्यास' ने वीरेन्द्रकुमार जैन के प्रसिद्ध उपन्यास 'मुक्तिदूत' को २५०१ रु. के पुरस्कार से सम्मानित किया था। उस अवसर पर कृतज्ञता-ज्ञापन करते हुए वीरेन्द्र ने अपनी भावाविष्ट वाणी से सात हजार श्रोताओं को एक चमत्कारिक मंत्र-मोहिनी में स्तंभित कर दिया था। देर-अबेर ही सही, वीरेन्द्र भाई की डायरी में लगभग शब्दशः आलेखित उस भाषण को आज यहाँ प्रस्तुत करते सचमुच हमें प्रसन्नता होती है। एक वक्ता और हजारों श्रोताओं की तदाकारिता का एक अमर क्षण इन पंक्तियों में संगोपित है।—सं.)

□ वीरेन्द्रकुमार जैन

आपने मुझे याद किया, मैं कृतज्ञ हूँ। तीन जनवरी को अचानक तार-चिट्ठी पाकर लगा कि एकदम ही नीरव, निरीह हो गया हूँ। अपने से अलग अपने को देखा · हाँ, आज से सत्ताईस वर्ष पहले, एक अट्ठाईस बरस के लडके ने 'मुक्तिदूत' लिखा था। आज इतने वर्ष बाद उस पुस्तक की यह स्वीकृति देखकर प्रतीति हुई कि उसका लेखक मै नही, वह कोई और ही था। एक अद्भुत अकर्त्ताभाव से मैं अभिभूत हो उठा हूँ।' 'कौन होता हूँ मैं, इसको लिखने वाला? आज से ढाई हजार वर्ष पहले भगवान महावीर की कैवल्य-ज्योति मे ही 'मुक्तिदूत' लिखा जा चुका था। मेरी क़लम से केवल उस ज्योति-लेखा का अनावरण हुआ है। हाल ही मे कही पढ़ा था तीर्थंकर जन्मना और स्वभाव से ही निरीह होते हैं। वे स्वेच्छा से कुछ नही करते : उनके द्वारा अनायास ही नाना प्रवृत्ति-पराक्रम उनके युग-तीर्थ में होते है। वे निसर्ग से ही कर्तृत्व के अहकार से ऊपर होते हैं। सहज आत्म-स्वरूप रह कर ही वे महाविष्णु, लोक मे युग-तीर्थ का प्रवर्त्तन करते हैं।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि हमारे युग के लोकनायक तीर्थंकर महावीर के आगामी महानिर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य में ही 'मुक्तिदूत' को यह पुरस्कार प्रदान किया

गया है। यह उन भगवान की ही जिनेश्वरी सरस्वती का सम्मान है हमारा नही ! उन महाप्रतापी ज्योतिधर के पुण्य-परमाणु और उनकी कैवल्य प्रभा के प्रकाश-परमाणु इस समय समस्त भूमण्डल के लोकाकाश मे उभर आये है। उन्ही मे से एकाग्र उन प्रभु की सारस्वत कृपा के वरदान-स्वरूप यह कृति भी फिर से उभर आयी है। हमारा इसमे कोई कर्तृत्व नही। चिदभाव कम चिदेश कर्त्ता चेतना किरिया जहाँ के अनसार हम तो केवल अपने ही चिद-स्वरूप के कर्त्ता है। उस परम कर्तृत्व की स्फुरणा मे से जो भी कोई कृतित्व यहा वाणी म प्रकट होता है उसके हम निमित्त मात्र होते है। वासुदेव कृष्ण ने ठीक ही कहा था निमित्त मात्र भव सव्यसाचिन !

आप सब का अतिशय कृतज्ञ हूँ कि इस सम्मान के निमित्त से आपने मुझे अपना निरीह निज स्वरूप महसूस करने का अवसर दिया। लगता ह मिट गया हूँ आपा खो गया है केवल शुद्ध आप्तभाव के चरणा मे नीरव नम्रीभत समर्पित हो कर रहा गया हू।

गत अक्टवर मे मेरी पत्नी अनिता रानी जैन अपनी एक मानता पूरी करन को श्रीमहावीरजी जाना चाहती थी। मेरा बटा चि डाक्टर ज्योतीन्द्र जैन हाल ही म वियेना विश्वविद्यालय से डाक्ट्रट लकर लौटा था। वह निर्वाणोत्सव क उपलक्ष्य म स्विटजरलेण्ड म होने वाली जैन कला-सस्कृति प्रदशनी के एक सयोजक क नाते भारत मे जैन कला-सस्कृति क अध्ययनाथ एक फलोशिप लकर यूराप स आया था। वह प्रमुख जैन तीर्थो और सस्कार क्षत्रो म घम कर वतमान जैन साध-श्रावक पूजा उपासना प्रतिष्ठा आदि की चर्या और पद्धति का फोटापूवक अध्ययन करना चाहता था। इस निमित्त उसे भी श्रीमहावीरजी जाना था। मेरे मन म भगवान् पर महा काव्य लिखने का सकल्प उदित हो रहा था। सो मैं भी उनके साथ हो लिया।

मेरे अतरग म स्पष्ट प्रतीति-सी हो रही थी कि श्रीगुरु की जिस यौगिक कृपा से मैं इस समय आविष्ट हू उसके तल श्री महावीर प्रभु के अनुग्रह का कोई दृष्टान्त वहाँ मुझ अवश्य प्राप्त होगा। उस कृपा का प्रथम चरण यह कि श्री महावीरजी मे भगवद्पाद गुरुदेव श्री विद्यानन्द स्वामी का दशन मिलन पहली बार उपलब्ध हुआ। परिचय पाते ही व बाले बीस बरस से मै तुमको खोज रहा हूँ। तुम्हारा मुक्तिदूत मै कई बरस तक सिरहाने लेकर सोता था। उसे बारम्बार पढ कर मैन हिन्दी का अभ्यास किया। कई वाक्य उसके मुझ याद हो गये थे। मुझे तुम्हारी कलम चाहिये—निर्वाणात्सव के उपलक्ष्य मे भगवान के युगतीथ का और उनकी जीवन लीला का सकीतन-गान करने के लिए। मैं कृतार्थता मे स्तब्ध हो गया। एक भव्य दिगम्बर योगी, महावीर का आत्मज मुझे खोज रहा था ! मेरा कवित्व धन्य हो गया कवि के रूप मे मेरा जन्म लेना सार्थक हो गया। योगी

इस युग के चरित्र-नायक, महाविष्णु महावीर स्वयम् ही क्या कम समर्थ है ? उनके चरित्र-गान में कवि लीन हो गया, तो चरितार्थ आकाश में से उतरेगा। "मेरा निर्णय बाह्य सम्पत्तिमान न बदल सके : किन्तु स्वयम् परम लोकरंजन भगवान् ने अपने ही एक प्रतिरूप दिगम्बर योगी के माध्यम से मेरा निर्णय अपने हाथ में ले लिया।"

कवि को खोज रहा था · और कवि योगी को खोज रहा था। दो तलाशें मिली : और एक उपलब्धि हो गयी।

मेरे मन मे भगवान् पर महाकाव्य लिखने का अटल संकल्प था। महावीर से बढकर उसका विषय क्या हो सकता था ? अपने रस के आप ही उत्स थे महावीर : मनुष्य की हरसम्भव कामना की वे अन्तिम परिपूर्ति थे, परितृप्ति थे। सारे रसो के उद्‌गम थे वे परम परमेश्वर · और सारे रसो के परिपूर्ण समापन भी थे। काव्य के उन्मुक्त, ऊर्ध्व कल्प-उड्डयन के बिना उन अनन्त विराट् आकाश-पुरुष को शब्दो मे बाँधने का और कोई उपाय नही है। इसीसे मेरा आग्रह था कि मैं भगवान पर महाकाव्य ही लिखूँगा : और कोई विधा नही स्वीकारूँगा। सो अपना यह निश्चय मैंने मुनिश्री के समक्ष प्रकट किया।· ·· दो टूक उत्तर मे निर्णय दे दिया योगी ने "महाकाव्य अवश्य लिखोगे, पर बाद मे। पहले 'मुक्तिदूत' जैसा ही एक उपन्यास भगवान् पर लिख देना होगा। उपन्यास की लोकप्रिय विधा के द्वारा ही भगवान इस देश के कोटि-कोटि प्रजाजनो के हृदय तक पहुँच सकेंगे ·!' श्रीगुरु के उस अविकल्प आदेश को सामने पा कर मैं स्तब्ध हो रहा। मैंने फिर से अपने मनोभाव को अधिक स्पष्ट किया, किन्तु योगी का निर्णय अटल रहा। मैं विनत हो गया।

इससे पूर्व मेरे कुछ कद्रदान हितैषियो ने और श्री-सम्पन्न स्नेहियो ने आग्रह किया था कि महावीर पर मैं फिलहाल काव्य नही, उपन्यास ही लिखूँ लोकप्रिय विधा मे ही रचना करूँ। मुनिश्री का आग्रह भी यही था। मगर मैं पहले अपने निश्चय पर अडिग रहा, और उसकी खातिर उपन्यास के लिए प्रस्तुत आर्थिक प्रबन्ध की योजना को भी मैंने अस्वीकार कर दिया। मै उस समय अभाव मे था, मेरे सामने कोई आर्थिक अवलम्ब नही था। योगक्षेम एक प्रश्न-चिह्न बन कर सम्मुख खडा था। मगर फिर भी मैंने उपरोक्त आर्थिक प्रबन्ध भी अस्वीकार किया, इस सकल्प के कारण कि लिखूँगा तो काव्य ही, उपन्यास नही। हृदय मे एक दुर्द्धर्ष सकल्प-शक्ति और आत्मनिष्ठा जाग उठी थी।······लग रहा था कि, आकाश-पुरुष महावीर का लीला-गान करने के लिए मेरे कवि को आकाशवृत्ति स्वीकार लेनी चाहिये। इस युग के चरित्रनायक, महाविष्णु महावीर स्वयम् ही क्या कम समर्थ हैं ? उनके चरित्र-गान मे कवि लीन हो गया, तो चरितार्थ आकाश मे से उतरेगा।

मेरा निर्णय बाह्य सम्पत्तिमान न बदल सके · किन्तु स्वयम् परम लोकरंजन भगवान् ने अपने ही एक प्रतिरूप दिगम्बर योगी के माध्यम से मेरा निर्णय अपने हाथ मे ले लिया।' ···· 'एवमस्तु' कह कर मैं नमित हो गया, भगवद्पाद गुरुदेव श्री विद्यानन्द स्वामी के चरणो में। और आकाशवृत्तिचारी विद्यानन्द ने अपने एक इंगित मात्र से, मानो आकाश मे से ही मेरा चरितार्थ मेरे सामने प्रस्तुत कर दिया।' '

उसी दोपहर इन्दौर से, मेरे इन्दौर-काल के स्नेही और मध्यप्रदेश के एक सुप्रतिष्ठ राज-समाज नेता श्री बाबूभाई पाटोदी, श्री महावीरजी आ पहुँचे। मुनिश्री के चरणो मे बरसो बाद हमारा अद्भुत स्नेह-मिलन हुआ। मुनिश्री द्वारा ही स्थापित इन्दौर की, श्री वीर निर्वाण ग्रंथ-प्रकाशन समिति' के मंत्री है बाबूभाई। मुनिश्री ने कवि का चरितार्थ-भार उन्हें सहेज दिया। उस तीसरे पहर अपने जीवन मे आकाश-वृत्ति की अमोघता का एक ज्वलन्त अनुभव हुआ। काश, हम उस 'योगक्षेमवहाम्यऽह' पर अपने को समूचा छोड सके! एक बार तो छोड कर देखे: वह अचूक भार उठा ही लेता है।

श्री महावीरजी मे मुझे श्री भगवान् की चमत्कारिक दर्शन-कृपा का अनुभव भी हुआ। *सान्ध्य आरती की बेला मे जब चाँदनपुर के बाबा के समक्ष,* घटा-घड़ियाल के अनवरत नाद के साथ, सौ-सौ दीपो की आरतियाँ झलमलाती हुई उठती है, उस क्षण प्रभु को अत्यन्त समीप, ठीक अपने सम्मुख पा कर, मेरी आँखो से अविरल आँसू बहने लगे। रक्त-मास के जीवित मानव चेहरे से भी, पाषाण-मूर्ति मे अव-तरित प्रभु का वह मुख-मण्डल अधिक जीवन्त, तरल, ऊष्मा-दीपित लगा। अन्तर्तम की आत्मीयता से सारे मन-प्राण आँसुओ मे उमड आये। भगवान् की उस विश्व-वल्लभ छाती मे सर ढाल देने को मै आकुल-व्याकुल हो उठा। तीन दिन-रात निरन्तर उस तीर्थ-भूमि के कण-कण मे, सारे आकाश-वातास मे, भगवान की जीवन्त उपस्थिति का चमत्कारिक बोध होता रहा। और दूसरी ओर भगवद्पाद गुरुदेव विद्यानन्द मे अपने उन तीर्थेश्वर प्रभु को चलते-फिरते, धर्मदेशना करते देखा। उस दिगम्बर सिंह मे महावीर की नरसिंह मुद्रा का ज्वलन्त साक्षात्कार हुआ। देव-गुरु-शास्त्र का समन्वित साकार दर्शन पाया। और श्री महावीर प्रभु का वही अनुग्रह आज मुझे सहसा ही कोटा की इस भूमि मे ले आया। अद्भुत है उस अनन्त पुरुष का खेल।

इस प्रसग पर यह स्मरण होना स्वाभाविक है कि आज से सत्ताईस वर्ष पूर्व, केवल हिन्दी के ही नही, किन्तु समस्त भारत के एक मूर्धन्य कथाकार तथा चिन्तक श्री जैनेन्द्रकुमार ने, जैन पुराण-कथा पर आधुनिक साहित्य-स्वरूप मे सृजनात्मक कार्य करने का प्रस्ताव मेरे सामने सहसा ही रक्खा था। योगायोग कि उस समय ठीक यही स्वप्न और प्रेरणा मेरे मन मे भी जाग रही थी। एक टेलीपेथी-सी हुई। मैंने स्वीकार लिया। जैनेन्द्रजी ने इस योजना को भारतीय ज्ञानपीठ से सम्बद्ध करवा

दिया। सुश्री रमारानी जैन और साहु शांतिप्रसाद जैन ने इसका स्वागत किया। ज्ञानपीठ ने मेरा लेखन-भार उठा लिया। और ज्ञानपीठ के एक आद्य स्वप्नदृष्टा और वर्तमान मंत्री श्रीयुत बाबू लक्ष्मीचंद्र जैन अपने मौन स्नेह और आत्मीय प्रेरणा से पत्रो द्वारा मेरी सृजन-साधना को बराबर ही सिंचित करते चले गये। पूज्य जैनेन्द्रजी, मातृ-पितृवत् साहु-दम्पत्ति तथा भाई साहब लक्ष्मीचन्द्रजी के संयुक्त सारस्वत प्रेम की आधार-शिला पर ही 'मुक्तिदूत' का यह रोमानी रत्न-प्रासाद उठा। इन आत्मीयो के प्रति मेरी कृतज्ञता शब्दो से परे है।

कोटा के विश्वधर्म-न्यास के प्रमुख ट्रस्टी श्री त्रिलोकचन्द कोठारी, श्री मदनलाल पाटनी तथा श्री गणेशीलाल रानीवाला और उनके अन्य सहयोगियो ने, पूज्य मुनिश्री की प्रेरणा से, हमारी सरस्वती को जिस अपूर्व स्नेह-सम्मान से अभिषिक्त किया है, उसे आभार-प्रदर्शन की औपचारिकता द्वारा नही चुकाया जा सकता। मेरे इन्दौर काल के स्नेही साहित्य-सगी भाई श्री नाथूलाल जैन 'वीर' की आत्मीय कलम के बिना यहाँ 'मुक्तिदूत' और उसके रचनाकार का यथेष्ट परिचय प्रकट होना असभव था। गोपन प्रीति का यह प्रकाश मुझे कभी नही भूलेगा। और यह भी एक दिव्य सयोग ही है कि इन्दौर के होलकर कॉलिज के दिनो मे मेरे किशोर विद्या-सहचर भाई अक्षयकुमार जैन के हाथो ही कवि के गले मे यह पडी है। अक्षयभाई ने मेरे परिचय मे अभी कहा था—'वीरेन्द्र तो वसन्त के पक्षी है, वे तो आज भी युवा ही है, किन्तु मैं तो बूढा हो गया।' पर मे कहना चाहता हूँ कि मैं वसन्त का पक्षी हूँ, तो अक्षय मेरे वसन्त है। और यह अभी प्रमाणित हो गया। उन्ही के हृदय के वसन्ताकाश मे यह कवि-पछी अभी एक अजीब उडान की मुद्रा मे आ गया है।

हमारे युग-शीर्ष पर बैठे है, कैवल्य-सूर्य तीर्थंकर महावीर और उनकी जिनेश्वरी भगवती सरस्वती की कोख से ही मेरे कवि का जन्म हुआ है, और परम भागवद् विद्यानन्द स्वामी की प्रतापी गुरुमूर्ति से आज जिनशासन उद्योतमान है। इन तीनो को नमित माथ प्रणाम करता हूँ। और अन्त मे अतिशय आभारी हूँ यहाँ उपस्थित हजारो श्रोताओ का, जिन्होने मेरे शब्दो को ठीक मेरे साथ तन्मय होकर सुना है। आपका यह तदाकार स्नेहभाव मुझे जीवन मे सदा याद रहेगा।"

○ ○

शून्य के धनुष पर
समय का शर धर,
बेध दिया क्षर को
मुक्त हुआ अक्षर ।

महावीर-साहित्य : विगत पचास वर्ष

१९२१-३०

महावीर-स्तोत्र (अन देवीलाल) 19 1
वीर भक्तामर (धमवधनगणि) 1)?6
महावीर जीवननी महिमा (बचरदार दोशी) 1927
Lord Mahavira and Some Other Teachers of His time (Kamata Prasad Jain) 1927
महावीर-चरित्र (जिनवल्लभ) 1929

१९३१-४०

महावीरना दश उपासको (बचरदास दोशी) 1931
भगवान महावीर का आदर्श जीवन (चौथमल महाराज) 1932
धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण (मन सुखलाल अन शोभाचन्द्र) 1934
महावीर स्वामीनो आचार धम (गोपालदास पटल) 1936
महावार स्वामीनो सयम धम (गापालदास पटल) 193(
जगद्‌गुरु महावीर (अमर मनि) 1937
महावीर-चरित्र (अन गुणचन्द्र) 1937
Mahavira His life and Teachings (B C Law) 1937
महावीर स्वामीनो अतिम उपदश (गोपालदास पटल) 1938
भगवान महावीर का जन्म कल्याण (चौथमल महाराज) 1938
वीर-स्तुति (पुप्प भिक्षु) 1939
भगवान महावीर की अंतिम शिक्षाएं (वधमान महाराज) 1940
महावीर (उर्दू अमर मनि) 1940

१९४१-५०

तीथकर महावीर के प्रति (वारेन्द्रकुमार जैन) 1941
महावार कथा (गापालदास पटेल) 1941
श्रमण भगवान महावीर (कल्याण विजय) 1)41
महावीर-वाणी (बचरदास दाशी) 1942
वीरत्थुई (आत्माराम) 1942
महावीर वधमान (जगदीशचन्द्र जैन) 194?
महावीर-चरित्र (म हर्षचन्द्र अनु जी एन शाह) 1945
महावीरना दशनो महादेवाओ (सुशील) 194?
वीर-स्तुति (अमरचन्द्र) 1946
Lord Mahavira (Boolchand) 1948
भगवान महावीर (गाकुलदास कापडिया) 1949
महावीर (रतिलाल शाह) 1949
भगवान महावीर का अहिंसा और महात्मा गाधी (पृथ्वीराज जैन) 1950
भगवान महावीर का साधना (मधुकर मुनि) 1950
महावीर जीवन विस्तार (सुशील) 1950
वधमान महावीर (ब्रजकिशार नारायण) 1950

बुद्ध और महावीर (मू कि ध मशरूवाला अनु जमनालाल जैन) 1951
भगवान् महावीर (दलसुख मालवणिया) 1951
महामानव महावीर (रघुवीरशरण दिवाकर) 1951
महावीर का जीवन-दर्शन (रिषभदास राका) 1951
वर्द्धमान (महाकाव्य अनूप शर्मा) 1951
भगवान महावीर (कैलाशचन्द्र शास्त्री) 1952
महावीर (धीरजलाल शाह) 1952
महावीर-स्तोत्र (जिनवल्लभ सूरि) 1952
तीर्थंकर वर्धमान (श्रीचन्द रामपुरिया) 1953
भगवान महावीर (कामताप्रसाद जैन) 1953
भगवान महावीर और उनका मुक्ति-मार्ग (रिषभदास रांका) 1953
महावीर का अन्तस्तल (सत्यभक्त) 1953
Mahavira (Amarchand) 1953
Lord Mahavira (Puranchand Samsookha) 1953
भगवान महावीर और विश्व शान्ति (ज्ञानमुनि) 1954
महावीर देवनो गृहस्थाश्रम (न्याय विजयमुनि) 1954
महावीर का सर्वोदय-तीर्थ (जुगलकिशोर मुख्तार) 1955
वीर-स्तवन-मंजरी (मोहनलाल वाडिया) 1955
निर्ग्रन्थ भगवान महावीर (जयभिक्खु) 1956
महावीर देवन जीवन (भद्रंकर विजय) 1956
Mahavira (Vallabh Suri) 1956
Mahavira and Buddha (Kamata Prasad Jain) 1956
Mahavira and His Philosophy of Life (A N Upadhye) 1956
भगवान महावीर (जयभिक्खु) 1950
भगवान महावीर और मांस निषेध (आत्माराम आचार्य) 1957
महामानव महावीर (न्यायविजय मुनि) 1957
महावीर और बुद्ध (कामता प्रसाद जैन) 1957
भगवान महावीर के पाँच सिद्धान्त (ज्ञानमुनि) 1958
भगवान महावीर अने मांसाहार (रतिलाल शाह) 1958
महावीर-जीवन महिमा (बचरदास दोशी) 1958
महावीर प्रवचन (कान्ति मुनि) 1958
Mahavira and Jainism (Jyoti Prasad Jain) 1958
तीर्थंकर भगवान महावीर (वीरेन्द्र प्रसाद जैन) 1959
भगवान महावीर (रमादेवी जैन) 1959
वीर प्रभु (विद्यानन्द मुनि) 1959
श्रमण भगवान् महावीर (धीरजलाल शाह) 1959
महावीर सिद्धान्त और उपदेश (अमर मुनि) 1960
वीरायण (धन्यकुमार जैन) 1960

१९६१-७०

परम ज्योति महावीर (महाकाव्य धन्यकुमार जैन सुधेश') 1961
तीर्थ कर महावीर (विजयेन्द्र सूरि) 1962
भगवान महावीरना एतिहासिक जीवननी रूपरेखा (धीरजलाल शाह) 1962
श्रमण भगवान महावीर तथा मासाहार-परिहार (हीरालाल दूगड) 1964
भगवान् महावीर जीवन-दर्शन (सुमेरचन्द्र दिवाकर) 1965
महावीर चरित्र (सचित्र भानुविजय) 1965
भगवान महावीर की बोधकथाएँ (अमर मुनि) 1966
वीर निर्वाण और दीपावली (चौथमल महाराज) 1966
भगवान महावीर (मू जयभिक्खु अनु सरोज शाह) 1967
महावीर की जीवन दृष्टि (इन्द्रचन्द्र शास्त्री) 1967
Teachings of Lord Mahavira (Ganesh Lalwani) 1967
महाश्रमण महावीर (सुमेरचन्द्र दिवाकर) 1968
अहिंसा सम्राट भगवान महावीर (स सुमेर के जैन महावीर भाऊराव कहारकर) 1969
ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान (हीरालाल कापडिया) 1969

१९७१-७४

महावीर और बद्ध की समसामयिकता (मनि नगराज) 1971
महावीर मेरी दृष्टि मे (आचाय रजनीश) 1971
महावीर-वाणी (आचार्य रजनीश) 1972
नयनपथगामीभवतु म (सचित्र महावीराष्टक) (म भागचन्द्र, अन भवानीप्रसाद मिश्र) 1 2
भगवान महावीर जीवन और उपदेश (विपिन जारोली) 1972
आधुनिकता बोध और महावीर (वीरेन्द्रकुमार जन) 1973
तीथकर वर्द्धमान (विद्यानन्द मनि) 1973
तीथकर वधमान महावीर (जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल) 1 73
भगवान महावीर और उनका तत्त्व-दशन (आचाय देशभषण) 973
भगवान महावार (गोकुलचन्द्र जन) 1973
भगवान महावीर की सूक्तियाँ (राजेन्द्र मुनि शास्त्री) 1739
भगवान महावीर जीवन और सिद्धान्त (प्रेमसागर जैन) 1973
भगवान महावीर व प्रेरक सस्मरण (महेन्द्रकुमार कमल) 1973
महावीर की मानवता (काव्य हुकुमचन्द्र जन अनिल) 1973
महावीर व्यक्तित्व उपदेश और आचार माग (रिषभदास राका) 1973
वशाली के राजकुमार तीथकर वद्धमान महावीर (नमीचन्द जैन) 1973

प्रकाश्य १९७४

तीथ कर वद्धमान महावीर (पदमचन्द्र शास्त्री)
तीथकर महावीर और उनकी आचाय-परम्परा (स्व नमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचाय)
अनुत्तर योगी तीर्थंकर महावार (उपन्यास वीरेन्द्रकुमार जैन)

○○○

महावीर : समाजवादी सदर्भ में

आजादी के पच्चीस वर्ष बाद आज तृष्णा, बुभुक्षा, गरीबी-अमीरी, विपुलता-विपन्नता की खाई और अधिक चौड़ी नजर आती है; फलतः करुणा-क्रोध के बीच समन्वयवादी दृष्टि ओझल है। करुणा निराशा में और क्रोध हिंसा में तेजी से बदल रहे हैं।

☐ धन्नालाल शाह

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व भारत की सामाजिक और आर्थिक स्थिति से आज की तुलना करना न तो बुद्धिमानी ही है और न ही तर्कसगत, किन्तु यह असदिग्ध है कि तत्कालीन योगी तीर्थकर महावीर और गौतम बुद्ध को अहिंसा, अपरिग्रह-जैसे सिद्धान्तो के प्रतिपादन की जरूरत महसूस हुई थी इस दृष्टि से आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य मे तब और अब इन सिद्धान्तो की महत्ता एक जैसी ही है, सिर्फ तीव्रताओ मे कमोबेश हुआ है।

वैयक्तिक चरित्र-रचना की दृष्टि से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का त्रिभुज व्यक्ति को मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करा सकता है। जेनाचार्य उमास्वाति का यह त्रिक "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" महावीर और उनके पूर्ववर्ती तेईस तीर्थंकरो का मलमत्र रहा है । स्वर्ग या मुक्ति का यह मार्ग व्यक्ति ही नही समाज, राष्ट्र और यहाँ तक कि सपूर्ण विश्व के लिए युगो-युगो तक अपरिवर्तित और यकसा मौजूद हे । राजकुमार महावीर, तपस्वी मुनि महावीर तथा केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति-सुन्दरी का वरण करने वाले तीर्थकर महावीर ने दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य की त्रिवेणी से मनोमन्थन, वाणी-स्फुरण और कर्मानुशीलन द्वारा जिन रत्नो का पुनराविष्करण किया उनमे अहिंसा और अपरिग्रह उन आधारशिलाओ की भाँति प्रकट हुए, जिनमे सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य के महान् सिद्धान्त स्वयमेव समाविष्ट है।

श्रावक यानी गृहस्थ के लिए महावीर ने इन व्रतो के साथ 'अणु' शब्द जोडकर इन्हे 'अणुव्रतो' की सज्ञा दी और इनके क्रमिक परिपालन को सद्गृहस्थ या सभ्यजन; और समाज को सत्समाज, या श्रावक समाज कहा। अहिंसा से लेकर परिग्रह-परिमाणुव्रत की क्रमबद्धता मे अहिंसा शीर्षस्थ और परिग्रह का सीमाकन अन्तिम कडी है।

महावीरयुगीन अहिंसा राजनयिक और वैदिक विकृतियो की उपज थी। तत्कालीन समाज के प्रभावशाली अंग क्षत्रिय और ब्राह्मणो की राज्यलिप्सा, कीर्ति-

कामना और स्वार्थसाधना की सुश्रृंखल और सुनियोजित देन वह थी। दूसरे शब्दो मे तलवार और कलम का मिला-जुला कमाल वह था, जिसने शोषण के द्वार खोले, मानव-समता की अनुभति को खण्डित किया, सामाजिक उच्चता-निम्नता के तमगे लगाकर सामाजिक-आर्थिक विभेदो के उत्तुंग दुर्ग खड़े किये। बीसवी सदी के इस अन्तिम चरण मे महावीरकालीन समाज की अपेक्षा शत-शत गुनी हिंसा और दमन-शोषण, वर्गभेद की प्राचीरे खडी की गयी है। पूजीवादी अमरीका हो, या समाजवादी रूस, सर्वनाश की सामग्री के निर्माण की होडाहोडी मे सब लगे है। इन दो मुल्को के अलावा फ्रान्स और चीन ने भी अणुबम-उद्जनबम और प्रक्षेपास्त्रो के अम्बार-के-अम्बार सगृहीत कोष मे सुरक्षित रखे है। बहाना है कि हिंसा के सर्वनाशमयी प्रलय-कर ताण्डव को हिसा के मुकाबले की ताकत खडी करके ही रोका जा सकता है।

"वार डिटरेंटस के इस छलनामय प्रपच मे आज का विश्व सर्वनाश के कगार पर आ खडा हुआ है और उसने समदर की अतल गहराइयो और आसमान की अछूती ऊँचाइयो को नापने के अपने वैज्ञानिक और काल्पनिक उपक्रम को अनवरत जारी रखा है।

महावीर ने अहिंसा से अपरिग्रह तक पहुँचने की सीढी बतायी है। आज के युगसदभ म परिग्रह से हिंसा तक का मार्ग प्रशस्त होता दीख पड रहा है। अभाव आवश्यकता और अदम्य वासनाओ के घेरे म बधा मानव मन परिग्रह का परिमाणन नही करना चाहता वर्तमान से असतोष और भविष्य के प्रति निराशा या कि वर्तमान से बगावत और भविष्य के स्वर्णिम स्वप्न या अतीत का व्यामोह वतमान मे शिकायत के इर्द गिर्द ससार की धुरी डावाडोल है।

स्वतन्त्रता के पच्चीस वष बाद आज तृष्णा बुभुक्षा अमीरी-गरीबी विपुलता-विपन्नता की खाई और अधिक चौडी होती नजर आती है फलत करुणा-क्रोध क बीच समन्वय की दृष्टि ओझल है। करुणा निराशा मे और क्रोध हिसा मे बडी तेज गति से बदल रहे है।

राजकुमार महावीर तीर्थकर महावीर के जीवन चिन्तन और कर्म का मम हमारी राष्ट्रीय समस्याओ का समाधान कर सकता है। राजनीति का रथ पिछले बीस वर्षो मे निर्माण-पथ पर मील के पत्थर गाडने म एक सीमा तक सफल हुआ है इस तथ्य म मुह मोडना एक तरह से सत्य की अनदेखी ही होगी। तृष्णा, परिग्रह और परिग्रह की पूजीवादी मनोवृत्ति के मुकाबले राजनीति के धुरीधरो ने समाज-वादी समाज रचना और जनतान्त्रिक समाजवाद की मजिलो के धुधले मानचित्र बनाये है, किन्तु यह विडम्बना ही है कि राष्ट्रीय पूजी बढने की अपेक्षा चन्द पूजी-पतियो ने अपनी सम्पदा और पूजी को समृद्ध करने म सरकार को मात दी है। अमीरी

के कैलाश और गरीबी के पाताल के बीच पटरी कैसे बैठे ? रक्ताभ क्रान्ति मे आस्था रखने वाली हिंसा के माध्यम से, या महावीर की अहिंसा और अपरिग्रह की राह से ।

सचाई यह है कि हिन्दुस्तान की सरजमी पर अहिंसा की सांस्कृतिक विरासत के सामूहिक पुनर्जागरण और अपरिग्रह की आर्थिक कलमबन्द कानूनी संरचना एक शक्तिशाली सक्रिय अहिंसक राष्ट्र को जन्म दे सकती है । भगवान् बुद्ध का व्यष्टि और समष्टि के निर्माण का नारा था . "धम्मं शरण गच्छामि, सघं शरण गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि" । समाजवादी क्रान्ति-दृष्टा स्वर्गीय डा. राममनोहर लोहिया ने अपने दल के कार्यकर्ताओ से एक बार कहा था "अब बुद्ध के इस उद्घोष मे क्रमिक परिवर्तन कर हम यो कहे–"बुद्ध शरण गच्छामि, सघ शरण गच्छामि, धम्म शरणं गच्छामि" । नारे को इस तरह पलटने से डा लोहिया का आशय था "बुद्धि से स्वीकार मस्था मे आओ और फिर समाजवादी समता-धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित हो जाओ ।"

"सारे धर्मो को त्यागकर एकमात्र मेरी शरण मे आ"–अपने युग के क्रान्तिकारी नेता कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उक्त कर्त्तव्यबोध उनके "कर्म ही तेरे अधिकार मे है उसका फल नही" की निष्काम भावना से जुडा हुआ है । कुल मिलाकर पुराण, बुद्ध और महावीर ने अपने-अपने युगो मे तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और साम्कृतिक परम्पराओ और प्रथाओ के चलते एक नयी वैचारिक क्रान्ति के बीज डाले और कुछ ऐसी प्रक्रिया अपनायी मानो प्राचीन का क्षय और नवीन का जन्म प्रकृति का ही कोई चिरन्तन नियम हो ।

अस्तित्वहीन होकर अस्तित्व देना, जमीन मे दफनाये बीज से नये बीज को अकुरित करने जैसा विलक्षण, तथापि स्वाभाविक कुछ है, काश, आज का युग महावीर की अहिसा और अपरिग्रह की नीव पर हिसा और परिग्रह को दफना कर स्नेह, सौहार्द, समता और समन्वय के बीज अकुरित करने के लिए एक सामुदायिक करवट ले सकता ।

मेरा विश्वास है, प्रतीक्षित क्रान्ति का मसीहा कृष्ण, महावीर, बुद्ध या गाधी नही वरन् जन-जन की अन्तश्चेतना का सघन और सामूहिक प्रकटीकरण ही होगा ।

□□

वर्तमान युग मे
महावीर की प्रासगिकता

महावीर की अहिंसा, उनका अनेकान्त, उनका अपरिग्रह सभी प्राणियो को समान देखने की उनकी दृष्टि, जियो और जीने दो' का उनका नारा वर्तमान युग मे हम सबको आकर्षित कर रहे हैं—अत्यन्त प्रासगिक बने हुए हैं।

—सरोजकुमार

महावीर और हमारे बीच ढाई हजार साला का फासला है। इस फासले मे हमारी पचासो पीढियाँ आइ और गईं। सैंकडो प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ और शासक बने और मिट। अनेक तक-पद्धतियाँ मनुष्य के मस्तिष्क को छती हुई गुजरती रही। इन ढाई हजार सवत्सरा म मनष्य ने भौतिक सुखो की अनेक दौड जीती और विज्ञान को साधकर अनेक करिश्मे स्वय क लिए पैदा किए। स सब के बावजद मनुष्य का चरित्र अपनी आदिम प्रवृत्तिया की परते परिमार्जित नही कर सका। वह उपर से सभ्य अवश्य बन गया किन्तु भीतर असभ्य बना रहा। आकाश और पाताल को एक करन के बाद भी उस इस बात का अहसास हो रहा है कि उसका परिश्रम सार्थक नही हुआ। जिस सुख की तलाश म वह भटकता रहा वह उस नही मिला। और जिस किस्म का सुख उसे मिल सका है वह उस उबा अधिक रहा है। यह उसके होने और होना चाहने की स्थितिया के बीच फैली हुई जिन्दगी की त्रासदी है। आज वह अन्तर्राष्ट्रीय होकर भी अकेला है और सब कुछ क बीच भी न कुछ प्रतीत हो रहा है। और यही कारण ह कि महावीर इन सैंकडा वर्षों के अन्तराल को लाघकर आज भी अपने तपश्चरण की उपलब्धियो के कारण हम हमारे लिए प्रासगिक बने हुए मिलते हैं।

आज का मनष्य अपने आप म टटा हुआ खण्डित और अस्पष्ट प्राणी ह। वह जो कह रहा है और जो कुछ कर रहा है उसमे भिन्नता है। वह अपनी स्वाभाविक प्रतिष्ठा क उद्देश्य म कहता कुछ एसा है जो प्रीतिकर और श्रयस्कर है किन्तु करता वह वही है जो उसके व्यक्तिगत स्वार्थ को सिद्ध करे। उसम कथनी और करनी का यह अन्तर इसलिए है कि हमम कथनी को मात्र शब्दोच्चार मान लेने की त्रुटि समा

गई है। परिणामतः आज कर्म से दरिद्र उपदेशकों की भीड बढ गई है। हर चालू नेता हमे पाँच मिनट मे ढाई किलो उपदेश दे जाता है, जिसका शतांश भी उसके चरित्र मे कहीं चरितार्थ नही मिलता। यहां महावीर याद आते हैं। वे मन, वचन और कर्म की शुद्धता पर बल देते हैं। निर्मल मन, संयत वचन और तदनुकूल कर्म मनुष्य के चरित्र को दृढ बना सकते हैं। और ऐसा दृढ व्यक्ति ही नेतृत्व का अधिकारी हो सकता है। क्योकि ऐसे व्यक्ति की कथनी के पीछे सकल्प होगा, कर्म होगा। उसकी कथनी चूंकि थोथा उपदेश नही होगी, अत वह प्रेरित करेगी।

और महावीर हमें क्यो प्रेरित करते है ? क्यो हमे भीतर तक छू जाते है ? इसीलिए तो, कि उन्होने अपने मन, वचन और कर्म को अपने जीवन मे एक मच पर बिठाकर अपने चरित्र के सूत्र मे पिरो लिया था। अनेक वर्षों की साधना की उपलब्धि के रूप मे उन्होने जो कहा, उसके पीछे उनकी जीवनानुभव की शक्ति थी। जीवनानुभव के बिना इधर जो उपदेश हमे दिये जाते है, उनके पीछे आचरण की शक्ति न होने के कारण हमे आकर्षित नही करते। मन, वचन और कर्म का जिसके जीवन मे सामजस्य नही मिलेगा, उसकी कथनी और करनी संदर्भहीन होगी। वह वैसा ही खण्डित व्यक्तित्व होगा, जैसा कि आज आधुनिक साहित्य मे व्यक्त किया जा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों से हमारे देश मे समाजवाद का बडा हल्ला है। समाजवाद की चर्चा प्रत्येक राजनीतिक व सामाजिक सगठन का प्रिय विषय बनी हुई है। इस सब के बाद भी हमारा देश समाजवादिता की ओर एक इच भी आगे बढता दिखलाई नही देता। समाजवाद धन और ऐश्वर्य के प्रति उदासीनता का भाव जागृत नही करना चाहता। वह उनके बटवारे मात्र के लिए अधिक चिन्तित है। और बटवारा इसलिए सभव नही हो पा रहा है, क्योकि सामाजिक प्रतिष्ठा के मूल्य ही धन, सम्पत्ति और ऐश्वर्य बने हुए हैं। यहाँ महावीर का अपरिग्रह हमारे सामने प्रासगिक हो उठता है। महावीर का अपरिग्रह सम्पत्ति के बटवारे की बात नही करता। वह तो अनावश्यक धन-सम्पत्ति से लगाव ही न रखने की बात कहता है। महावीर का अपरिग्रह सामाजिक मूल्यो के सीधे निकट पहुँचकर कहता है कि जो जितना अपरिग्रही है, वह उतना ही महान् है। और अपरिग्रह ही अहिसक हो सकता है; अत धन-सम्पत्ति मे होड करने वाला सामाजिक प्रतिष्ठा का पात्र नही है। प्रतिष्ठा का पात्र वह है जिसके मन मे परिग्रह के प्रति विकर्षण है। वही समाज मे आगे बैठने का सुपात्र है। ऐसा अपरिग्रही ही आदरणीय है। ऐसा अपरिग्रही दरिद्री नही है, वह सचय की कुप्रवृत्तियो से मुक्त समृद्ध मानव है। अपरिग्रह की ऐसी प्रतिष्ठा यदि सामाजिक मूल्य के रूप में हो जाए तो समाजवाद की सुखद परिकल्पना आसानी से साकार हो सकती है।

आज विभिन्न धार्मिक एव राजनीतिक मतवादो से ससार पीड़ित है। विभिन्न मतवादो क अलग-अलग मच हैं। इन अलग-अलग मचो पर उनके कट्टर समथक बैठे हुए है। सब के अपने अपने तक और अपने-अपने आग्रह हैं। किसी को किसी अन्य की सुनने की फुरसत नही। न कोई आवश्यक ही समझता है कि दूसर की बात भी सुनी जाए गनी जाए। सभी अपने-अपने निष्कर्षो के प्रति आश्वस्त है। निश्चित है। दृढ है। दूसरो के विचार और तक उनके लिए बकवास हैं। अपनी-अपनी स्थापनाए उनके लिए पूण व अन्तिम हे। परिणामत देश म द्वष कटुता सघष और हिसा की स्थितियाँ विद्यमान हे।

इस प्रकार क एकात दुराग्रहो के बीच हम महावीर का अनेकान्त एकदम प्रासगिक लगता हे। महावीर का अनकान्त एक ही वस्तु को अनेक दष्टिया से देख जाने की सभावनाओ पर बल देता ह। यथाथ सत्ता के अनेक रूप हो सकते है। और उनमे स कोई भी रूप अपने आप म पूण नही होता। महावीर का अनेकान्त दर्शन किसी भी वस्तु अथवा विचार के प्रति सहिष्णता का वातावरण निर्मित करता है। यह अनेकान्त किसी भी वस्तु अथवा विचार के प्रति अनेक लोगो द्वारा व्यक्त किए गए अनेक कथनो को सत्याश मानता है। वह यही मानता है कि किसी एक सत्याश म ही पूण सत्य होगा किन्तु उसम सत्याश का सभावना अवश्य है। और महावीर का अनेकान्त उन सब की शाध कर उन सब म स गुजरकर पूण सत्य की शोध क लिए हम प्ररित करता हे। कोई सत्याश अपन आप म पूण नही है। और प्रत्येक दृष्टिकोण मे सत्याश होता। जन महावीर का अनेकान्त हमे प्रत्यक दृष्टिकाण म सत्याश की अभिव्यक्ति क प्रति आश्वस्त करत हुए विभिन्न दृष्टिकोणो म स गजरकर सत्य की शोध क लिए आह्वान तो करता हा ह वह वैचारिक धरातल पर सहअस्तित्व का सिद्धान्त ही बन गया है।

महावीर ने जियो और जीने दो का नारा देकर ससार म सब को जीन का समान अधिकार दिया। किसी को यह हक नही कि वह अपने जीने के लिए दूसरे को न जीने दे। ससार के सारे प्राणी समान रूप से महत्त्वपूण है। और महावीर की अहिसा इसीलिए विश्वविदित है। अहिसा सिद्धान्त को अपना कर इस अणु आयुधो क युग मे भी महात्मा गाधी ने यह सिद्ध कर कर दिखाया कि अहिसा की शक्ति अपरिमित है। अपनी अहिसा से उन्हाने उस साम्राज्य का पराजित किया जिसका सूय कभी नही डूबता था।

महावीर की अहिसा उनका अनेकान्त उनका अपरिग्रह सभी प्राणियो को समान दखने की उनकी दृष्टि जियो और जीने दो का उनका नारा वर्तमान युग मे हम सबका आकर्षित कर रहे हैं और अत्यन्त प्रासगिक बने हुए हैं। □□
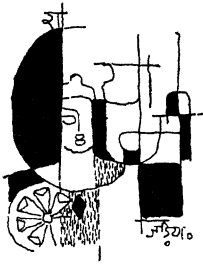
नयनपथगामीभवतुमे

□ भवानीप्रसाद मिश्र

चित अचित सब किसी दपण की तरह
जिसमे उजागर स्वच्छ, सांग समान
नाश और उत्पत्ति प्रतिबिम्बित जहाँ
प्रत्यक्ष सह-अनुमान
जो जगत अध्यक्ष
सूरज की तरह राहें दिखाता
वह विधाता ज्ञान का
होकर नयन से
हृदय तक उतरे हमारे
वह सवारे, स्वप्न-जागृति सब सवारे ।

दो

आंख मे जिनके नहीं है लाल डोरे
भक्त-मन के निकट
प्रकटित द्वेषलव जिनके निहोरे
एकटक, कमलाक्ष, स्फुटमूर्ति
प्रशमित नित्य-निर्मल
नयन-पथ से हृदय मे
आये, पधारे वे अचचल !

तीन

इन्द्र-मुकुट-मणि-आभा
जिनके युगल कमल-पद-तल धोती है
जिनके चरणों की गति-सरिता
अखिल ताप-शामक होती है
जिनका ध्यान किया और ज्वाला
जाग्रत बुझी जगत् की क्षण मे
महावीर स्वामी आये वे
नयन-पन्थ से भीतर, मन मे !

चार

जिनके पूजन की धुन मे
गतिवत किसी दादुर ने दबकर
मत्तगयन्द-छन्द के नीचे
स्वर्गिक श्री-सुषमा के आलय
नयी एक महिमा से सींचे
गुण-समृद्ध, सुखनिधि वह दादुर
देवतुल्य जिस कृपा-कोर से
महावीर स्वामी वे उतरे
मन के भीतर नयन-डोर से ।

पांच

तप्त-कनक-आभा-शरीर भी
जो विदेह है
होकर एक अखिल भी है जो
ज्ञान-गेह है
जो अज होकर भी
सिद्धार्थ-तनय बन आये
श्री-सुषमा-सपन्न
दिव्यलोकों तक छाये
वे अद्भुत गति
परम अलौकिक
सन्मति-स्वामी
उतरे मेरे प्राणों मे
लोचन-पथगामी !

छह

उक्ति-तरगों से जिनकी
वाणी-गगा
कल-कल-मधुरा है
जिनके जल से स्नात भक्त-दल
महाज्ञान-तट पर उभरा है
विमल बुद्धि के हस आज भी
जिसे छोडकर कही न जाते
नयन-पन्थ से वे सन्मति-प्रभु
मन व्याकुल है, भीतर आते !

सात

त्रिभुवनी-जयी काम को
जिसने जीत लिया
कैशोर काल मे
मुक्ति-सूर्य को सुलभ कर दिया
जिस सुख-निधि ने जगज्जाल मे
बन्धु-विदित महिमा मगलकर
अपने-आप प्रसन्न भाव से
नयन-पन्थ से आ उतरे वे
मन-तट पर जाज्वल्य नाव से !

आठ

माहमोह-आतक-व्याधि के
हे धन्वन्तरि !
बन्धु-विदित महिमा मगलकर
साधु शरण्य
सहज सर्वोपरि
भव-भय हरे, प्रणत जन के
आनन्द बढाये
नयन-पन्थ से उतरे
मन के भीतर आये !

□

(महावीराष्टक– मूल : कविवर भागचन्द्रजी)
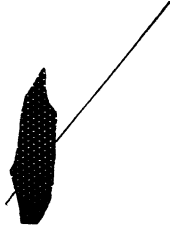
माना कि सुन्दर होता है
निराकार से आकार
मगर हर इंच पर
उसे फूल की तरह
न खिलाये
छोड़ दिये जाएँ
खाली लम्बे-चौड़े मैदान
ध्वनि और शब्द
और गान रहे
मगर ऐसे भी कान रहे
जो चुप्पी को सुन ले

—जैनधर्म खण्ड

निराकार को

भवानीप्रसाद मिश्र

निराकार को ढालना
कैसे बने
इस ध्यान मे
मने-अनमने
कुछ साँचे
पकाये मैंने डालकर
आँच मे ।
साँचे कुछ ठीक-ठीक पक गये
और ढालने लगा मै उनके बल पर
निराकार को आकार मे
विचित्र मगर एक बात हुई
ढालते-ढालते
निराकार को आकार मे
साँचे जानदार हो गये
जो पहले ठीक-ठीक पक गये थे
अब जान आ जाने पर वे
यत्रवत आकार ढालने से
थक गये
साँचे मेरे बावजूद
सोचने लगे
कि आकारों को
सीमित किया जाए
जितना जीवन पिया जाए
प्यासी धरती मे
उसे उससे ज्यादा
न पिलाये

माना कि सुदर होता है
निराकार से आकार
मगर हर डच पर
उस फूल की तरह
न खिलाये
छोड दिये जाएँ
खाली लबे-चौडे मैदान
ध्वनि और शब्द
और गान रहे
मगर ऐसे भी कान रहे
जो चुप्पी को सुन ले
ऐसी भी रहे आँखे
जो शून्य मे से चुन ले
मन के सुख
अतर से अतर के
दु ख । □

सापेक्ष विकल्प

अनन्त होना
बहुत मुश्किल है–
होता है कोई एक
शताब्दियों मे
कभी कभी।
लेकिन
सहज है शून्य होना
हो सकते है सभी।

शून्य और अनन्त के
बीच ही
फैला है विस्तार।
यूं अनन्त भी है
मात्र एक बिन्दु
और
बिन्दु के भीतर है
ऊर्जा अनन्त।

दोनों के बीच
अंकों की जितनी भी गणना है
निरर्थक
जोडना और घटाना है!

दिनकर सोनवलकर

अहम् पीड़ित

जब
सक्रियता से पौध को
लग जाता है
अहंकार का कीडा
तो फिर उसमें
नहीं खिलते
उपलब्धियों के फूल।

ऐसे वृक्ष
हरे भरे बगीचों मे भी
अलग खडे रहते हैं
ठूंठ से तने
और

अपनी बाँझ ऊँचाई को भी
साबित करते हैं
एक नया मूल्य।

प्रार्थना

जिन-जिन अवसरों पर
खोया था धीरज–
अब वैसे क्षणों में
रह सकूँ अविचलित
—यह बल दो !

जब-जब भी क्षुद्र बातों पर
तानी है भृकुटी
तेज किया है स्वर
वैसी स्थितियों में
रह सकूँ सहज
—यह सम्बल दो !

जिन जिन अवसरों को
बिताया निष्क्रिय आलस में
उनको भर सकूँ
कर्म में रचना में
—वह सृजन क्षण दो !

जहाँ जहाँ मिला है
स्नेह का आदर का
आशीष भरी बाँह का
उन्हें याद रख सकूँ अहर्निश
—यह कृतज्ञ स्मरण दो !

—दिनकर सोनवलकर

निर्द्वन्द्व

चलो
कुछ दिन
अन्धकार ही सही।

तुमने भेजी थी
सूर्य किरण
तो स्वागत का मंत्र
पढ़ा था हमने।
अब भेजी है
अँधियारी रात
उसमें गायेंगे
प्रेम के गीत।

हे मनमीत–
कुछ दिन
आँसू की धार ही सही
चलो कुछ दिन
अन्धकार ही सही।

जैन दर्शन की सहज उद्‌भूति : अनेकान्त

- **क्या हम वस्तु के एक धर्म को भी ठीक से देख पाते है ? मै समझता हूँ नहीं देख पाते।**
- **सम्पत्ति का संग्रह हिंसक कार्य तो है ही, वह एकान्त और अस्याद्वादी कार्य भी है। जब हम अपने लिए संग्रह करते है तो दूसरों की सापेक्षता में सोचते ही नहीं हैं।**
- **परिग्रह हजार सूक्ष्म पैरो से चलकर हमारे पास आता है और हम गफलत में पकड़ लिये जाते हैं।**

—जयकुमार जलज

अनेकान्त जैन दर्शन की सहज उद्‌भूति है। जैन दार्शनिको ने द्रव्य/पदार्थ/सत्ता या वस्तु का जैसा विवेचन किया है उससे उन्हे अनेकान्त तक पहुँचना ही था। उनका द्रव्य-विवेचन एक अत्यन्त तटस्थ वैज्ञानिक विवेचन है। परवर्ती शुद्ध विज्ञानों से दूर तक उसका समर्थन होता है। जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य के अनेक (अनन्त नही) गुण है—जैसे जीव द्रव्य के ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि और पुद्‌गल द्रव्य के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि। वस्तु या द्रव्य आकार मे कितना ही छोटा हो लेकिन हम उसे सम्पूर्णत नही देख सकते। मै उसके एक गुण को देखता हूँ, आप दूसरे गुण को, और लोग तीसरे, चौथे गुण को भी देख सकते है, लेकिन एक व्यक्ति युगपत् सभी गुणो को देखने मे समर्थ नही है। सबके देखे हुए का योग नही किया जा सकता और योग हो भी जाए तो भी वह सभी दर्शको के लिए विश्वसनीय कहाँ हो पायेगा? कई खण्ड ज्ञान मिल कर एक अखण्ड ज्ञान की प्रामाणिक प्रतीति शायद ही करा पायें। जगह-जगह टूटी हुई रेखा एक अटूट रेखा का भ्रम ही पैदा कर सकती है, वह वस्तुत अटूट रेखा नही होती। इस प्रकार वस्तु अधिकाशत अदेखी रह जाती है।

वस्तु के गुण परिवर्तनशील है। गुणो का परिवर्तन ही वस्तु का परिवर्तन है। इसीलिए वस्तु कोई स्थिर सत्ता नही है। वह उत्पाद और व्यय के वशीभूत है। हर क्षण उसमे कुछ नया उत्पन्न होता है और कुछ पुराना क्षय होता है। वह अपनी पर्यायें बदलती है–पूर्व पर्याय त्यागती है और उत्तर पर्याय को प्राप्त करती है। यह क्रम अनादि अनन्त और शाश्वत है। यह कभी विच्छिन्न नही होता। हम पहले क्षण जिस वस्तु को देखते है और दूसरे क्षण वही वस्तु नही होती। नदी के किनारे पर खडे होकर हम एक ही नदी को नही देखते। हर क्षण दूसरी नदी होती है।

अनेक गुणवाली ये वस्तुएँ अनन्तधर्मा है। वस्तु के गुणो को गिना जा सकता है। गुण वस्तु के स्वभाव है, वस्तु मे ही रहते है और स्वय निर्गुण होते है।[1] उनकी सत्ता निरपेक्ष है। इसके विपरीत वस्तु के धर्म अनन्त है। वे वस्तु मे नही रहते। उनकी सत्ता सापेक्ष है। इसलिए वे किसी की सापेक्षता मे ही प्रकट होते है। सापेक्षता गयी तो वह धर्म भी गया। परिप्रेक्ष्य या दृष्टि-बिन्दु के बदलते ही दृश्य बदल जाता है। दूसरे परिप्रेक्ष्य से देखने पर दूसरा दृश्य होता है। धर्म व्यवहार-क्षेत्रीय है। वस्तु का छोटा होना, बडा होना, पति पिता पुत्र आदि होना व्यवहार और सापेक्षता का विषय है। इसीलिए रूप, रस, गन्ध आदि जहाँ गुण है वही छोटापन बडापन पतित्व पितृत्व पुत्रत्व आदि गुण नही, धर्म है।

अनन्त वस्तुओ के कारण अनन्त सापेक्षताएँ निर्मित होती है। सापेक्षताओं के गुण, मात्रा लम्बाई चौडाई ऊँचाई स्थान काल आदि अनेक आधार होते है। वस्तु का अच्छा, भारी लम्बा चोडा ऊँचा दूर प्राचीन आदि होना किसी सापेक्षता मे ही होता है। सापेक्षता प्रस्तुत करने का कार्य केवल उसी वर्ग की वस्तु नही अन्य वर्गो की वस्तुएँ (जीव, पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल) उनके भेद और उनकी अनन्त सख्याएँ करती है। सापेक्षताओ से वस्तु के अनन्त धर्म निर्मित होते है। एक ही वस्तु अनन्त भूमिकाओ मे होती है। एक ही व्यक्ति पिता पुत्र भाई गुरु शिष्य शत्रु मित्र तटस्थ आदि कितने ही रूपो या धर्मो मे प्रकट होता है। हम किसी एक कोण मे देख कर वस्तु का नामकरण कर देते है। नामकरण वस्तु के सम्पूर्ण स्वरूप का सकेतित नही करता। वस्तु के नाना धर्मो मे से उसके केवल एक धर्म पर ही टिका होता है नाम। शब्दो पर व्युत्पत्ति और अर्थ की दृष्टि से विचार करते हुए आठवी शताब्दी ईसा पूर्व के भारतीय आचार्य यास्क ने वस्तु की इस अनन्त धर्मिता का अपने ढग से अनुभव किया था—'स्थूणा (खम्भा) शब्द की व्युत्पत्ति स्था (खडा होना) धातु से मानी जाती है। यदि खम्भे को खडा होने के कारण स्थूणा कहा जाता है तो उसे गड्ढे मे धसे होने के कारण दरशया (गड्ढे मे धँसा हुआ) और बल्लियो को संभालने के कारण सज्जनी (बल्लियो का सभालनेवाला) भी कहा जाना चाहिये।[2]

क्या हम वस्तु के एक धर्म को भी ठीक से देख पाते है? मै समझता हूँ, नही देख पाते। उदाहरण के लिए अध्यापक को ले। यह नाम व्यक्ति के एक धर्म पर आधारित है। हमने उसके अन्य सभी धर्मो का नकार दिया। सौदा खरीदते समय वह खरीददार है, पुत्र को चाकलेट दिलाते समय पिता है। हमने इन सबकी ओर ध्यान नही दिया। यहाँ तक कि कक्षा पढाने मे सफलतापूर्वक बचते समय भी उस अध्यापक कहा, लेकिन उसके इस एक धर्म अध्यापन के भी तो अनेक स्तर है—कभी उसने बहुत तेजस्वी अध्यापन किया होगा,

---

१ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा —तत्त्वार्थसूत्र ५।४०

२. निरुक्त, १-११

कभी बहुत शिथिल और इन दोनो के मध्य अध्यापन के सैकड़ो कोटि-क्रम हैं। इन सब पर हमारी दृष्टि कहाँ जा पाती है ?

इस प्रकार वस्तु के अनेक गुण हैं। वह निरन्तर परिवर्तनशील है और उसके अनन्त धर्म हैं। क्या हम वस्तु को उसकी सम्पूणता मे देख सकते हैं जान सकते है ? सभव ही नही है।

जितना भी हम देख और जान पाते है वणन उससे भी कम कर पाते है। हमारी भाषा हमारी दृष्टि की तुलना मे और भी असमथ अपर्याप्त अपूण और अयथाथ है।* नाना धर्मात्मक वस्तु की विराट सत्ता के समक्ष हमारी दृष्टि को सूचित करने वाली भाषा बहुत बौनी है। वह एक टूटी नाव के सहारे समद्र के किनारे खड होने की स्थिति है लकिन हम अपने अहकार म अपनी इस स्थिति को समझने ही नही है। महावीर ने वस्तु की विराटता और हमारे सामथ्य की सीमा स्पष्ट करके हमारे इसी अहकार को तोडा है। उन्होने कहा वस्तु उतनी ही नहा है जितनी तुम्ह अपने दष्टिकोण स दिखायी दे रही है। वह इतनी विराट है कि उसे अनन्त दष्टिकोणो स देखा जा सकता है। अनेक विराधी प्रतीत होने वाले धम उसम युगपत विद्यमान है। तुम्ह जो दष्टिकोण विराधी मालूम पडता है उसे निर्मित करने वाला धम भी वस्तु म है। तुम ईमानदारी मे—थोडा विरोधी दृष्टिकोण से—देखो तो सही। तुम्ह वह दिखायी देगा। एकान्त दृष्टि से विपरीत यह अनेकान्त दृष्टि है। यही अनेकान्तवाद है। यह विचार या दशन है। एक ओर वस्तु के अनेक गुण बदलती पर्यायें और अनन्तधर्मिता का और दूसरी ओर मानव-दष्टि की सीमाओ का बोध होत ही यह सहज ही उदभूत हो उठा। विचार म सहिष्णता आयी ता भाषा मे उसे आना ही था। विचार म जो अनकान्त है वाणी मे वही स्याद्वाद है।

स्यात शब्द शायद के अथ म नही है। स्यात का अथ शायद हा तब तो वस्तु के स्वरूप कथन म सुनिश्चितता नही रही। शायद एसा है वैसा है—यह तो बगल झाकना हुआ। पालि और प्राकृत मे स्यात शब्द का ध्वनि विकास स प्राप्त रूप सिया वस्तु के सुनिश्चित भदो के साथ प्रयोग मे आया है। किसी वस्तु क धम-कथन के समय स्यात शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि यह धम निश्चय ही एसा है लकिन अन्य सापेक्षताओ मे सुनिश्चित रूप से सबधित वस्तु के अन्य धम भी है। इन धर्मों को कहा नही जा रहा है क्योकि शब्द सभी धर्मों को युगपत सकेतित नही कर सकते। यानी स्यात् शब्द केवल इस बात का सूचक है कि कहने के बाद भी बहुत कुछ अनकहा रह गया है। इस प्रकार वह सभावना अनिश्चय भ्रम आदि का द्योतक नही सुनिश्चितता और सत्य का प्रतीक है। वह अनेकान्त चिन्तन का वाहक है और हम धोख से बचाता है।

---

* भाषा पदार्थों को अपूण और यथार्थ रूप मे लक्षित करती है। (मिशेल ब्रीएल सीमेंटिक्स पृ १७१)

महावीर ने अनेकान्त को यदि चिन्तन और वाणी का ही विषय बनाया होता तो हमे उससे विशेष लाभ नही था । अनेकान्तवाद और उसका भाषिक प्रतिनिधि स्याद्वाद अनेक वादो मे एक वाद और बन जाता । उसकी किताबी महत्ता ही होती लेकिन महावीर किताबी व्यक्ति थे ही नही । दर्शन और ज्ञान तो उनके लिए रास्ता था । इस रास्ते से वे चरित्र तक पहुँचे थे । मुक्ति का मार्ग भी उन्होने इसी प्रकार निरूपित किया है— सम्यग् दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग । यहाँ चारित्र्य सर्वोच्च स्थान पर है । उस पर विशेष बल है । यह स्वाभाविक ही था कि ऐसा व्यक्ति अनेकान्त चिन्तन को आचार का विषय भी बनाता । अनेकान्त चिन्तन ही आचार मे अहिंसा के रूप मे प्रकट हुआ ।

अपने अहंकार के कारण हम अपने आप को ही विराट समझते है । शायद हम अपने आपको अपेक्षाकृत अधिक देख पाते है इसलिए अन्य वस्तुओ की तुलना मे जिन्हे हम अधिक नही देख पाते अपने आपको बडा मान बैठते है । महावीर ने वस्तु की विराटता को उसके अनेक गुण बदलती पर्याया और नाना धर्मात्मकता के आधार पर इस प्रकार स्पष्ट किया कि हमे उसके लिए—दूसरो के लिए हाशिया छोडना पडा । उन्होने न तो आदेश दिया न वस्तु के धर्म को अव्याकृत कह कर अव्याख्यायित रहने दिया—उन्होने वस्तु स्वरूप की विराटता से हम परिचित कराया । उन्होने विषय का ऐसा विवेचन किया कि हमने अहिंसा को अपने भीतर मे उपलब्ध कर लिया । अहिंसा का यदि अनेकान्त के रूप मे उन्होने वैचारिक आधार न दिया होता तो वे एक दार्शनिक निराशा की सृष्टि करते । बिना वैचारिक आधार के अहिंसा बहुत दिन तक टिक नही पाती । उसका भी वही हश्र होता जो बहुत से विचारहीन आचारो का होता है । इसके विपरीत यदि अनेकान्त केवल विचार का ही विषय रहता तो वह पण्डितो के वाद विवाद तक ही सीमित होकर रह जाता ।

यही अनेकान्त समाज व्यवस्था के क्षेत्र मे अपरिग्रह का रूप ग्रहण करता है । इस प्रकार एक निजी आचार तक ही वह सीमित नही है । सम्पत्ति का संग्रह हिंसक कार्य तो है ही वह एकान्त और अस्याद्वादी कार्य भी है । जब हम अपने लिए संग्रह करते है तो दूसरो की सापेक्षता मे कुछ सोचते ही नही है । अपने आपको महत्त्व केन्द्र मान लेते है । दूसरो के लिए हाशिया न छोडने के कारण विस्फोट और क्रान्ति होना स्वाभाविक है । महावीर के समय से आज का समय अधिक जटिल है । आज हम अधिक जटिल और परोक्ष अर्थ तथा राजव्यवस्था के अन्तर्गत रह रहे है । हम पता ही नही चलता और हमारी सम्पत्ति तथा सत्ता अन्य हाथो मे केन्द्रित हो जाती है । इन हाथो के स्वामी एक स्वयं के द्वारा संचालित जयजयकार मे घिर जाते है । मालाएँ अभिनन्दन चमचे भाट अफसर और चपरासी सट्टा और काला बाजार उन्हे सर्वज्ञ बना देते है । यह अपनी औकात को भूलना है । वस्तु के स्वरूप की नासमझी है । यहाँ आम आदमी को केवल एक ही कोण से देखा जा रहा है । और उसे असहाय समझा जा रहा है । यह उसका दोष नही हमारी दृष्टि का दोष है । काश,

(शेष पृष्ठ १९० पर)

जैन भक्ति

अहेतुक भक्ति-मार्ग

एक ही आत्मा के दो रूप—एक, मिथ्यात्व मे डूबा है किन्तु जगकर अन्तरात्मा होकर, दूसरा रूप शुद्ध विशुद्ध परमात्मा की ओर मुडता है। जीवन मे बहुत मोड आते हैं किन्तु आत्मा का यह मोड अनोखा होता है—सुहाग और ललक-भरा। प्रिय मिलन की ललक, कौन तुलना कर सका है उसकी ? अनिर्वचनीय की पियास जिसमे जग गयी वह स्वय अवक्तव्य हो जाता है।

—डा प्रमसागर जैन

जैनग्रन्था म भक्ति से मुक्ति वाली बात एकाधिक स्थलो पर मिलती है। जैन आचार्यों ने इस सिद्धान्त रूप मे स्वीकार किया तो जैन कविया ने स्थान-स्थान पर भगवान से भक्ति की याचना की। उनकी याचना विफल हुई हो एसा नही है। उन्हें मुक्ति मिलने का पूण विश्वास था और वह पूरा हआ। भक्ति तो वैष्णव शैव ईसाई पारसी सभी भक्तो का उनके आराध्य देवो ने दी किन्तु यहाँ थोडा-सा अन्तर है। गज का ग्राह से बचाने के लिए जैसे विष्ण विष्णु लोक स दौड आये वैसे जैन भगवान नही दौडता। वह अपने स्थान से हिलता भी नही। इस पर एक भक्त तो बिलाप करते हुए कह उठा— जो तुम मोख देत नहिं हमको कहो जाय किहि डरा। किन्तु जिनदेव पसीजे नही। एक दूसरे स्थान पर एक दूसरे कवि ने कहा— जगत मे सो देवन को देव। जासु चरन परसें इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव। यहाँ भी भगवान दौडकर नही आया। भक्त स्वय गया चरणो का स्पर्श किया और उसे मुक्ति मिल गयी। वास्तविकता यह है कि जिनेन्द्र कर्त्ता नही है फिर वे मुक्ति देने का काम भी नहीं कर सकते तदपि जैन भक्त कवि उनसे मुक्ति मागते रहे और वह उन्हें मिलती भी रही कैसे ?

एक प्रश्न है, जिसका उत्तर, जैन भक्ति को जैनेतर भक्ति से पृथक् कर देता है। इस प्रश्न पर आचार्य समन्तभद्र ने गहराई से सोचा था। उनका कथन है कि जैनप्रभु कुछ नहीं देता, दे नही सकता, क्योकि उसमे कर्तृत्व-शक्ति नही है, फिर भी उसके पुण्य-गुणो के स्मरण से मन पवित्र हो जाता है। मन के पवित्र होने का अर्थ है कि वह ससार से पराङमुख होकर जिनेन्द्र की ओर उन्मुख हो जाता है। दूसरी बात, मन के मुडते ही दुरिताञ्जन स्वत दूर हो जाते है। दुरिताञ्जन ही कर्म है। उनके दूर होने का अर्थ है—कर्मों से छुटकारा। इसी को मुक्ति कहते हैं। यह सब होता है मन के पावन होने से और यह पावनता आती है जिनेन्द्र-स्मरण से। भगवान् कुछ नही देता, किन्तु उसके स्मरण-मात्र से मन पवित्र तो होता है। यही है वह बात जिससे जीव सब कुछ पा जाता है।

दूसरा प्रश्न है—जिनेन्द्र के स्मरण से मन पावन क्यो होता है? जिनेन्द्र के स्मरण का सीधा-साधा अर्थ है—मन का जिनेन्द्र की ओर मुडना। मुडना ही मुख्य है। इसी को हठवादी तान्त्रिक परम्परा मे मूलाधार कुण्डलिनी का जगना कहते है। जब मन एक बार मुड गया है जिनेन्द्र के स्मरण का आनन्द पा लिया है तो वह बार-बार लौटकर भी, पुन-पुन मुडने को ललकता है। यह ललक ही बडी बात है। यही आगे चलकर मन को स्थायी रूप मे मोड देती है। स्थायी रूप से मुडने का अथ है जिनेन्द्र का दर्शन और तादात्म्य। इसे रहस्यवादी परम्परा म तीसरी और चौथी अवस्था कहते है। पहली अवस्था है मुडना और दूसरी दशा है बार-बार मडने की ललक। एक बार जब आराध्य का दर्शन हो जाता है तो तादात्म्य हुए बिना रहता नही। कबीर की बहुरिया यह कहती रही—"धनि मैली पिउ उजरा किहि विधि लागू पाय। किन्तु उसका ऐसा सोचना चल ही रहा था कि वह पिउ मे तद्रूप हो गयी। जैनकवि बनारसीदास के—"बालम तुहु तन चितवत गागरि फूटि अचरा गौ फहराय सरम गै छूटि।" मे भी यही भाव है। मन के आराध्य पर स्थायी रूप से टिकने के बाद वह तन्मय हुए बिना नही रहता। फिर "पिय मेरे घट मै पिय माहि। जल-तरग ज्यो दुविधा नाहि।" से दोनो एक हो जाते है।

यहाँ रहस्यवादी परम्परा से स्पष्ट अन्तर है। जैनाराध्य 'पर' नही है। वह 'स्व' ही है। जो जिनेन्द्र है वही स्वात्मा का स्वरूप है। दोनो मे कोई अन्तर नही है। आचार्य योगीन्दु ने परमात्म प्रकाश म "जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहि णिवसइ देउ। तेहउ णिवसइ बभु परु देहहँ म करि भेउ॥ कह कर आत्मा और सिद्ध का स्वरूप एक माना है। उनकी दृष्टि मे सिद्ध और ब्रह्म पर्यायवाची हैं एक हैं, समान है, तो फिर इसका अर्थ हुआ कि वे आत्मा और ब्रह्म को एक समान मानते हैं। इसी को जैन हिन्दी कवि भट्टारक शुभचन्द्र ने तत्त्वसारदूहा मे 'चिद्रूप चिता चेतन रे साक्षी परम ब्रह्म।' कवि बनारसीदास ने नाटक समयसार मे, "सोहै घट मन्दिर मे चेतन प्रगट रूप, ऐसो

जिनराज ताहि वंदत बनारसी।" और भैय्या भगवतीदास ने 'ब्रह्मविलास' में, "सिद्ध के समान है विराजमान चिदानन्द, ताही को निहार निजरूप मान लीजिए।।" कहकर सिद्ध किया है।

तीसरा प्रश्न है कि जब आत्मा और परमात्मा का स्वरूप अभिन्न है, दोनो एक समान हैं, तो कौन किसकी ओर मुड़ता है और क्यो मुड़ता है? आचार्य पूज्यपाद ने 'समाधितन्त्र' मे आत्मा के तीन भेद बताये हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। बहिरात्मा वह है जो ब्रह्म के स्वरूप को नही देख सकता, परद्रव्य मे लीन रहता है और मिथ्यावन्त है। अन्तरात्मा मे ब्रह्म को देखने की शक्ति तो उत्पन्न हो जाती है, किन्तु वह स्वयं पूर्ण शुद्ध नही होता। परमात्मा आत्मा का वह रूप है, जिसमे शुद्ध स्वभाव उत्पन्न हो गया है और जिसमे सब लोकालोक झलक उठे है। अनुभूति-क्रिया मे आत्मा के दो ही रूप काम करते हैं, एक तो वह जो अभी परमात्मपद को प्राप्त नही कर सका है और दूसरा वह जो परमात्मा कहलाता है। पहला अनुभूति-कर्त्ता है और दूसरा अनुभूति तत्त्व। पहला मुड़ता है और दूसरा वह लक्ष्य है, जहाँ उसे पहुँचना है। एक ही आत्मा के दो रूप—एक मिथ्यात्व मे डूबा है किन्तु जगकर अन्तरात्मा होकर, दूसरे रूप—शुद्ध-विशुद्ध परमात्मा की ओर मुडता है। जीवन मे बहुत मोड आते हैं, किन्तु आत्मा का यह मोड अनोखा होता है—सुहाग और ललक-भरा। प्रिय-मिलन की ललक, कौन तुलना कर सका है उसकी। अनिर्वचनीय की पियास जिसमे जग गयी, वह स्वय अवक्तव्य हो जाता है, कौन कह सका है उसे?

कबीर की आत्मा भी ब्रह्म की ओर मुडी है, किन्तु थोडा-सा अन्तर है। कबीर ने जिस आत्मा का निरूपण किया है, वह विश्व-व्यापी ब्रह्म का खण्ड अश है, जबकि जैन कवियो की आत्मा कर्म-मल को धोकर स्वय ब्रह्म बन जाती है, वह किसी अन्य का अश नही है। उसे अपने से भिन्न किसी 'पर' के पास नही जाना होता। वह स्वय आत्मा है और स्वय परमात्मा। मन जब ससार की ओर मुड़ा रहता है, तब आत्मा मिथ्यावन्त है, साधारण संसारी जीव है और जब मन अपने ही शुद्ध-विशुद्ध परमानन्द रूप की ओर मुड उठता है तो वह पहले अन्तरात्मा और फिर परमात्मा बन जाता है।

चौथा प्रश्न है कि जैन भक्त ऐसे भगवान् के चरणो मे अपने श्रद्धा-पुष्प चढ़ाता है, जो स्वयं वीतरागी है, अर्थात् राग-द्वेषो से रहित है। वीतरागी होने से पूजा का उस पर प्रभाव नहीं पडता और विवान्तवैर होने से निन्दा से वह विचलित नही होता। ऐसे भगवान् की पूजा, भक्ति, उपासना, अर्चना आदि करने से लाभ क्या है? वह मोक्ष में बैठा है। यहाँ आ नही सकता। भक्त के दु ख दूर नही कर सकता। फिर ऐसे वीतरागी से राग का अर्थ क्या है? राग कैसा ही हो, भले ही वीतरागी मे किया गया हो, कर्मों के आस्रव (आगमन) का कारण है। इसका उत्तर देते हुए आचार्य समन्तभद्र

ने लिखा है, "पूज्य भगवान् जिनेन्द्र की पूजा करते हुए, अनुराग के कारण जो लेश-मात्र पाप का उपार्जन होता है, वह बहु पुण्यराशि मे उसी प्रकार दोष का कारण नही बनता, जिस प्रकार कि विष की एक कणिका शीत शिवाम्बु राशि को—ठण्डे कल्याणकारी जल से भरे हुए समुद्र को दूषित करने मे समर्थ नही होती है।" अर्थात् जिनेन्द्र मे अनुराग करने से लेश-मात्र ही सही, पाप तो होता है, किन्तु पुण्य इतना अधिक होता है कि वह रञ्चमात्र पाप उसको दूषित करने की सामर्थ्य नही रखता। आचार्य कुन्दकुन्द ने वीतरागियो मे अनुराग करने वाले को सच्चा योगी कहा है। उनका यह भी कथन है आचार्य, उपाध्याय और साधु मे प्रीति करने वाला सम्यग्दृष्टि हो जाता है, अर्थात् उनकी दृष्टि मे वीतरागी मे किया गया अनुराग, यत्किञ्चित् भी पाप का कारण नही है।

वीतरागी परमात्मा 'पर' नही है, वह 'स्व आत्मा' ही है। योगीन्द्र का कथन है, "एहु जु अप्पा परमप्पा, कम्म-विसेसे जायउ जप्पा।" परमानन्द स्वभाव वाले भगवान् जिनेन्द्र को योगीन्दु ने परमात्मा कहा और वह ही स्व आत्मा है, ऐसा भी कहा। उन्होने लिखा है 'जो जिणु केवल णाणमउ परमाणद महाउ। सो परमप्पउ परम-पर सो जिय अप्प सहाउ।।' अत जिनेन्द्र मे अनुराग करना अपनी आत्मा मे ही प्रेम करना है। आत्म-प्रेम का अर्थ है—आत्मसिद्धि, जिसे योग कहते है। जिनेन्द्र का अनुराग भी मोक्ष देता है। आचार्य पूज्यपाद ने, आठ कर्मों का नाश कर आत्मस्वभाव को साधने वाले भगवान् सिद्ध से मोक्ष की प्रार्थना की है। उन्होने यह भी लिखा है कि भगवान् जिनेन्द्र का मुख देखने मे ही मुक्ति-रूपी लक्ष्मी का मुख दिखायी पडता है, अन्यथा नही।

पाँचवां प्रश्न भक्ति के क्षेत्र मे सौदेबाजी से सम्बन्धित है। जो जीव भक्ति करेगा भगवान् उसे कुछ देगा—इहलौकिक सब कुछ। कबीर ने इसे कभी स्वीकार नही किया। वे एक मस्त जीव थे। लेन-देन से उनका कोई सम्बन्ध नही था। इस प्रवृत्ति को पनपाने के लिए जिस बीज की आवश्यकता होती है वह कबीर मे था ही नही। वे तो बिना कुछ मागे पूर्ण आत्म-समर्पण के पक्ष मे थे। उनका पूर्ण विश्वास था कि मन को 'बिसमल' किये बिना ब्रह्म के दर्शन नही हो सकते। जब तक सर नही दोगे ब्रह्म नही मिलेगा। कबीर का कहना था कि ब्रह्म मे मन लगा देने से, मन का मलीमस स्वत दूर हो जाता है। ऐसा नही कि पहले मल दूर करो तब ब्रह्म आयेगा। सर काट कर हाथ पर रख लो, यही मुख्य है। सर मैला है कि साफ, यह देखने की आवश्यकता नही है। सर कटने ही समर्पण पूरा हो जाएगा, और तभी ब्रह्म भी प्राप्त हो सकेगा। इसे कहते है—बिला शर्त समर्पण। इसे ही अहैतुक प्रेम अथवा अहैतुकी भक्ति कहते है।

अहैतुकता जैसी जैन भक्ति-मार्ग मे बन पाती है, अन्यत्र नही। जैन भगवान् विश्व का नियन्ता नही है, वह मुक्त है, अकर्त्ता है। वह नितान्त वीतरागी है। वह दृष्टा

भर है। ऐसे भगवान् की भक्ति कोई भी भक्त निष्काम होकर ही कर सकता है। कुछ न देने वाले का दर्शनाकांक्षी निष्काम होगा ही, यह सत्य है। ऐसे प्रभु की दर्शनाकांक्षा भी होती है, तो वह कहाँ टिके ? प्रश्न यह है। एक सहारा है—वीतरागी के गुण, अर्थात् उसकी वीतरागता। निष्काम भक्त को वही भाती है। और वह वीतरागता स्वयं भक्त मे मौजूद है, छिपी पडी है। वीतरागी के दर्शन से उसे ढूँढने की प्रेरणा मिलती है—स्वत इतना ही है। शर्त को कोई स्थान नही। लेन-देन से कोई मतलब नही।

दूसरी बात, जैन भक्त को समर्पण करने अन्यत्र नही जाना पडता। वहाँ तो 'स्व' के प्रति 'स्व' को समर्पित करना होता है। जीवात्मा मे परमात्म-रूप होने की भावना ज्यो ही जगती है, वह परमात्मा बन जाती है। जैसे सूर्य के प्रतापवान होने पर घन-समूह को विदीर्ण होना ही पडता है और सूर्य निराबाध ज्योतिवन्त हो उठता है, जैसे द्वितीया के चन्द्र के आगमन की इच्छा होते ही अमा की निशा को मार्ग देना ही पडता है और उसकी शीतल किरणे चतुर्दिक् विकीर्ण हो जाती हैं, जैसे नदी की धार मे मरोड आते ही पत्थरो को चूर्ण-चूर्ण होना ही पडता है और वह एक स्वस्थ प्रवाह लिए बह उठती है, वैसे ही आत्मा मे समर्पण-भाव के उगते ही परमात्म-प्रकाश उदित हो उठता है। जब समर्पण के सहारे आत्मा स्वयं ब्रह्म बन सकती है, तो उसे अपना समर्पण सहैतुक बनाने की क्या आवश्यकता है ? सहैतुक तो वहाँ हो, जहाँ द्वित्व हो, जहाँ भेद हो, पृथक्करण हो। यहाँ तो एक ही चीज है। 'स्व' के प्रति 'स्व' का यह समर्पण जितना अहैतुक हो सकता है, अन्य नही।

निष्काम भक्ति ही काम्य है। श्रीमद् भगवत् गीता में भक्ति की निष्कामता पर सर्वाधिक बल दिया गया है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' इसी की एक कडी है। गीता ने सन्यास इसी को कहा, जिसमे काम्य कर्मों का न्यास हो। सच्चा त्याग वही है, जिसमे सर्वकर्म-फल-त्याग हो, जैसे—"काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदु। सर्वकर्मफलत्याग प्राहुस्त्यागो विचक्षणा।" इसी निष्कामता को लेकर गाधीजी ने अनासक्ति योग-जैसे महान् ग्रन्थ की रचना की थी। जब तक निष्कामता न होगी, अनासक्ति हो ही नही सकती। अनासक्त हुए बिना फल-त्याग असम्भव है। चिपकन तभी तक है, जब तक फल-प्राप्त करने की लालसा है। यदि कर्म मुख्य और फल गौण हो जाए तो व्यक्ति और समाज ही नही, राष्ट्र भी समुन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। फल गौण होता है अनासक्ति से और अनासक्ति आती है निष्कामता से। जैन ग्रन्थो मे उसके सूत्र बहुत हैं। स्थान-स्थान पर प्राप्त होते हैं।

जैन भक्ति-मार्ग की विशेषता है—ज्ञानमूलकता। ज्ञान-बिना भक्ति अन्ध है और भक्ति के बिना ज्ञान शुष्क है, असाध्य और असम्भव। जिस मानव-जीवन को हम ज्ञान के सूक्ष्म निराकार तन्तु से जोड़ना चाहते हैं, वह सरस पथ का अनुयायी है। वह अनुभूतिमय है, भाव और भावना-युक्त। इनको सहज रूप से सहेज कर ही

भक्ति ज्ञान से मिलती है। शायद जैनाचार्यों ने इसी कारण अपने प्रसिद्ध सूत्र 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग ' मे सम्यग्दर्शन को प्रथम स्थान दिया है। दर्शन का अर्थ है श्रद्धा। कोरी श्रद्धा नहीं, उसे सम्यक् पद से युक्त होना ही चाहिये। आचार्य समन्तभद्र सुश्रद्धा के पक्षपाती थे। यहाँ सु सम्यक्त्व का द्योतक है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान दोनो एक दूसरे के आश्रित हैं। अन्योन्याश्रित हैं। एक दूसरे के बिना अधूरे हैं।

दोनो मे जैसा समन्वय जैन काव्यो मे निभ सका, अन्यत्र नही। इसका कारण है–स्वात्मोपलब्धि। स्वात्मा का अर्थ है वह आत्मा जो अष्टकर्मों के मलीमस् से छूट कर विशुद्ध हो चुकी है। वही सिद्ध कहलाती है। उसे निष्कल भी कहते हैं। वह निराकार, अदृष्ट और अमूर्त्तिक होती है। सिद्ध के रूप मे और इस देह मे विराजमान शुद्ध आत्म चैतन्य मे कोई अन्तर नही है। यही स्वात्मा पचपरमेष्ठी मे होती है। पचपरमेष्ठी मे सिद्ध की बात की जा चुकी है, वह निराकार और अदृष्ट है, किन्तु अवशिष्ट चार परमेष्ठी–अर्हन्त, आचार्य, उपाध्याय और साधु साकार, दृष्ट और मूर्त्तिक होते है, किन्तु 'स्वात्मा' की दृष्टि से दोनो मे कोई अन्तर नही है। अत चाहे ज्ञानी अपने समाधि-तेज मे उस आत्मा मे अभेद की स्थापना करे अथवा भक्त भगवन्निष्ठा से वहाँ तक पहुचे, एक ही बात है। दोनो को अनिर्वचनीय आनन्द का स्वाद समान रूप से मिलता है। साकार और निराकार के मूलरूप मे कोई अन्तर नही है, एसा जैनाचार्यों ने एकाधिक स्थलो पर लिखा। इसी कारण उनकी दृष्टि मे आत्मनिष्ठा और भगवन्निष्ठा मे कोई अन्तर नही है।

ज्ञान और भक्ति के ध्यान की बात भी अप्रासगिक नही होगी। श्रमणधारा आज से नही, युग-युग से ध्यान और भक्ति मे एकरूपता मानती रही है। आचार्य उमास्वाति ने "एकाग्र्य चिन्तानिरोधो ध्यानम्" कहा, तो आचार्य पूज्यपाद ने "नानार्थावलम्बनेन चिन्तापरिस्पन्दवती, तस्यान्याशेषमुखेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन्नग्रे नियम एकाग्रचिन्तानिरोध इत्युच्यते। अनेन ध्यानस्वरूपमुक्त भवति।" लिखा। सार है कि मन को सब चिन्ताओ से मुक्त करके एक मे केन्द्रित करना ध्यान है, अर्थात् मन को आत्मा मे केन्द्रित करने को ध्यान कहते हैं। भक्त भक्ति के द्वारा अपने इष्टदेव मे मन को टिकाता है। नानार्थावलम्बनेनपरिस्पन्दवती चिन्ता मे मन को व्यावर्त्य करना दोनो को अभीष्ट है। उसके बिना मन न तो इष्टदेव पर टिकता है और न आत्मा पर केन्द्रित होता है। इस प्रकार भक्ति और ध्यान मे कोई अन्तर नही है। आचार्य कुन्दकुन्द की दृष्टि मे, "पंचपरमेष्ठी का चिन्तवन, आत्मा का ही चिन्तवन है।" आचार्य योगीन्दु ने भी लिखा है, "जो जिन भगवान् है, वह ही आत्मा है, यह ही सिद्धान्त का सार समझो।" श्री देवसेन ने आधार की दृष्टि से, 'भावसग्रह' नाम के ग्रन्थ मे, ध्यान के दो भेद किये हैं–सालम्ब ध्यान और निर-

वलम्ब ध्यान। सालम्ब ध्यान वह ही है, जिसमें मन को पंचपरमेष्ठी पर टिकाना होता है। इसी भाँति आचार्य वसुनन्दि ने ध्यान और भावपूजा को एक मान कर, ध्यान और भक्ति की एकता सिद्ध की है। पूजा भक्ति का मुख्य अंग है। उसके दो भेद हैं—भावपूजा और द्रव्यपूजा। भावपूजा परम भक्ति के साथ जिनेन्द्र के अनन्तचतुष्टय आदि गुणों पर मन को केन्द्रित करना है।

सामायिक एक ध्यान ही है। आचार्य समन्तभद्र ने मन को ससार से हटाकर आत्मस्वरूप पर केन्द्रित करने को सामायिक कहा है। ध्यान होने से सामायिक भी भक्ति ही है। पं जयचन्द्र छाबड़ा ने 'चरित्रपाहुड' का अनुवाद करते हुए एक स्थान पर लिखा है, "एकान्त स्थान में बैठकर अपने आत्मिक स्वरूप का चिन्तवन करना अथवा पंचपरमेष्ठी का भक्तिपाठ पढना सामायिक है।" आचार्य सोमदेव ने भी 'यशस्तिलक' मे स्नान, पूजन, स्तोत्र, जप, श्रुतस्तव और ध्यान की एकता सिद्ध करते हुए सभी को सामायिक कहा है। आचार्य श्रुतसागरसूरि ने एकाग्र मन से देव-वन्दना को सामायिक मान कर भक्ति की ही प्रतिष्ठा की है। आचार्य अमितगति का सामायिक पाठ तो भक्ति-पाठ ही है।

जैनाचार्यों ने समाधि को उत्कृष्ट ध्यान के अर्थ मे लिया है। उनके अनुसार चित्त का सम्यक् प्रकार से ध्येय मे स्थित हो जाना ही समाधि है। समाधि मे निर्विकल्पक अवस्था तक पहुँचने के पूर्व मन को पचपरमेष्ठी पर टिकाना अनिवार्य है। भक्त भी अपना मन पंचपरमेष्ठी मे तल्लीन करता है, अत· दोनो अवस्थाओ मे कोई अन्तर नही है। आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राकृत मे और आचार्य पूज्यपाद ने सस्कृत मे 'समाधिभक्ति' की रचना की है। इस भक्ति मे समाधि, समाधिस्थो और समाधि-स्थलो के प्रति सेवा, श्रद्धा और आदर-सत्कार का भाव प्रगट किया गया है।

तो, ज्ञान और भक्ति का जैसा समन्वित रूप जैन ग्रन्थों मे देखने को मिलता है, अन्यत्र नही। बनारसीदास की सुमति ने भक्ति बन कर जिस आराध्य को साधा वह निराकार था और साकार भी, एक था और अनेक भी, निर्गुण था और सगुण भी। इसी कारण जैनकवियों ने सगुण का समर्थन करने के लिए निर्गुण का खण्डन नही किया और निर्गुण की आराधना के लिए सगुण राम पर रावण की हत्या का आरोप नही लगाया। वे निर्द्वन्द्व हो दोनो के गीत गा सके। कवि बनारसीदास ने "नाना रूप भेष धरे भेष को न लेस धरे, चेतन प्रदेस धरे चेतना को खंध है।" कह कर साकार कहा और निराकार भी। इसी भाँति उन्होंने एक ही ब्रह्म को "निर्गुण रूप निरञ्जन देवा, सगुण स्वरूप करें विधि सेवा।" लिख कर निर्गुण कहा और सगुण भी। यह एक अनेकान्तात्मक परम्परा थी, जो बनारसी को जन्म से मिली थी। इस परम्परा का जाने और अनजाने कबीर पर भी प्रभाव पड़ा, ऐसा उनके काव्य से सिद्ध है। कबीर को निर्गुण ब्रह्म का उपासक कहा जाता है। निर्गुण का

अर्थ है गुणातीत। गण का अर्थ है---प्रकृति का विकार--सत्व रज और तम। संसार इस विकार से सयुक्त है और ब्रह्म इससे रहित किन्तु कबीरदास ने विकार-सयुक्त ससार के घट घट मे निगण ब्रह्म का वास दिखा कर सिद्ध किया है कि गुण 'निगुण का और निगुण गुण का विरोधी नही है। उन्होने निरगुन' मे गन और गुन मे 'निरगुन को ही सत्य माना अवशिष्ट सब को धोखा कहा अर्थात कबीरदास ने सत्व रज तम से रहित होने के कारण ब्रह्म को निगुण और सत्व रज-तम रूप विश्व के कण-कण मे व्याप्त होने की दष्टि से सगण कहा। उनका ब्रह्म भीतर से बाहर और बाहर से भीतर तक व्याप्त था। वह अभाव रूप भी था और भाव रूप भी निराकार भी था और साकार भी द्वैत भी और अद्वैत भी। जैसे अनेकात मे दो विरोधी पहल अपेक्षाकृत दष्टि से निभ पाते हैं वैस कबीर के ब्रह्म म भी थ। वास्तविकता यह है कि कबीरदास को अनेकान्त और उसक पीछ छिपा सिद्धान्त न ता किसी ने समझाया और न उसके समझने से उनका कोई मतलब ही था। कबीर सिद्धान्तो के घरे मे बधने वाले जीव नही थे। उन्होने सदव सुगंध को पसन्द किया एसी सुगधि जो सर्वोत्तम थी। वह कहाँ स आ रही थी किसकी थी इसकी उन्होने कभी चिन्ता नही की।

अनेकान्त का यही स्वर अपभ्रश के जनदूहाकाव्य म पूण रूप स वत्तमान हैं। कबीर ने जिस ब्रह्म को निगण कहा योगीन्द के परमात्मप्रकाश मे उस निष्कल सज्ञा से अभिहित किया गया था। निष्कल की परिभाषा बताते हुए टीकाकार ब्रह्म देव ने पचविधशरीररहित लिखा। महचन्द ने भी अपने पाहुडदोहा म निष्कल शब्द का प्रयोग इसी अर्थ म किया है। शरीर रहित का अर्थ है--नि शरीर देह रहित अस्थल निराकार अमूत्तिक और अलक्ष्य। प्रारम्भ मे योगीन्द ने इसी निष्कल को निरञ्जन कह कर सम्बोधित किया है। उन्होने लिखा है--- जिसके न वण होना है न गध न रस न शब्द न स्पश न जम और न मरण वह निरञ्जन कहलाता है। निरञ्जन का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है। वस निष्कल के अनेक पर्यायवाची हैं। उनमे आत्मा सिद्ध जिन और शिव का स्थान स्थान पर प्रयोग मिलता है। मनि रामसिह ने समचे पाहुडदोहा म कवल एक स्थान पर निगण शब्द लिखा है। उन्होने उसका अथ किया है---निलक्षण और नि सग। वह निष्कल स मिलता जलता है।

कबीर के निगण म गण और गण म निगण वाली बात अपभ्रश क काव्यो मे उपलब्ध होती है। योगीन्द्र ने लिखा जसु अब्भतरि जगु वसई जग अब्भतरि जो जि। एसा ही मुनि रामसिंह का कथन है तिहुयणि दीसइ देउ जिण जिणवर तिहुवण एउ। अर्थात त्रिभुवन मे जिनदेव दिखता है और जिनवर मे यह त्रिभुवन। जिनवर मे त्रिभवन ठीक वैसे ही दिखता है जैसे निमल जल मे ताराओ का समूह प्रतिबिम्बित होता है।

त्रिभुवन मे जिनदेव की व्याप्ति विचार का विषय है। त्रिभुवन का अर्थ है– त्रिभुवन मे रहने वालों का घट-घट। उसमें निर्गुण या निष्कल ब्रह्म रहता है। निष्कल है पवित्र और घट-घट है अपवित्र, कलुष और मैल से भरा। कुछ लोगों का कथन है कि ब्रह्म गन्दी जगह पर नहीं रह सकता, अत पहले उसको तप, संयम या साधना, किसी भी प्रक्रिया से शुद्ध करो, तब वह रहेगा, अन्यथा नहीं। कबीर का कथन था कि राम के बसते ही घट स्वत पवित्र हो जाएगा। मैल अपने आप छूट जाएगा और कलुष स्वय चुक कर रह जाएगा। उन्होंने लिखा–"ते सब तिरे राम रसवादी, कहे कबीर बूडे बकवादी।" उनकी दृष्टि मे विकार की लहरो से तरगायित इस ससार-सागर से पार होने के लिए राम रूपी नैय्या का ही सहारा है। कबीर से बहुत पहले मुनि रामसिंह ने भीतरी चित्त के मैल को दूर करने के लिए, "अब्भितरि चित्ति व मइलियइं बाहरि काइ तवेण। चित्ति णिरजणु को वि धरि मुच्चहि जेम मलेण।।" के द्वारा निरञ्जन को धारण करने की बात कही थी। उन्होने यह भी लिखा कि जिसके मन मे परमात्मा का निवास हो गया, वह परम-गति पा लेता है। एक स्थान पर तो उन्होंने कहा कि जिसके हृदय मे जिनेन्द्र मौजूद है, वहाँ मानो समस्त जगत् ही सचार करता है। इसके परे कोई नही जा सकता। इसी प्रकार आचार्य योगीन्दु का कथन है—"जिसके मन मे निर्मल आत्मा नही बसती, उसका शास्त्र-पुराण और तपश्चरण से भी क्या होगा?" अर्थात् निष्कल ब्रह्म के बसने से मन शुद्ध हो जाएगा और गन्दगी स्वत विलीन हो जाएगी। मन निरञ्जन को पाते ही मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। इसके सिवा, तन्त्र और मन्त्र उसे मोक्ष नही दिला सकते। महचन्द ने अपने 'पाहुडदोहा' मे लिखा है, "निष्कल परम जिन को पा लेने से जीव सब कर्मों से मुक्त हो जाता है, आवागमन से छूट जाता है और अनत सुख प्राप्त कर लेता है।' अर्थात् कलुष स्वत हट जाता है– रहता ही नही।

जैन भक्ति का एक विशेष पहलू है—दिव्य अनुराग। इसे यदि भगवत्प्रेम कहे तो अनुचित न होगा। यहाँ राग और प्रेम पर्यायवाची हैं। इसी को शाण्डिल्य ने 'परानुरक्ति' कहा है। परानुरक्ति गम्भीर अनुराग को कहते हैं। गम्भीर अनुराग ही प्रेम कहलाता है। चैतन्य महाप्रभु ने रति अथवा अनुराग के गाढे हो जाने को 'प्रेम' कहा है। 'भक्ति रसामृतसिन्धु' मे लिखा है "सम्यङ मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कित। भाव स एव सान्द्रात्मा बुधै प्रेम निगद्यते।" इन सब से पूर्व, अर्थात् विक्रम की छठी शताब्दी मे आचार्य पूज्यपाद ने "अर्हदाचार्येषु बहुश्रुतेषु प्रवचने च भाव विशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्ति।" अर्थात् अर्हन्त, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचन मे भावविशुद्धि-युक्त अनुराग ही भक्ति है—लिखा था। विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी के एक जैन आचार्य सोमदेव का कथन है, 'जिन, जिनागम और तप तथा श्रुत मे पारायण आचार्य में सद्भाव विशुद्धि से सम्पन्न अनुराग भक्ति कहलाता है।

जैन आचार्यों ने राग को बन्ध का कारण कहा है, किन्तु वही, जहाँ वह 'पर' मे किया गया हो। वीतराग परमात्मा 'पर' नही, 'स्व' आत्मा ही है और आत्म प्रेम का अर्थ है–आत्मसिद्धि, जिसे मोक्ष कहते है। शायद इसी कारण आचार्य पूज्यपाद ने राग को भक्ति कहा। वीतरागी के प्रति राग का यह भाव जैन भक्ति के रूप मे निरन्तर प्रतिष्ठित बना रहा। भक्त कवियो ने उसी को अपना आधार माना।

हिन्दी के जैन भक्ति-काव्य मे यह रागात्मक भाव जिन अनेक मार्गों से प्रस्फुटित हुआ, उनमे दाम्पत्य रति प्रमुख है। दाम्पत्य रति का अर्थ है–पति-पत्नी का प्रेम-भाव। पति-पत्नी मे जैसा गहरा प्रेम सम्भव है, अन्यत्र नहा। तुलसीदास ने 'राम-चरितमानस मे लिखा, "कामिहि नारि पिआरि जिमि, प्रिय लागहु मोहि राम।" शायद इसी कारण दाम्पत्य रति को रागात्मक भक्ति मे शीर्ष स्थान दिया गया है।

हिन्दी के जैन कवियों ने चेतन को पति और सुमति को पत्नी बनाया। पति के विरह म पत्नी बेचैन रहती है वह सदैव पति-मिलन की आकाक्षा करती है। पति-पत्नी के प्रेम मे जो मर्यादा और शालीनता होती है, जैन कवियो ने उसका पूर्ण निर्वाह 'दाम्पत्य रति वाले रूपको म किया है। कवि बनारसीदास की 'अध्यात्मपद-पक्ति, भैय्या भगवतीदास की 'शत अष्टोत्तरी, मुनि विनयचन्द्र की चूनडी, द्यानतराय, भधरदास जगराम और देवाब्रह्म के पदो मे दाम्पत्य रति के अनेक दृष्टान्त है और उनमे मर्यादा का पूर्ण पालन किया गया ह। हिन्दी के कतिपय भक्ति-काव्यो मे दाम्पत्य रति छिछले प्रेम की द्योतक-भर बन कर रह गयी है। उनम भक्ति कम और स्थल सम्भोग का भाव अधिक है। भक्ति की ओट मे वासना का उद्दीप्त करना किसी भी दशा म ठीक नही कहा जा सकता। जैन कवि और काव्य इससे बचे रहे।

आध्यात्मिक विवाह भी रूपक काव्य हैं। उनम मेरुनन्दन उपाध्याय का 'जिनोदय सूरि विवाहलउ उपाध्याय जयसागर का 'नेमिनाथ विवाहलो' कुमुदचन्द्र का 'ऋषभ विवाहला और अजयराज पाटणी का 'शिवरमणी का विवाह' इस दिशा की महत्त्वपूर्ण कडियाँ है। आध्यात्मिक विवाह' जैनो की मौलिक कृतियाँ हैं। निर्गनिए सन्तो ने ऐसी रचनाएँ नही की। जैन कवियो ने आध्यात्मिक फागु भी अधिकाधिक रचे। चेतन अपनी सुमति आदि अनक पत्नियो के साथ होली खेलता रहा है। कभी-कभी पुरुष और नारी के जत्था के मध्य भी होलियाँ खेली गयी हैं। वैसे तो होलियाँ सहस्रो जैन पदो म बिखरी ह, किन्तु जैसी सरसता द्यानतराय, जगराम और रूपचन्द्र के काव्य म है, दूसरी जगह नही। चेतन की पत्नियो को चूनडी पहनने का चाव था। कबीर की बहुरिया ने भी 'चूनडी' पहनी है, किन्तु साधुकीर्ति की चूनड़ी मे सगीतात्मक लालित्य अधिक है।

नेमिनाथ और राजीमति से सम्बन्धित मुक्तक और खण्डकाव्यो मे जिस प्रेम की अनुभूति सन्निहित है, वह भी स्थूल नहीं, दिव्य ही था। वैरागी पति के प्रति यदि पत्नी का सच्चा प्रेम है, तो वह भी वैराग्य से युक्त ही होगा। राजीमती का नेमीश्वर के साथ विवाह नहीं हो पाया था कि वे भोज्य पदार्थ बनने के लिए बंधे पशुओं की करुण पुकार से प्रभावित होकर तप करने चले गये, फिर भी राजीमती ने जीवन-पर्यन्त उन्ही को अपना पति माना। ऐसी पत्नी का प्रेम झूठा अथवा वासना-मिश्रित होगा, कोई नही कह सकता।

हिन्दी की अनेक मुक्तक रचनाओ मे राजीमती के सौन्दर्य और विरह की भाव-परक अनुभूतियाँ है, किन्तु वे अपभ्रश की प्रोषितपतिकाओ से थोडा भी प्रभावित नहीं है। राजीमती सुन्दर है, किन्तु उसे अपने सौन्दर्य का कभी आभास नही होता। राजीमती विरह-प्रपीडित है, किन्तु उसे पति के सुख का ही अधिक ध्यान है। विरह मे न तो उसकी शैय्या नागिन बन सकी है और न उसने अपनी रातें ही पाटियाँ पकड कर बितायी हैं। राजशेखर के 'नेमीश्वरफागु', हर्षकीर्त्ति, हेम विजय और विनोदीलाल के 'नेमीश्वर गीतो' मे राजीमती का सौन्दर्य तथा जिनहर्ष, लक्ष्मीवल्लभ, विनोदीलाल और धर्मवर्द्धन के 'नेमि-राजीमती-बारहमासो' मे राजीमती का विरह उत्तम काव्य का निदर्शन है। कही ऊहात्मकता नही। सौन्दर्य और विरह की कही नाप-जोख नही। सब कुछ स्वाभाविक है। भावो के साँचे मे ढला।

हिन्दी के जैन कवि भगवान् के अनन्य प्रेम को जिस भाँति आध्यात्मिक पक्ष मे घटा सके, हिन्दी का अन्य कोई कवि नही कर सका। कबीर मे दाम्पत्य भाव है और आध्यात्मिकता भी, किन्तु वैसा आकर्षण नही, जैसा कि आनन्दघन मे है। जायसी के प्रबन्धकाव्य मे अलौकिक की ओर इशारा भले ही हो, किन्तु लौकिक कथानक के कारण उसमे वह एकतानता नही आ पायी है, जैसी कि आनन्दघन के मुक्तक पदो म पायी जाती है। सुजान वाले घनानन्द के बहुत-से पद 'भगवद्भक्ति' मे वैसे नही खप सके, जैसे कि सुजान के पक्ष मे घटे हैं। महात्मा आनन्दघन जैनो के एक पहुँचे हुए साधु थे। उनके पदो में हृदय की तल्लीनता है, एकनिष्ठता है, एकाग्रता है, समाधि-जैसी स्थिरता है कही द्वैध नही, अटकाव नही। एक स्थान पर उन्होने लिखा है, "सुहागिन के हृदय मे निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति से ऐसा प्रेम जगा है कि अनादिकाल से चली आने वाली अज्ञान की नीद समाप्त हो गयी। भक्ति के दीपक ने एक ऐसी सहज ज्योति को प्रकाशित किया है, जिससे अहकार स्वय पलायन कर गया और अनुपम तत्त्व सहज ही मिल गया।" एक दूसरे स्थान पर उन्होने लिखा है, "प्रेम एक ऐसा अचूक तीर है कि जिसे लगता है, वह ढेर हो जाता है। वह एक ऐसी वीणा का नाद है, जिसको सुन कर आत्मा-रूपी मृग तिनके तक चरना भूल जाता है। प्रभु तो प्रेम से मिलता है, उसकी कहानी कही नही जा सकती।"

अनन्य प्रेम मे वह शक्ति होती है कि स्वयं भगवान् भक्त के पास आते हैं। भक्त नही जाता। जब भगवान् आते हैं, तो भक्त के आनन्द का पारावार नही रहता। आनन्दघन की सुहागन नारी के नाथ भी स्वय आये हैं, और अपनी तिया को प्रेम-पूर्वक स्वीकार किया है। लम्बी प्रतीक्षा के बाद आये नाथ की प्रसन्नता में, पत्नी ने भी विविध भाँति के शृंगार किये हैं। उसने प्रेम, प्रतीति, राग और रुचि के रंग की साडी धारण की है, भक्ति की महँदी राची है और भाव का सुखकारी अंजन लगाया है। सहज स्वभाव की चूड़ियाँ पहनी हैं और थिरता का भारी कंगन धारण किया है। ध्यान-रूपी उरबसी-गहना वक्षस्थल पर पडा है, और प्रिय के गुण की माला को गले मे पहना है। सुख के सिन्दूर से माग को सजाया है और निरति की वेणी को ठीक ढग से गूँथा है। उसके घट में त्रिभुवन की सब-से-अधिक प्रकाश्य-मान ज्योति का जन्म हुआ है। वहाँ से अनहद का नाद भी उठने लगा है। अब तो उसे लगातार एकतान से पियरस का आनन्द उपलब्ध हो रहा है।"

ठीक इसी भाँति बनारसीदास की नारी के पास भी निरञ्जनदेव स्वय प्रगट हुए है। उसे इधर-उधर भटकना नही पडा। अब वह अपने खञ्जन-जैसे नेत्रो से उसे पुलकायमान होकर देख रही है। उसकी पुलक का ठिकाना नही है। वह प्रसन्नता-भरे गीत गा उठी। पाप और भय स्वत विलीन हो गये। उसका साजन असाधारण है, कामदेव-सा सुन्दर और सुधारस-सा मधुर। उसका आनन्द अनिर्वचनीय है, शाश्वत है–कभी मिटता नही, चुकता नही। सुहागन को वह अक्षय रूप से प्राप्त हुआ है। □

जैन दर्शन की सहज उद्भूति : अनेकान्त (पृष्ठ १७८ का शेष)

हम उसे अन्य कोणो से भी देख पाते। वह उतना ही नही है जितना हमे दिखायी देता है। निश्चित रूप से वह उसके अलावा भी है। वह अनन्तधर्मा विराट महाशक्ति है। उसके लिए अपनी सत्ता और सम्पत्ति के परिग्रह को कम करे। यही अनेकान्त-दृष्टि का लोक व्यवहार-गत रूप है। महावीर ने इसे अपने जीवन मे घटित किया। वें परिग्रह से सर्वथा मुक्त हो गये। उन्हें न धन का परिग्रह था, न सत्ता का और न यश का। आज गृहस्थ ही नही सन्यासी भी इन परिग्रहो मे मुक्त नही हैं। संन्यासियो मे यश बटोरने की ही होड लगी हुई है और यश आ गया तो शेष सब कुछ तो स्वत आता रहता है। परिग्रह हजार सूक्ष्म पैरों से चल कर हमारे पास आता है और हम गफलत मे पकड लिये जाते हैं। हम सग्रह्-विश्वासी बन गये हैं। त्याग कर ही नही सकते। त्याग करते भी हैं तो और अधिक परिग्रह के लिए त्याग करते हैं। धन को त्याग कर यश और यश को त्याग कर धन घर मे रख लिया जाता है। महावीर की समाज-व्यवस्था अपरिग्रह पर आधारित है और एक-न-एक दिन हमे उसी की शरण मे जाना होगा।

इस प्रकार अनेकान्त सम्पूर्ण जैन दर्शन की आधार-शिला है। चिन्तन, वाणी, आचार, और समाज-व्यवस्था सभी के लिए वह एक सही दिशा है, लेकिन वह आरोपित नहीं है, वस्तु-स्वरूप को वैज्ञानिक ढग से समझने का सहज परिणाम है। □□

बदलते संदर्भों में जैनधर्म की भूमिका

☐ जैनधर्म चूंकि लोकधर्म है, व्यक्ति-विकास की उसमें परिपूर्ण प्रतिष्ठा है; अतः उसके सिद्धान्त आज के बदलते परिवेश में अधिक उपयोगी हो सकते हैं।

☐ जैनधर्म अब उनका नहीं रहेगा जो परम्परा से उसे ढो रहे है, वह उनका होगा जो वर्तमान में उसे जी रहे हैं।

— डा. प्रेमसुमन जैन

प्रत्येक युग कुछ नये परिवर्तनो के साथ उपस्थित होता है। कुछ परम्पराओ को पीछे छोड देता है किन्तु कुछ ऐसा भी शेष रहता है, जो अतीत और वर्तमान को जोडे रहता है। बौद्धिक मानस इसी जोडने वाली कडी को पकडने और परखने का प्रयत्न करता है। अत आज के बदलते हुए सन्दर्भो मे प्राचीन आस्थाओ, मूल्यो एव चिन्तन-धाराओं की सार्थकता का अन्वेषण स्वाभाविक है। जैनधर्म मूलत बदलते हुए सदर्भों का ही धर्म है। वह आज तक किसी सामाजिक कठघरे, राजनैतिक परकोटे तथा वर्ग और भाषागत दायरो मे नही बँधा। यथार्थ के धरातल पर वह विकसित हुआ है। तथ्यों को स्वीकारना उसकी नियति है, फिर चाहे वे किसी भी युग के हो, किसी भी चेतना द्वारा उनका आत्मसाक्षात्कार किया गया हो।

वर्तमान युग जैनधर्म के परिप्रेक्ष्य मे बदना नही, व्यापक हुआ है। भगवान् ऋषभ देव ने श्रमण-धर्म की उन मूलभूत शिक्षाओ को उजागर किया था जो तात्कालिक जीवन की आवश्यकताएँ थी। महावीर ने अपने युग के अनुसार इस धर्म को और अधिक व्यापक किया। जीवन-मूल्यो के साथ-साथ जीव-मूल्य की भी बात उन्होंने कही। आचरणगत अहिंसा का विस्तार वैचारिक अहिंसा तक हुआ। व्यक्तिगत उपलब्धि, चाहे वह ज्ञान की हो या वैभव की, अपरिग्रह द्वारा सार्वजनिक की गयी। शास्त्रकारो ने इसे महावीर का गृहत्याग, संसार से विरक्ति आदि कहा, किन्तु वास्तव में महावीर ने एक घर, परिवार, एव नगर से निकल कर सारे देश को अपना लिया था। उनकी उपलब्धि अब प्राणिमात्र के कल्याण के लिए समर्पित थी। इस प्रकार उन्होंने जैनधर्म को देश और काल की सीमाओं से परे कर दिया, यही कारण है कि वह विगत दो हजार वर्षों के बदलते

सन्दर्भों मे कही खो नही सका है, मानव-विकास एव प्राणि-मात्र के कल्याण मे उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

आज विश्व का जो स्वरूप है सामान्यत, चिन्तको को बदला हुआ नजर आता है। समाज के मानदण्डो मे परिवर्तन मूल्यो का ह्रास, अनास्थाओ की सस्कृति, कुण्ठाओ और सत्रासो का जीवन अभाव और भ्रष्ट राजनीति, सम्प्रेषण की माध्यम-भाषाओ का प्रश्न भौतिकवाद के प्रति लिप्सा-सघर्ष तथा प्राप्ति के प्रति व्यर्थता का बोध आदि वर्तमान युग के बदलते सन्दर्भ हैं किन्तु महावीर-युग के परिप्रेक्ष्य मे देखे तो यह सब परिवर्तन कुछ नया नही लगता। इन्ही सब परिस्थितियो के दबाव ने ही उस समय जैनधर्म एव बौद्ध धर्म को व्यापकता प्रदान की थी। अन्तर केवल इतना है कि उस समय इन बदलते सन्दर्भों से समाज का एक विशिष्ट वर्ग ही प्रभावित था। सम्पन्नता और चिन्तन के धनी व्यक्तित्व ही शाश्वत मूल्यो की खोज मे सलग्न थे। शेष भीड उनके पीछे चलती थी किन्तु आज समाज की हर इकाई बदलते परिवेश का अनुभव कर रही है। आम व्यक्ति सामाजिक प्रक्रिया मे भागीदार है और वह परम्परागत आस्थाओ-मूल्यो से इतना निरपेक्ष है हो रहा है कि उन किन्ही भी सार्वजनिक जीवन-मूल्यो को अपनाने को तैयार है जो उसे आज की विकृतियो से मुक्ति दिला सके। जैनधर्म चूँकि लोकधर्म है व्यक्ति-विकास की उसमे प्रतिष्ठा है अत उसके सिद्धान्त आज के बदलते परिवेश मे अधिक उपयोगी हो सकते है।

जैनधर्म मे अहिसा की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। आज तक उसकी विभिन्न व्याख्याएँ और उपयोग हुए हैं। वर्तमान युग मे हर व्यक्ति कही-न-कही क्रान्तिकारी है क्योकि वह आधुनिकता के दश को तीव्रता से अनुभव कर रहा है वह बदलना चाहता है प्रत्येक ऐसी व्यवस्था को प्रतिष्ठान को जो उसके प्राप्य को उस तक नही पहुँचने देती। इसके लिए उसका माध्यम बनती है हिसा तोड-फोड क्योकि वह टुकडो मे बटा यही कर सकता है लेकिन हिसा से किये गये परिवर्तनो का स्थायित्व और प्रभाव हमसे छिपा नही है। समाज के प्रत्येक वर्ग पर हिसा की काली छाया मडरा रही है अत अब अहिसा की ओर झुकाव अनिवार्य हो गया है। अभी नही तो कुछ और भुगतने के बाद हो जाएगा। आखिरकार व्यक्ति विकृति से अपने स्वभाव मे कभी तो लौटेगा!

आज की समस्याओ के सन्दर्भ मे "जीवो को न मारना मास न खाना, आदि परिभाषाओ वाली अहिसा बहुत छोटी पडेगी क्योकि आज तो हिसा ने अनेक रूप धारण कर लिये हैं। परायापन इतना बढ गया है कि शत्रु के दर्शन किये बिना ही हम हिसा करते रहते हैं अत हमे फिर महावीर की अहिसा के चिन्तन मे लौटना पडेगा। उनकी अहिसा थी–'दूसरे को तिरोहित करने की, मिटा देने की। कोई दुखी है तो 'मैं' हूँ और सुखी है तो 'मैं' हूँ। अपनत्व का इतना

विस्तार ही अहंकार और ईर्ष्या के अस्तित्व की जड़ें हिला सकता है, जो हिंसा के मूल कारण हैं। जैनधर्म मे इसीलिए 'स्व' को जानने पर इतना बल दिया गया है क्योंकि आत्मज्ञान का विस्तार होने पर अपनी ही हिंसा और अपना ही अहित कौन करना चाहेगा ?

जैनधर्म की अहिंसा की भूमिका वर्तमान युग की अन्य समस्याओ का भी उपचार है। अपरिग्रह का सिद्धान्त इसी का विस्तार है किन्तु अपरिग्रह को प्राय गलत समझा गया है। अपरिग्रह का अर्थ गरीबी या साधनो का अभाव नही है। महावीर ने गरीबी को कभी स्वीकृति नही दी। वे प्रत्येक क्षेत्र मे पूर्णता के पक्षधर थे। इस दृष्टि से अपरिग्रह का आज के समाजवाद से कोई सम्बन्ध नही है। इस युग के समाजवाद का अथ है कि मुझ से बडा काई न हो। सब मेरे बराबर हो जाए किसी भी सीमित साधनों और योग्यता वाले व्यक्ति अथवा देश को इस प्रकार की बराबरी पर लाना बडा मुश्किल है। महावीर का अपरिग्रही चिन्तन है—मुझसे छोटा कोई न हो अर्थात मेरे पास जो कुछ भी है वह सबके लिए है परिवार समाज व देश के लिए है। यह सोचना व्यावहारिक हा सकता है। इससे समानता की अनभूति हो सकती है। अब केवल नारा बनकर अपरिग्रह नही रहेगा। वह व्यक्ति से प्रारम्भ होकर आगे बढता है जबकि समाजवाद व्यक्ति तक पहुँचता ही नही है। अपरिग्रह सम्पत्ति के उपभोग की सामान्य अनुभूति का नाम है स्वामित्व का नही अत विश्व की भौतिकता उतनी भयावह नही है उसका जिस ढग स उपयोग हो रहा है समस्याएँ उससे उत्पन्न हुई है। अपरिग्रह की भावना एव आर जहाँ आपस की छीना-झपटी सचय-वृत्ति आदि का नियत्रित कर सकती है वही दूसरी ओर भौतिकता से पर आध्यात्म को भी इससे बल मिलेगा।

विश्व मे जितने झगडे अर्थ और भौतिकवाद को लेकर नही है उतने आपसी विचारो की तनातनी के कारण हैं। हर व्यक्ति अपनी बात कहने की धुन मे दूसरे की कुछ सुनना नहीं चाहता। पहले शास्त्रो की बातो को लेकर वाद-विवाद तथा आध्यात्मिक स्तर पर मतभेद होते थे आज के व्यक्ति के पास इन बातो के लिए समय ही नही है। रिक्त हो गया है वह शास्त्रीय ज्ञान से तथापि वैचारिक मतभेद है और उनकी दिशा बदल गयी है। अब सीमा-विवाद पर झगडे है, नारो की शब्दावली पर तनातनी है लोकतन्त्र की परिभाषाओ पर गरमा-गरमी है। साहित्य के क्षेत्र मे हर पढने-लिखने वाला अपने मानदण्डो की स्थापनाओ मे लगा हुआ है। भाषा के माध्यम को लेकर लोग खेमो मे विभक्त हैं। ऐसी स्थिति में जैनधर्म या किसी भी धर्म की भूमिका क्या हो कहना कठिन है, किन्तु जैनधर्म के इतिहास से एक बात अवश्य सीखी जा सकती है कि उसने कभी भाषा को धार्मिक बाना नही पहिनाया। जिस युग मे जो भाषा सम्प्रेषण का

माध्यम थी उसे उसने अपना लिया, और इतिहास साक्षी है, जैनधर्म की इससे कोई हानि नही हुई है। निष्कर्ष यह कि सम्प्रेषण के माध्यम की सहजता और सार्वजनीनता के लिए वर्तमान मे किसी एक सामान्य भाषा को अपनाया जाना बहुत जरूरी है। मतभेदो मे सामजस्य एव शालीनता के लिए अनेकान्तवाद का विस्तार किया जा सकता है क्योकि विना वैचारिक उदारता को अपनाये अहिसा और अपरिग्रह आदि की सुरक्षा नही है।

गहराई मे खोजा जाए तो वर्तमान युग म जैनधर्म के अधिकाश सिद्धान्तो की व्यापकता दृष्टिगोचर होती है। ज्ञान-विज्ञान और समाज-विकास के क्षेत्र मे जैनधर्म की महत्त्वपूण भमिका रही है। आधुनिक विज्ञान ने जो हम निष्कष दिये है— उनसे जैनधर्म के तत्त्वज्ञान की अनेक बाते प्रामाणित होती जा रही है। वैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र मे द्रव्य 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्' की परिभाषा स्वीकार हो चुकी है। जैनधर्म की यह प्रमुख विशेषता है कि उसने भेद-विज्ञान द्वारा जड-चेतन को सम्पूर्णता से जाना है। आज का विज्ञान भी सूक्ष्मता की ओर निरन्तर बढता हुआ सम्पूर्ण को जानने की अभीप्सा रखता है।

वतमान युग म अत्यधिक आधुनिकता का जोर है। कुछ ही समय बाद वस्तुएँ, रहन-सहन के तरीके साधन उनके सम्बन्ध मे जानकारी पुरानी पड जाती है। उसे भुला दिया जाता है। नित-नये के साथ मानव फिर जुड जाता है। फिर भी कुछ एसा है जिसे हमेशा मे स्वीकार कर चला जाता रहा है। यह सब स्थिति और कुछ नही जैनधम द्वारा स्वीकृत जगत की वस्तुस्थिति का समर्थन है। वस्तुआ के स्वरूप बदलते रहते है अत अतीत की पर्यायो को छोडना नयी पर्यायो के साथ जुडना यह आधुनिकता जैनधर्म के चिन्तन की ही फलश्रुति है। नित-नयी क्रान्तियाँ प्रगतिशीलता फैशन आदि वस्तु की 'उत्पादन शक्ति की स्वाभाविक' परिणति मात्र है। कला एव साहित्य के क्षत्र म अमूतता एव प्रतीको की ओर झुकाव वस्तु की पर्यायो को भूलकर शाश्वत सत्य को पकडने का प्रयत्न है। वस्तुस्थिति मे जीने का आग्रह 'यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्' के अर्थ का ही विस्तार है।

आज के बदलत सन्दर्भो म स्वतन्त्रता का मूल्य तीव्रता से उभरा है। समाज की हर इकाई अपना स्वतन्त्र अस्तित्व चाहती है। कोई भी व्यक्ति अपने अधिकार एव कतव्य मे किसी का हस्तक्षेप नही चाहता। जन-तान्त्रिक शासनो का विकास इसी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता क आधार पर हुआ है। जैनधर्म ने स्वतन्त्रता के इस सत्य को बहुत पहले घोषित कर दिया था। वह न केवल व्यक्ति को अपितु प्रत्येक वस्तु के स्वरूप को स्वतन्त्र मानता है इसलिए उसकी मान्यता है कि व्यक्ति स्वय अपने स्वरूप मे रहे और दूसरो को उनक स्वरूप म रहने दे। यही सच्चा लोकतन्त्र है। एक दूसरे के स्वरूपो मे जहाँ हस्तक्षेप हुआ, वही बलात्कार प्रारम्भ हो जाता है, जिससे दु ख के सिवाय और कुछ नही मिलता।

वस्तु और चेतन की इसी स्वतन्त्र सत्ता के कारण जैनधर्म किसी ऐसे नियन्ता को अस्वीकार करता है, जो व्यक्ति के सुख-दु:ख का विधाता हो। उसकी दृष्टि में जड़-चेतन के स्वाभाविक नियम (गुण) सर्वोपरि हैं। वे स्वयं अपना भविष्य निर्मित करेंगे। पुरुषार्थी बनेंगे। युवाशक्ति की स्वतन्त्रता के लिए छटपटाहट इसी सत्य का प्रतिफलन है। इसीलिए आज के विश्व में नियम स्वीकृत होते जा रहे हैं, नियन्ता तिरोहित होता जा रहा है। यही शुद्ध वैज्ञानिकता है।

वस्तु एवं चेतन के स्वभाव को स्वतन्त्र स्वीकारने के कारण जैनधर्म ने चेतन सत्ताओ के क्रम-भेद को स्वीकार नही किया। शुद्ध चैतन्यगुण समान होने से उसकी दृष्टि मे सभी व्यक्ति समान हैं। ऊँच-नीच, जाति, धर्म आदि के आधार पर व्यक्तियों का विभाजन महावीर को स्वीकार नहीं था, इसीलिए उन्होंने वर्गविहीन समाज की बात कही थी। प्रतिष्ठानो को अस्वीकृत कर वे स्वय जन-सामान्य मे आकर मिल गये थे। यद्यपि उनकी इस बात को जैनधर्म को मानने वाले लोग अधिक दिनों तक नही निभा पाये। भारतीय समाज के ढांचे से प्रभावित हो जैनधर्म वर्ग-विशेष का होकर रह गया था, किन्तु आधुनिक युग के बदलते सन्दर्भ जैनधर्म को क्रमश आत्मसात् करते जा रहे हैं, वह दायरो से मुक्त हो रहा है। जैनधर्म अब उनका नही रहेगा जो परम्परा से उसे ढो रहे हैं, वह उनका होगा जो वर्तमान मे उसे जी रहे है।

वर्तमान युग मे दो बातो का और जोर है—नारी-स्वातन्त्र्य और व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा। नारी-स्वातन्त्र्य के जितने प्रयत्न इस युग मे हुए हैं सभवत उससे कही अधिक पुरजोर शब्दो मे नारी-स्वातन्त्र्य की बात महावीर ने अपने युग मे कही थी। धर्म के क्षेत्र मे नारी को आचार्य-पद की प्रतिष्ठा देने वाले वे पहले चिन्तक थे। जिस प्रकार पुरुष का चैतन्य अपने भविष्य का निर्माण करने की शक्ति रखता है, उसी प्रकार नारी की आत्मा भी। अत. आज समान अधिकारो के लिए सघर्ष करती हुई नारी अपनी चेतनता की स्वतन्त्रता को प्रमाणित कर रही है।

जैनधर्म मे व्यक्ति का महत्त्व प्रारम्भ से ही स्वीकृत है। व्यक्ति जब तक अपना विकास नही करेगा वह समाज को कुछ नही दे सकता। महावीर स्वय सत्य की पूर्णता तक पहले पहुँचे तब उन्होने समाज को उद्बोधित किया। आज के व्यक्तिवाद मे व्यक्ति भीड से कटकर चलना चाहता है। अपनी उपलब्धि मे वह स्वय को ही पर्याप्त मानता है। जैनधर्म की साधना, तपश्चर्या की भी यही प्रक्रिया है—व्यक्तित्व के विकास के बाद सामाजिक उत्तरदयित्वो को निबाहना।

जैनधर्म मे सम्यग्दर्शन के आठ अगो का विवेचन है। गहराई से देखे तो उनमे से प्रारम्भिक चार व्यक्ति-विकास के लिए हैं और अतिम चार अग सामाजिक दायित्वो से जुड़े हैं। जो व्यक्ति निर्भयी (नि.शकित), पूर्णसन्तुष्ट (नि काक्षित), देहगत वासनाओ से परे (निर्विचिकित्सक) एवं विवेक से जागृत (अमूढ़ दृष्टि) होगा वही स्वयं के गुणो का विकास (उपबृंहण), कर सकेगा पथभ्रष्टो को रास्ता बता सकेगा (स्थिरीकरण), सहधर्मियो के प्रति सौजन्य-वात्सल्य रख सकेगा तथा जो कुछ उसने अर्जित किया है, जो शाश्वत और कल्याणकारी है उसका वह जगत् में प्रचार कर सकेगा। इस प्रकार जैनधर्म अपने इतिहास के प्रारम्भ से ही उन तथ्यो और मूल्यो का प्रतिष्ठापक रहा है, जो प्रत्येक युग के बदलते सन्दर्भो मे सार्थक हो तथा जिनकी उपयोगिता व्यक्ति और समाज दोनों के उत्थान के लिए हो। विश्व की वर्तमान समस्याओं के समाधान-हेतु जैनधर्म की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है, बशर्ते उसे सही अर्थों मे समझा जाए; स्वीकारा जाए। □□

युद्ध-विराम

उन दिनों गुजरात मे दो महान् साहित्यिक व्यक्ति चमक रहे थे। एक थे कवीश्वर दलपतराय, और दूसरे थे नाटककार डाह्याभाई। दोनों पहिले गहरे मित्र थे, फिर दोनों एक दूसरे के गहरे शत्रु बन गये। दलपतराय की कविता मे डाह्याभाई पर धूल फेंकी जाती, और डाह्याभाई के नाटकों मे दलपतराय की खिल्ली उड़ायी जाती। दोनों एक दूसरे को फूटी आँखों भी नहीं सुहाते थे। बात यहाँ तक बढ़ी कि अगर किसी समारोह मे एक बुलाया जाता तो दूसरा वहाँ से नौ-दो ग्यारह होता। साहित्यिक समाज मे वे छत्तीस के अक-से प्रसिद्ध थे।

समय बीतता गया, और दोनो साहित्यिको ने यौवन पार कर बुढापे की ओर पैर बढाये। नाटककार डाह्याभाई एक बार एक सत का प्रवचन सुन रहे थे। सत ने कहा, "बुढापे मे सब बैर-जहर उगल डालना चाहिये, और सुलह-प्रेम को अपनाना चाहिये। देखो प्रकृति तुम्हारे केशों की कालिमा को हटाकर श्वेत या उज्ज्वलता लाती है, तुम्हे यह सिखाने को कि तुम भी अपने हृदय की कालिमा को निकाल कर उज्ज्वल बनो। खट्टा आम भी पकने पर खटास छोडकर मधुरता ग्रहण करता है, नीम की कडवी निबोरी भी पकने पर मीठी हो जाती है, फिर क्या मनुष्य इतना गया बीता है कि आयु पकने पर भी वह जीवन मे मधुरता न ला सके ?" सत के इन वचनो ने डाह्याभाई के हृदय पर सीधी चोट की। वे तिलमिला उठे। अब वे बैर-विष उगलने को व्यग्र हो उठे।

प्रवचन समाप्त होते ही वे सीधे अपने चिर-शत्रु कवीश्वर दलपतराय के घर पहुँचे, और उनके सामने सिर झुकाये खडे हो गये। कवीश्वर दलपतराय आश्चर्य मे पड गये कि वे स्वप्न देख रहे है या जाग रहे हैं। कवीश्वर उठे और डाह्याभाई को प्रेम से पकडकर घर के अदर ले गये। बैठने पर डाह्याभाई बोले—"युद्ध मे एक पक्ष अगर श्वेत-केतु (सफेद झण्डा) दिखाता है, तो युद्ध रुक जाता है, और सन्धि हो जाती है, क्यों कवीश्वरजी ठीक है न ?"

"हाँ, नियम तो यही है।

तब नाटककार डाह्याभाई ने अपनी पगडी उतारकर अपने श्वेत-केश बताते हुए कहा कि "यह रहा श्वेत-केतु (सफेद झण्डा)। अब मैं तुमसे सुलह की याचना करता हूँ।' कवीश्वर ने इसका उत्तर उनसे लिपटकर आँसुओं की अजस्र धार से दिया। दोनों ओर से आँसू बहे, और उनमे उनकी चिर शत्रुता सदा-सर्वदा के लिए बह गयी।

—नेमीचन्द पटोरिया

जैन साहित्य : शोध की दिशाएं

देश मे सर्वप्रथम जैन विद्वान ही थे जिन्होंने हिन्दी में विभिन्न प्रकार की कृतियाँ लिखकर उसके प्रसार मे योग दिया। ईसा की दसवी-ग्यारहवी सदी से ही जैन विद्वानो की मौलिक रचनाएँ मिलने लगती हैं।

–डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

बीसवीं शताब्दी भारतीय साहित्य के इतिहास में अभूतपूर्व प्रगति का प्रतीक मानी जाती है। इस शताब्दी मे साहित्य की विभिन्न धाराओ को विकसित होने का अच्छा अवसर मिला है। यही नही आज भी ये धाराएँ अपने-अपने विकास की ओर तीव्र गति से बढ रही है। नये साहित्य के निर्माण के साथ-साथ प्राचीन साहित्य की खोज एव उसके प्रकाशन को भी प्राथमिकता मिली है। इस शताब्दी का सबसे उल्लेखनीय कार्य शोध की दिशा मे हुआ है जिसके सम्पादन मे विश्व-विद्यालयो का प्रमुख योग रहा है। सस्कृत एव हिन्दी के पचासो प्राचीन कवियो एव लेखको पर अनेक शोध-प्रबन्ध मात्र लिखे ही नही गये है अपितु प्रकाशित भी हो चुके हैं, जिनसे हमारे प्राचीन साहित्य के गौरव मे तो वृद्धि हुई ही है साथ ही उन कवियो की साहित्यिक सेवाओ के मूल्याकन करने मे भी हम सफल हुए है। कालिदास, माघ, तुलसीदास, सूरदास, मीरा एव कबीर-जैसे महाकवियो पर एक नही पचासो शोध-प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं जिनमे उनके विभिन्न पक्षो पर गवेषणापूर्ण प्रकाश डाला गया है। अब तो ऐसा समय आने वाला है जब विद्यार्थियो को शोध के लिए विषयो का चयन करना भी कठिन हो जाएगा और उन्ही विषयो को तोड़-मरोड कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा।

इधर के पचास वर्षों मे जैन-साहित्य पर भी पर्याप्त कार्य हुआ है। यद्यपि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमो में जैन विद्वानों द्वारा लिखे गये साहित्य को अभी तक मान्यता नहीं मिल सकी है; किन्तु सामाजिक संस्थाओं द्वारा जैन-साहित्य के प्रकाशन को पर्याप्त सरक्षण मिला है। इस दिशा मे भारतीय ज्ञानपीठ, जीवराज ग्रथमाला, शोलापुर, साहित्य-शोध-विभाग, जयपुर; पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी; वीर सेवा मदिर, देहली, माणिकचन्द्र ग्रंथमाला, बम्बई; दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत; रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, बम्बई; आदि सस्थाओं द्वारा गत पचास वर्षों मे जो प्रकाशन हुआ है यद्यपि उसे पर्याप्त नही कहा जा सकता तथापि इस दिशा

मे इसे एक महत्त्वपूर्ण शुरूआत अवश्य कहा जा सकता है और आशा की जाती है कि साहित्य-प्रकाशन मे और भी संस्थाओ की रुचि बढेगी ।

जैन-साहित्य का अर्थ उस सभी साहित्य से है जो जैन विद्वानो द्वारा लिखा गया है चाहे वह किसी भाषा मे हो, अथवा किसी विषय पर । नि सदेह जैनाचार्यों एव विद्वानो ने देश को प्रभूत साहित्य दिया है। उसकी सर्जना एव सुरक्षा मे अपने जीवन के स्वर्णिम दिनो को लगाया है। वह न तो देश-काल के प्रवाह मे बहा है और न इसमे उसने जरा भी लापरवाही की है। देश पर कट्टर मुस्लिम शासन मे भी जैनाचार्यों एव श्रावको ने साहित्य की जिस चतुरता से सुरक्षा की एव उसमे सवर्द्धन किया उसकी जितनी भी प्रशसा की जा सके कम है, लेकिन जैनाचार्यों द्वारा निबद्ध साहित्य को जैन-धार्मिक साहित्य कहकर कुछ वर्षों पूर्व तक उपेक्षा की जाती रही और उसे भाषा-साहित्य के इतिहास मे किंचित् स्थान भी नही दिया गया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पश्चात् भी हिन्दी एव सस्कृत के अधिकाश विद्वान् उस परम्परा मे चिपके रहे और उन्होंने जैन विद्वानो द्वारा निबद्ध साहित्य की मौलिकता का मूल्याकन करने का तनिक भी प्रयास नही किया।

सर्वप्रथम महापण्डित राहुल सास्कृत्यायन ने स्वयम्भू के "पउमचरिउ' को हिन्दी-भाषा का आदि महाकाव्य घोषित करके हिन्दी विद्वानो को एक प्रकार से 'चैलेंज' दिया। यही नही उन्होने अपभ्रश को हिन्दी की पूर्वभाषा कहकर हिन्दी-साहित्य के उद्गम के अब तक के इतिहास को ही बदल डाला । राहुलजी द्वारा हिन्दी विद्वानो के ध्यानाकर्षण के पश्चात् जब जैन विद्वानो द्वारा अपभ्रश भाषा मे निबद्ध एक के पश्चात् एक काव्यो की उपलब्धि होती गयी तो हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वानो को भी जैन विद्वानो द्वारा लिखे गये ग्रन्थो के मूल्याकन की आवश्यकता प्रतीत हुई। और डॉ रामसिह तोमर, हरिवश कोछड एव डॉ एच सी भयाणी ने अपभ्रश के विशाल साहित्य का विद्वानो को परिचय दिया । इस सम्बन्ध मे श्री महावीर क्षेत्र के साहित्य शोध-विभाग द्वारा प्रकाशित एव लेखक द्वारा सम्पादित प्रशस्ति सग्रह से हिन्दी विद्वानो को इस दिशा मे कार्य करने की विशेष प्रेरणा मिली, और इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् डॉ हजारीप्रसादजी द्विवेदी-जैसे शीर्षक विद्वानो ने जैन-हिन्दी-साहित्य के प्रति अपने उद्गार प्रकट किये उसने भी विद्वानो का ध्यान बरबस अपभ्रश एव हिन्दी-साहित्य की ओर आकृष्ट करने मे सफलता प्राप्त की ।

१९५० ई के पूर्व तक जैन-समाज मे डॉ हीरालाल जैन एव डॉ उपाध्ये ने ही अपभ्रश साहित्य पर विशेष कार्य किया और पुष्पदन्त के महापुराण, जसहरचरिउ, णायकुमार चरिउ जैसे काव्यो का सम्पादन एव प्रकाशन करके विद्वानो का ध्यान इस साहित्य की ओर आकृष्ट किया, लेकिन १९५० के पश्चात् अन्य जैन विद्वानो

का भी ध्यान जैन-साहित्य की विभिन्न विधाओं पर गया और एक के पश्चात् दूसरे विद्वान् शोध के क्षेत्र में प्रवृत्त हो गये। अब तक २०० से भी अधिक विद्वान् जैन-साहित्य के विभिन्न पक्षों पर या तो कार्य समाप्त कर चुके हैं अथवा शोध की ओर प्रवृत्त हैं। इस सबका श्रेय देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों को है। अब तक की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार विश्वविद्यालयों में स्वीकृत शोध-प्रबन्ध अथवा शोध के लिये पंजीयत शोध-प्रबन्धो की सख्या निम्न प्रकार है —

	स्वीकृत	पंजीयत	कुल
आगरा विश्वविद्यालय	१९	१८	३७
इलाहाबाद विश्वविद्यालय	२	१	३
अलीगढ विश्वविद्यालय	१८	१४	३२
भागलपुर विश्वविद्यालय	२	—	२
बिहार विश्वविद्यालय (मुजफ्फरपुर)	१३	२	१५
बम्बई विश्वविद्यालय	१०	—	१०
कलकत्ता विश्वविद्यालय	१	—	१
दिल्ली विश्वविद्यालय	२	८	१०
गुजरात विश्वविद्यालय	—	८	८
गुरुकुल कागड़ी	१	—	१
इन्दौर विश्वविद्यालय	२	८	१०
जबलपुर विश्वविद्यालय	३	—	३
कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड	७	—	७
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	२	—	२
मगध विश्वविद्यालय, गयाजी	५	७	१२
मेरठ विश्वविद्यालय	१	—	१
नागपुर विश्वविद्यालय	२	१	३
पटना विश्वविद्यालय	१	१	२
रविशकर विश्वविद्यालय, रायपुर	२	—	२
राजस्थान विश्वविद्यालय	१२	१०	२२
सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	१	—	१
सागर विश्वविद्यालय, सागर	५	३	८
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर	२	—	२
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन	४	५	९
	११७	९६	२१३

इस प्रकार देश के सभी विश्वविद्यालयो मे जैन विषयो पर शोध कार्य की दिशा मे महत्त्वपूर्ण प्रगति हो रही है, यह तो एक सन्तोष का विषय है, लेकिन जैन साहित्य की विशालता एव विविधता को देखते हुए अभी इस कार्य को आटे मे नमक जैसा ही समझा जाना चाहिये। राजस्थान के जैन भण्डारो पर इस निबन्ध के लेखक ने कार्य किया है और इन भण्डारो मे सुरक्षित साहित्य की विशालता से उसका थोडा परिचय भी है, इसलिए कहा जा सकता है कि अब तक हुआ कार्य केवल प्राथमिक सर्वे वर्क ही है जिसे अभी सपन्न नही कर सके है।

जैनाचार्यों ने उत्तर एव दक्षिण भारत की सभी भाषाओ मे साहित्य-रचना की है। सस्कृत प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती के अतिरिक्त दक्षिण की तमिल, तैलुगू, कन्नड एव मलयालम मे उनका अपार साहित्य मिलता है। प्राकृत साहित्य के इतिहास के अतिरिक्त अभी तक सस्कृत भाषा मे जैनाचार्यों ने जो साहित्य-निर्माण किया है उसका व्यवस्थित इतिहास कहाँ है? कृतिश मूल्याकन तो दूर की बात है अभी तक तो काव्य, पुराण, चरित्र, अध्यात्म, कथा, चम्पू, ज्योतिष, आयुर्वेद गणित, नाटक, सगीत, पूजा, स्तोत्र जैसे प्रमुख विषयो पर जैनाचार्यों ने कितनी एव किस शताब्दी मे रचनाएँ की है, इस पर ही कोई कार्य नही हुआ है। *जैन पुराणो मे भारतीय सस्कृति के जो दर्शन होते है उसको तो अभी तक विद्वानो* ने छुआ तक नही है। डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री ने जिस प्रकार 'आदिपुराण मे प्रतिपादित भारत' पुस्तक लिखी है उस प्रकार की पचासो पुस्तको के लिखे जाने की सभावनाए अभी गर्भित है। भगवत् जिनसेनाचार्य का हरिवश पुराण, रविषेण का 'पद्मपुराण', आचार्य गुणभद्र का 'उत्तर पुराण,' हेमचन्द्रचार्य का 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुषचरित्र,' भ सकलकीर्ति के 'आदि पुराण' 'वर्द्धमान पुराण' 'रामपुराण' जैसी कृतियाँ पुराण-साहित्य की बेजोड निधियाँ हैं, जिनका मूल्याकन अभी प्रतीक्षित है। इन पुराणो के माध्यम से न केवल जैन सस्कृति एव साहित्य की रक्षा हो सकी है, किन्तु उन्होने भारतीय सस्कृति के अनेक अमूल्य तथ्यो को भी सुरक्षित रखा है। अब तक इन्हे 'पुराण' कहकर ही पुकारा जाता रहा है किन्तु नगण्य समझे जाने वाले पुराणो मे सस्कृति सभ्यता रहन-सहन, व्यापार, युद्ध, राजनीति जैसे विषयो का कितना गहन विवेचन हुआ है इस ओर किसी का ध्यान नही गया है। उसी तरह सस्कृत-साहित्य की अन्य विधाओ के बारे मे शोध-कार्य सभव है। सस्कृत का 'स्तोत्र-साहित्य' कितना विपुल है, इसका हम अभी अनुमान भी नही लगा सके है। राजस्थान के जैन-शास्त्र-भण्डारो की ग्रन्थ सूची, पचम भाग मे स्तोत्र-साहित्य के अन्तर्गत हमने ७०० से अधिक पाण्डुलिपियो का उल्लेख किया है। स्तोत्रो मे आचार्यों एव कवियो ने अपनी मनोगत भावनाओ को तो उँडेला ही है, साथ ही जन-भावनाओ के अनुसार भी उनकी रचना हुई है। ये कृतियाँ छद, अलकार एव भाषा की दृष्टि से तो उच्चकोटि की रचनाएँ हैं ही किन्तु अध्यात्म, दर्शन, एव व्यक्ति की दृष्टि से भी इन पर शोध-कार्य किया जा सकता है। आचार्य समन्तभद्र का 'स्वयम्भू-

स्तोत्र', आचार्य अकलंक का 'अकलंक स्तोत्र,' जिनसेन का 'जिनसहस्रनाम,' तथा इसी तरह 'कल्याण मंदिर स्तोत्र,' 'भक्तामर स्तोत्र,' 'एकीभाव स्तोत्र' जैसे स्तोत्र संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं, जिन पर हम सभी को गर्व होना चाहिये।

अपभ्रंश-साहित्य पर तो जैन विद्वानो का एकछत्र राज्य है, वास्तव मे अपभ्रंश भाषा मे रचनाएँ निबद्ध करके जैन विद्वानो ने इस भाषा-साहित्य की रक्षा ही नहीं की वरन् तत्कालीन जनभाषा मे रचनाएँ लिखकर उन विद्वानो को ललकारा है, जो भाषा-व्यामोह के चक्कर मे पडकर एक भाषा से चिपके रहे हैं। प्राकृत एव अपभ्रंश मे सभी प्रमुख रचनाएँ जैन विद्वानो की हैं इसलिए इनकी रचनाओ पर जितना भी कार्य होगा वह सभी कार्य जैन संस्कृति का प्रकाशक ही माना जाएगा। अब वह जमाना आ गया है जब हमे महाकवि स्वयम्भू, पुष्पदन्त, वीर, नयनन्दि, रइधू जैसे अपभ्रंश-कवियो एव आचार्य कुन्दकुन्द एव नेमिचन्द्र जैसे प्राकृत भाषा के के आचार्यों की जयन्ती अथवा शताब्दि-समारोह मनाने चाहिये, जिससे इन कवियो के जीवन एव साहित्य पर मात्र विशेष प्रकाश ही नही पड सके अपितु जन-साधारण को भी इन कवियो की महत्ता का बोध हो सके। जिस प्रकार संस्कृत मे महाकवि कालिदास की अपार सेवाएँ हैं, उसी प्रकार प्राकृत भाषा मे आचार्य कुन्दकुन्द तथा अपभ्रंश मे महाकवि स्वयम्भू एव पुष्पदन्त के नाम लिया जा सकता है।

हिन्दी एव राजस्थानी भाषा मे शोध की कितनी आवश्यकता है इस बारे मे जैनेतर विद्वानो को तो क्या सम्भवत स्वय जैन विद्वानो को भी पूरी जानकारी नही है। देश मे सर्वप्रथम जैन विद्वान् ही थे जिन्होने हिन्दी मे विभिन्न प्रकार की कृतियाँ लिखकर उसके प्रसार मे योग दिया। ईसा की दसवी-ग्यारहवी सदी से ही जैन विद्वानो की मौलिक रचनाएँ मिलने लगती है। प्रारम्भ मे इन्होने रास-सज्ञक रचनाओ के रूप मे लिखा और फिर काव्य की विविध विधाओ को जन्म दिया। इन कवियो का अपभ्रंश साहित्य भी हिन्दी-साहित्य को पूर्वपीठिका के रूप मे ही था, इसलिए देखा जाए तो जैन-विद्वान् ही हिन्दी-भाषा एव साहित्य के वास्तविक प्रस्तोता थे। हिन्दी-साहित्य के आदिकाल के इतिहास मे आज जो एक प्रकार की रिक्तता दीखती है उसका एक प्रमुख कारण यह है कि उस काल मे जैन विद्वानो की रचनाओ को कोई स्थान नही मिला (वि संवत् १४०० तक पचासो जैन रचनाएँ हैं, जिनको अब तक स्थान मिलना चाहिये था और जिनका साहित्यिक मूल्याकन विद्वानो के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिये था)। हिन्दी का आदिकाल तो जैन-विद्वानो का ही काल है जिन्होंने इस भाषा को प्रश्रय ही नही दिया वरन् प्राकृत एव संस्कृत मे रचनाएँ निबद्ध करना बन्द करके हिन्दी-भाषा मे अपनी लेखन-शक्ति को लगाया। जिस राष्ट्रभाषा पर आज देश को गर्व है, उसकी नीव तो जैन विद्वानो ने अपनी तपस्या एव लेखन-प्रतिभा से सींची थी। हिन्दी का यह पौधा जब हरा-भरा हो गया और हिन्दी-कृतियो की लोकप्रियता बढ़ने लगी तब कही जैनेतर

विद्वानो ने इस भाषा मे लिखने का साहस किया, और महाकवि सूरदास, मीरा एवं तुलसीदास जैसे सन्त कवियों ने इस भाषा में भक्ति-साहित्य को निबद्ध करके इसे पंडितो के कोप से बचाया।

जैन विद्वानों की हिन्दी-रचनाएँ आज सैकडो-हजारों की सख्या मे उपलब्ध हैं लेकिन दु:ख की बात तो यह है कि अभी तक उनका सागोपाग सर्वेक्षण नही हो सका है और न ही कोई प्रामाणिक इतिहास ही लिखा जा सका है । इधर राजस्थान के जैन शास्त्र-भण्डारो की ग्रथ-सूचियो के पाँच भाग जब से प्रकाशित हुए हैं, हिन्दी की सैकडो रचनाएँ प्रकाश मे आयी हैं और कई शोधार्थियो का ध्यान भी उधर गया है ।

जबसे विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग द्वारा प्राकृत भाषा पर प्रतिवर्ष सेमिनार आयोजित करने के लिए अनुदान दिया जाने लगा है तब से और भी अधिक विद्वानो का ध्यान जैन साहित्य पर शोध-कार्य करने की ओर गया है। प्राकृत भाषा पर अब तक कोल्हापुर, बम्बई, पूना, गया, अहमदाबाद एव उदयपुर मे स्थानीय विश्वविद्यालयों की ओर से सेमीनार आयोजित हो चुके है। लेखक को भी प्राय. इन सभी सेमिनारो मे भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ है । अभी उदयपुर विश्वविद्यालय मे "भारतीय सस्कृति के विकास मे जैनाचार्यों का योगदान" विषय पर एक अत्यधिक उच्चस्तरीय सेमिनार आयोजित हुआ था, जिसमे जैन एव जैनेतर विद्वानो ने मुक्त कण्ठ से जैन-साहित्य के योगदान पर निबन्ध ही नही पढे अपितु उन पर गहन परिचर्चा भी की । □□

वस्तुत· भारतीय सस्कृति के समग्र अध्ययन के लिए जैन ग्रंथों की सामग्री उपयोगी ही नहीं, अनिवार्य भी है । जैन ग्रथों का अध्ययन तथा जैन परम्पराओं का पूर्ण परिचय प्राप्त किए बिना हिन्दी साहित्य का सच्चा इतिहास भी नहीं लिखा जा सकता ।

—डा. शिवमंगलसिंह 'सुमन'

जैनधर्म के विकास में कर्नाटक-साहित्य का योग

महर्षि विद्यानन्द मुनि इसी पुण्यभूमि के हैं, यद्यपि सर्वसंग-परित्याग के बाद प्रान्त, देश, जाति की विवक्षा नहीं रहती है तथापि कर्नाटक राज्य को ऐसी देन का अभिमान तो हो ही सकता है।

□ वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

जैन साहित्य की समृद्धि मे कर्नाटक प्रात और कर्नाटक साहित्य ने बहुत योगदान दिया है, स्थापत्य, वास्तु, चित्र-कलाओ एव कलापूर्ण धर्मायतनो के लिए यह प्रात प्रसिद्ध है। आज भी श्रवणबेलगोला का गोमटेश्वर हळेबीड का शातिनाथ, मूडबिद्री के सहस्रस्तभ मदिर, रत्नो की अनर्घ्य प्रतिमाएँ, बेलूर का चेन्नकेशव देवालय आदि को देखकर लोग दग रह जाते हैं। कला का यह विस्मयपूर्ण दर्शन जगत्-भर को आकर्षित करता है। बेलगाम की कमल बस्ति, वेणूर व कार्कल की बाहुबलि मूर्ति, हूमच पद्मावती का अतिशय, बारग का जल मदिर, आज भी यात्रा के स्थान बने हुए हैं।

षड्खडागम सदृश महान् सिद्धान्त-ग्रन्थ के सरक्षण का श्रेय एव आज के जिज्ञासु बधुओ को स्वाध्याय के लिए उपलब्ध करने की कीर्ति, इसी प्रान्त को है। अगर वहाँ के धर्म-बन्धुओ ने इसका यत्नपूर्वक जतन नही किया होता तो हम अपने बहुत प्राचीन करोड़ो की महत्त्वपूर्ण धरोहर से हाथ धो बैठते जैसे कि आज हमे गन्धहस्ति महाभाष्य का दर्शन दुर्लभ हो रहा है।

कर्नाटक की विशेषता

तीर्थंकरो का जन्म उत्तर भारत मे हुआ है तो तीर्थंकरो की वाणी को विशद एव सरल बनाकर लोककल्याण करने वाले आचार्यों का जन्म हुआ है दक्षिण भारत मे। प्राय कुदकुद, अकलक, पूज्यपाद, समतभद्र, विद्यानन्दि, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती आदि सभी आचार्य दक्षिण भारत मे ही हुए हैं। उनकी जन्मभूमि और कर्मभूमि दक्षिण भारत, विशेषत कर्नाटक ही रही, इसलिए उत्तर भारत और दक्षिण भारत ने लोकप्रबुद्ध करने का यत्न समान रूप से किया। आधुनिक आचार्य शांति-सागर महाराज आदि मुनियो ने भी दक्षिण भारत मे जन्म लेकर ही आज के युग

मे मुनिजनो का दर्शन प्राप्त कराया है। पूज्य मुनि विद्यानन्द भी दक्षिण भारत के एव कर्नाटक प्रान्त के हैं इसलिए कर्नाटक-साहित्य की परम्परा पर विचार करना यहाँ अप्रासंगिक नही है। जिस प्रान्त मे मनिश्री का जन्म हुआ है उस प्रान्त के आचार्य व काव्य-मनीषियो ने उत्तमोत्तम काव्य के सृजन से लोक को सुबुद्ध किया है।

कर्नाटक-साहित्य की प्राचीनता

श्रुति परम्परा से ज्ञात होता है कि कर्नाटक साहित्य का क्रम बहुत प्राचीन है इतिहासातीत काल से ही इसका अस्तित्व था। कहा जाता है कि भगवान आदि प्रभ ने अपनी दोनो पुत्रियो को अक्षराभ्यास व अकाभ्यास कराया।

इस प्रकरण मे आचार्य जिनसेन ने विद्या के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए भगवान के मुख से विदुषी बनने की प्ररणा दिलायी है। उसी सदभ मे आदि प्रभु ने ब्राह्मी व सुदरी को क्रमश ब्राह्मी लिपि व अकशास्त्र का अध्ययन कराया।*

ब्राह्मा देवी का ब्राह्मी लिपि का अभ्यास कराया अत वह ब्राह्मी लिपि ही कन्नड लिपि मानी जाती है। ब्राह्मी और कन्नड लिपियो मे कुछ अतर है अतएव यह लिपि हळ कन्नड (पुराना कन्नड) के नाम से जानी जाती है। हळ कन्नड लिपि मे लिखित सकडो प्राचीन ग्रथ है। ताम्पत्र के ग्रथो म प्राय यही लिपि है।

यह इतिहासातीत काल का विषय ह। हम अन्वषक विद्वानो पर इसे छोड देते है तथापि साहित्य सृजन के यग की दष्टि से भी कर्नाटक साहित्यकारो का काल बहुत प्राचीन है। बहुत प्राचीन होन स ही हम उसका गणगान नही करत है क्योकि प्राचीनता गणोत्कष का कारण नही है। साहित्यकारो ने कहा ह कि——

पुराणमित्येव न साधु सर्व नचापिकाव्य नवमित्यवद्यम।
सत परीक्ष्यान्यतरादजते मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि।

प्राचीन हाने से ही सब कछ अच्छ होते है यह बात नही। नवीन हाने से ही कोई निर्दोष होता है यह भी नियम नही है। विवकी सज्जन काव्य या साहित्य का

---

* इ यक्त्वा मुहुराशास्य विरचीण हमपट्टके
अधिवास्य स्वचितस्था श्रुतदेवी समपया ।।१०३।।
विभ करद्वयेनाभ्या लिखन्नक्षरमालिका
उपादिशल्लिपि सख्या स्थान चाकरनुक्रमात ।।१०४।।
तता भगवतो वक्त्रान्नि सतामक्षरावलीम
सिद्ध नम इति व्यक्त मगला सिद्ध मातकाम ।।१०५।।
पूवपुराण पव १६

देखकर उसमें गुण प्रतीत हो तो उसकी प्रशंसा करते हैं, सेवा करते है, आदर करते हैं।

इसी प्रकार कर्नाटक-साहित्य की स्थिति है। कर्नाटक-साहित्य की प्राचीनता ही नही, महत्ता भी उसमे अपने-आपमे है, इसलिए अन्य साहित्यकारो ने जैन कर्नाटक साहित्य की भी मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है।

राजाश्रय मिला

इन कवियो ने अपनी प्रतिभा-शक्ति का यथेष्ट उपयोग उस समय किया, उसका एक कारण यह भी है कि उन्हें अपने समय मे राजाश्रय मिला था, राज्य शासन न करने वाले भी गुण ग्राहक थे अपने आस्थान मे ऐसे अनेक कवियो को स्थान देने मे वे गौरव समझते थे। राष्ट्रकूट गग, पल्लव, चालुक्य, होयसल आदि अनेक राज्यो के शासनकाल मे कर्नाटक के इन कवियो ने उनसे प्रोत्साहन प्राप्त किया था इतना ही नही राजाओ का राज्य-शासन के कार्य मे भी इन कवियो से मत्रणा मिलती थी।

राष्ट्रकूट शासक नृपतुग का समय ९ वी शताब्दी का है। उसने कन्नड मे 'कविराज मार्ग' की रचना की है। अपनी रचना मे नृपतुग ने अनेक पूर्वकवियो एव उनकी कृतियो का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि ९ वी शती से पहिले भी यह साहित्य अत्यन्त उन्नतावस्था मे था, इससे पहिले के सभी ग्रन्थ प्राय हळे कन्नड (पुराना कन्नड) म बनाये जाते थे। 'कविराज मार्ग' मे भी ग्रथकार ने कुछ हळे कन्नड ग्रथो का उल्लेख किया है। अनेक प्राचीन कवियो का भी उल्लेख इसमे है। नपतुग ने अपने ग्रथ मे श्रीविजय कवि परमेश्वर पडित चद्र, लोकपाल आदि कवियो का स्मरण किया है।

महाकवि पप ने भी पूज्यपाद समनभद्र का अपने ग्रथो म स्मरण किया है। समतभद्र और पूज्यपाद का समय तीसरी-पाचवी शताब्दियाँ मानी जाती है अर्थात् वे बहुत प्राचीन आचार्य है। पूज्यपाद और समतभद्र के ग्रथो की टीका भी हळे कन्नड मे है। इससे भी इस भाषा की प्राचीनता सिद्ध हो सकती है।

कविपरमेष्ठी की कृति कर्नाटक मे ही होनी चाहिये। लगता है कविपरमेष्ठी ने त्रिषष्टिशलाका पुरुषो के चरित्र का चित्रण कन्नड भाषा मे किया होगा, इसलिए बाद के आचार्यों ने उस कवि का नाम आदर के साथ लिया है।

भगवज्जिनसेन आचार्य ने भी उक्त ग्रथ से लाभ उठाया होगा इसीलिए वे लिखते हैं कि —

स पूज्यः कविभिर्लोके कवीनां परमेश्वरः
वागर्थ संग्रहं कृत्स्नं पुराणं यः समग्रहीत् ।।

—पूर्वपुराण प्र. अ. ६०.

शब्दार्थ-संग्रह से युक्त चतुर्विंशति तीर्थंकर पुराण को जिन्होंने अपनी विद्वत्ता से संग्रह किया ऐसे कविपरमेष्ठी लोक में कवियों के द्वारा पूज्य हैं।

इसी प्रकार आचार्य गुणभद्र ने भी कवि परमेष्ठी की प्रशंसा इस प्रकार की है—

कविपरमेश्वर निगदित गद्यकथा मात्रकं पुरोश्चरितं
सकल छंदोलंकृतिवक्ष्यं सूक्ष्मार्थं गूढपदरचनम् ।।

अर्थात् आचार्य जिनसेन व गुणभद्र के सामने कविपरमेष्ठी द्वारा रचित त्रिषष्टिशलाका पुरुषों का चरित्र गद्यकाव्य मे अवश्य होगा; अर्थात् यह कविपरमेष्ठी उनसे कितने प्राचीन है यह निश्चित नही कहा जा सकता है। फिर भी हम पंप-युग से कर्नाटक-साहित्य की निश्चित भूमिका को व्यक्त कर सकते है, अत उस महाकवि के काल से ही कर्नाटक काव्य-सृष्टि का हम यहाँ दिग्दर्शन करायेंगे।

पंप महाकवि

कर्नाटक-साहित्य पंप महाकवि के आदिकाव्य से समृद्ध हुआ है। कर्नाटक-साहित्य का नाम लेने पर पंप का, पंप का नाम लेने पर कर्नाटक-साहित्य का स्मरण हो जाता है। पंप ने गद्यपद्यपथ चंपूकाव्य से ही अपनी काव्य-सृष्टि का श्रीगणेश किया है। पंप का समय ९४१ ई माना जाता है। इसने एक धार्मिक व दूसरा लौकिक ऐसे दो काव्यो की रचना की है, जिनके नाम है— 'आदिपुराण' और 'पंप भारत'। ये दोनो अजोड चंपूकाव्य हैं। इसके पूर्वज वैदिक धर्मावलंबी थे, परंतु इसके पिता अभिराम देव ने जैनधर्म मे प्रभावित होकर जैनधर्म को ग्रहण किया, इसलिए पंप के जीवन मे जैनधर्म के ही संस्कार रहे।

'आदिपुराण' की कथावस्तु भगवज्जिनसेनाचार्य के महापुराणातर्गत आदि-जिनेश-चरित है तथापि इसकी शैली स्वतंत्र है। संस्कृत महापुराण के समान ही इसमे भी यत्र-तत्र प्रसंगोपात्त धर्म का भी विवेचन है। भोग व योग का सामंजस्य साधते हुए ग्रंथकार ने सर्वत्र भोग-त्याग का ही संकेत किया है।

दूसरा ग्रंथ पंप चरित या पंप भारत है। विषय भारत है। अपने समय के प्रसिद्ध राजा अरिकेसरी को अर्जुन के स्थान पर रखकर उसकी प्रशसा की है। कर्नाटक मे यह आद्यकवि माना जाता है। जैन व जैनेतर विद्वानो मे इसके काव्यों के प्रति परमादर

है। उत्तरकालवर्ति ग्रंथकारों ने भी पंप का बहुत आदर के साथ स्मरण किया है। आगे जाकर कवि नागचंद्र ने स्वयं का अभिनव पंप के नाम से उल्लेख किया है इससे भी इसकी महत्ता सहज ही समझ मे आती है।

कवि पोन्न

पंप के बाद पोन्न का नाम सादर उल्लेखनीय है। यह करीब ई. ९५० मे हुआ है, इसने दो धार्मिक एवं एक लौकिक काव्य की रचना की है। लौकिक काव्य भुवनैक रामाभ्युदय अनुपलब्ध है, शातिनाथ पुराण महत्त्वपूर्ण काव्य है, जिनाक्षरमाला स्तोत्र-ग्रंथ है। इसे कवि-चक्रवर्ती, उभयभाषा-चक्रवर्ती आदि उपाधियाँ थी, उत्तरवर्ती ग्रंथकारो ने इसका भी सादर स्मरण किया है। इसके द्वारा रचित शांतिनाथ पुराण से प्रभावित होकर दान चिंतामणि अतिमब्बे ने उसकी १००० प्रतियो का लिखाकर वितरण किया।

कवि रन्न

पोन्न के बाद कविरत्न का क्रम है। यह करीब ९९३ ई मे हुआ सामान्य वैश्य कासार कुल मे उत्पन्न होने पर भी उद्दाम पाडित्य को इसने पाया था। अपनी प्रतिभा मे अनेक उत्तम ग्रथो की रचना इसने की थी। इसके द्वारा लिखित अजितनाथ पुराण एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है।

परशुरामचरित, चक्रेश्वर-चरित अनुपलब्ध हैं। यह भी कर्नाटक-साहित्य-गगन का एक गणनीय नक्षत्र है।

पप, रन्न एव पोन्न कर्नाटक-साहित्य के रत्नत्रय कहलाते है। इसी से इनके महत्त्व का पता लग सकता है।

कवि चावुंडराय–

चावुडराय अथवा चामुडराय राचमल्ल का सेनापति तथा मंत्री था। वीर होते हुए भी कलाप्रिय था। अपनी माता की प्रेरणा से श्रवणबेलगोला के विशालकाय भगवान् बाहुबलि की मूर्ति का निर्माण इसी ने कराया था, यह करीब क्रि श ९६१ से ९८ तक था। इसने सस्कृत मे चारित्रसार नामक ग्रथ की रचना की है। उसी प्रकार कन्नड मे चतुर्विशति तीर्थकर चरित्र की रचना की जो चामुडराय-पुराण के नाम से प्रसिद्ध है। यह गद्य-ग्रंथ है। इसी प्रकार शिवकोटी ने वड्डाराधने नामक गद्य-ग्रंथ की रचना की है, जो उपलब्ध है; चामुंडराय की अन्य भी कृति होगी, परंतु उपलब्ध नहीं है। श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत-चक्रवर्ती से इसने अध्यात्म-बोध प्राप्त किया था।

इसी युग मे अन्य भी बहुत से कवि हो गये हैं जिनके द्वारा कर्नाटक-साहित्य-ससार समृद्ध हुआ है।

ज्योतिष-शास्त्र के प्रणेता श्रीधराचार्य

इनका समय ११ वी शताब्दी का मध्य था। इन्होने ज्योतिष-सबंधी 'जातक तिळक' नामक ग्रथ की रचना की है जिसमे जातक (जन्मपत्र) सबधी सूक्ष्म विचार किया गया है।

दिवाकर नदी

य करीब ई १०६१ मे हुए इन्होने भगवान् उमास्वामी-विरचित तत्त्वार्थसूत्र पर कन्नड तात्पर्यवृत्ति लिखी है जो अत्यन्त मनोज्ञ है।

कवि शातिनाथ

इनका समय करीब १०६८ ई है। इन्होने कन्नड मे सुकुमार चरित्र की रचना की है। ये अत्यन्त प्रौढ कवि थे इनको अनेक सम्माननीय उपाधियाँ प्राप्त थी।

अभिनव पप नागचन्द्र

करीब १२ वे शतमान के आदि म नागचन्द्र नामक महान् विद्वान् हुआ जिसने पदमचरित या रामकथा-चरित की रचना की है। इस रामायण को पप रामायण भी कहते है। वस्तुत यह रामायण महाकवि पप-विरचित नही है, परन्तु यह कवि अभिनव प्प के नाम से प्रसिद्ध था अत वह रामायण भी पपरामायण के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस उदात्त कवि ने विजयपुर मे एक मल्लिनाथ जिन-मदिर का निर्माण कराया जिसकी स्मृति म उसने मल्लिनाथ पुराण की रचना की । यह भी पठनीय है।

कवियित्री कन्ति

इसी युग मे कान्ति नाम की एक कवियित्री हुई है। इसके द्वारा विरचित अनेक ग्रथ की उपलब्ध नही है तथापि 'कति पप की समस्याएँ' इस नाम से प्रश्नोत्तर रूप से समस्या-पूर्ति रूप काव्य मिलता है जिसे देखने पर मालूम होता है कि यह प्रौढ कवियित्री थी।

नयसेन

करीब बारहवे शतमान के आदि मे कर्नाटक भाषा के चपूकाव्य मे बहुत बडी रचना इसने की है। धर्मामृत इसकी रचना है। पदलालित्य, दृष्टात-प्रचुरता, विनोद विशेष इसके काव्य की विशेषता है। १४ आश्वासो से युक्त इस ग्रथ मे अष्टांग

व पंच अणुव्रतो की व्याख्या कथापूर्वक की गयी है। स्वाध्याय करने वालो को बहुत प्रभावित करती हैं ये कथाएँ। इस युग का यह महान् काव्य-मनीषी हुआ।

राजादित्य

बारहवे शतमान के प्रारम्भिक भाग मे ही यह कवि हुआ है। इसने गणित-शास्त्र पर रचना की है। गणित-शास्त्र पर ही इसकी अधिक अभिरुचि प्रतीत होती है।

कीर्तिवर्म

सन् ११२५ ई मे यह कवि हुआ है। वैद्यक शास्त्र के अगभत गोवैद्य पर इसने लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि पशु-वैद्य के विषय मे भी जैन ग्रथकारो की अच्छी गति थी। आयुर्वेद विषयक ग्रथ तो जैनाचार्यों ने लिखा ही है।

कर्णपार्य

करीब ११४० ई मे यह कवि हुआ है। इसने कन्नड मे सुदर रूप से नेमिनाथ पुराण की रचना की है जो सर्वप्रिय हो गया है।

नागवर्म

यह १२ वे शतमान के मध्यभाग मे हुआ है। इसकी न्याय व्याकरण-साहित्य पर अच्छी गति थी। इसने काव्यावलोकन अभिधान वस्तुकोष कर्णाटक भाषाभूषण एव छद शास्त्र आदि रचना की है। अन्य ग्रथ भी होगे परन्तु अनुपलब्ध है।

सोमनाथ

यह करीब ११५० ई मे हुआ है। इसने कल्याण कारक नामक कन्नड वैद्यक ग्रंथ की रचना की है। शायद यह पूज्यपाद-कृत कल्याणकारक की कर्नाटक व्याख्या है। आयर्वेद के सबध मे जैनाचार्यों ने जिन ग्रथो का निर्माण किया उनका नाम विशेषत कल्याणकारक ही रखा गया क्योकि उससे जगत् का कल्याण हुआ।

इसी प्रकार इस बारहवे शतमान मे वृत्त विद्यास (११६०) ने शास्त्रसार की रचना की। नेमिचन्द्र (११७०) ने लीलावती व नेमिनाथ पुराण की रचना की है। लीलावती एक सुदर चपू ग्रन्थ है। इसके बाद बोधण देव ने स्तुतिस्तोत्रादि विषयक ग्रंथो की रचना की है। करीब ११८२ ई मे अग्गत देव नामक कवि हुआ जिसने चन्द्रप्रभ पुराण की रचना की है। सन् ११९५ मे आचण्णा कवि ने वर्धमान पुराण लिखा है जिसमे भगवान महावीर के चरित्र के संबध मे सागोपाग विवेचन है।

१२०० ई मे बधुवर्म नामक ग्रथकार हुआ, जिसने हरिवशाभ्युदय नामक पौराणिक ग्रथ एव जीव सबोधन नामक आध्यात्मिक ग्रथ की रचना की है। जीव-सबोधन मे आत्महित को दृष्टि मे रखकर आत्मा को ससार से पार होने के लिए

जागृत किया गया है। बारहवीं शती के आदि मे ही पार्श्वनाथ नामक कवि हुआ जिसने पार्श्वनाथ पुराण की रचना की है। करीब १२३५ ई. मे गुणवर्म ने पुष्पदंत पुराण व चंदनाष्टक की रचना की है; इसी काल मे कमलभव नामक कवि हुआ जिसने शांतीश्वर पुराण की रचना की है, जिसमे बहुत सुंदर रूप मे भगवान् शांतिनाथ का चरित्र चित्रित किया है। इस शती के मध्यभाग में महाबल कवि हुआ, जिसने नेमिनाथ पुराण की रचना की है।

इन सब ग्रंथकर्ता, कृतिकर्ताओ का यहाँ नामोल्लेख मात्र किया है। इनको तत्कालीन व उत्तरकालीन विद्वानो ने अनेक उपाधियो से विभूषित किया है, इनका विशेष परिचय देने से एक स्वतंत्र ग्रंथ हो जाएगा अत यहाँ उनका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। यदि विस्तृत परिचय देखना हो तो श्री आ कुंथु सागर ग्रंथमाला मे प्रकाशित पंप-युग के जैन कवि, यह पुस्तक देखे। पंप के बाद करीब ४०० वर्षो मे ही ये सब कवि हुए है जिन्होने पंप का आदरपूर्वक स्मरण ही नही किया है, अपितु अनुकरण भी किया है। इसलिए इन्हे पंप युग के कवि कहते है जो सार्थक है।

कवि-चक्रवर्ती जन्न

जन्न महाकवि कहलाता था। कवि-चक्रवर्ती उसकी उपाधि थी। ई सन ११७० से १२३५ के बीच जन्न महाकवि ने अपनी महान् कृति के द्वारा कर्नाटक को उपकृत किया था। इसने अपनी कृति यशोधर चरित मे अपने रचना-कौशल का दर्शन कराया है। पदलालित्य, भाव-प्रभाव, कल्पना-कौशल इसके काव्य की विशेषता है। इस काव्य का विषय यशस्तिलक चंपू मूल संस्कृत काव्य का है। यशोधर महाराज के चरित्र को कर्म-विधान के विचित्र रूप के द्वारा प्रदर्शित कर कवि ने संसार की असारता का दर्शन कराया है। जन्न महाकवि ने यशोधर चरित को वही स्थान प्राप्त है जो संस्कृत साहित्य मे यशस्तिलक चंपू को प्राप्त है, इतना कहने से इसके काव्य की महत्ता समझ मे आ जाएगी।

इसी प्रकार अनेक ग्रंथकार उभय भाषा कोविद हुए है। उनकी संस्कृत एवं कन्नड मे अच्छी गति थी। इसलिए वे उभय भाषाचक्रवर्ती कहलाते थे, उनमे मे हस्तिमल्ल का नाम समादर के साथ लिया जा सकता है। हस्तिमल्ल ने कन्नड मे भी आदि-पुराण की रचना की है। संस्कृत मे संहिता, नाटक व ग्रंथो की रचना की है।

१४ वें शतक में भास्कर कवि ने जीवंधर चरित को एवं कवि बोम्मरस ने सनत्कुमार चरित्र एवं जीवंधर चरित की रचना की है। इसके बाद १५ वें शतक मे भी अनेक कर्नाटक कवियो ने अपनी रचनाओ से इस साहित्य-क्षेत्र को समृद्ध किया है। १६ वे शतक के प्रारंभ मे मंगरस कवि ने सम्यक्त्व कौमुदी, जयनृप काव्य, नेमीश जिन संगति, प्रभंजन चरित व सूपशास्त्र आदि ग्रंथो की रचना की। इसी

प्रकार साळ्व कवि ने भारत व दोड्डय ने चंद्रप्रभचरित का निर्माण लगभग इसी समय किया है।

महाकवि रत्नाकर

१६वी शती में यह प्रतिभावंत कवि हुआ है। इसका परिचय इस लेख में नहीं दिया तो हमारा लेख अधूरा रह सकता है। हमारे लिए यह प्रिय कवि है। इसके द्वारा सागत्य छद में रचित भरतेश्वर वैभव नामक शृंगार-आध्यात्मिक ग्रंथ १० हजार छंदों में विरचित है। इसीसे सांगत्य-युग का प्रारंभ होता है। सागत्य कन्नड मे एक विशिष्ट कर्णमधुर गेय छद है। कवि ने इस ग्रंथ मे भोग-योग का सामजस्य कर अंत मे एक का त्याग व दूसरे का ग्रहण करने का विधान किया है। इसका समय १५५७ ई माना जाता है। भरतेश वैभव को इसने भोग विजय, दिग्विजय, योग विजय, मोक्ष विजय व अर्क कीर्ति विजय के नाम से पचकल्याणो मे विभक्त किया है। इस आध्यात्मिक कथा के नायक आदि प्रभु के आदि पुत्र भरतेश हैं जो तद्भव मोक्षगामी है। कथा को आध्यात्मिक व शृगारिक ढग से वर्णन करने की कवि की अनूठी शैली है। कर्नाटक के घर-घर मे यह पढ़ा जाता है। लेखक द्वारा इसका हिन्दी अनुवाद हुआ है, उस पर से गुजराती व मराठी अनुवाद भी हो चुके है। भारतीय साहित्य अकादमी के अन्तर्गत अग्रेजी अनुवाद भी हो रहा है। भारतीय गौरव ग्रंथो मे यह एक है। इसने रत्नाकर, अपराजित व त्रिलोक नामक तीन शतको की भी रचना की है, जो केवल आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादन करते है। कुछ आध्यात्मिक भजनो का भी निर्माण इसके द्वारा हुआ है।

इसके बाद सांगत्य छद मे ग्रथ-रचना करने वालो का मार्ग प्रशस्त हो गया है। उन कवियो का यहाँ हम उल्लेख मात्र करते हैं। बाहुबलि कवि ने (१५६०) नागकुमार चरित, पायण्ण व्रतिने (१६०६) सम्यकत्व कौमुदी, पंचबाण ने (१६१४) भुजबलि चरित्र की रचना की है। इसी प्रकार चद्रम कवि ने (१६४६) कार्कल गोम्मट चरित, धरणी पडित ने (१६५०) बिज्जण चरित, नेमि पडित ने (१६५०) सुविचार चरित, चिदानद ने (१६८०) मुनिवशाभ्युदय, पद्मनाभ ने (१६८०) जिनदत्त राय चरित्र, पायण्ण कवि ने (१७५०) रामचद्र चरिते, अनत कवि ने (१७८०) श्र बे. गोम्मट चरित, धरणी पंडित ने वराग चरित, चद्र सागर वर्णी ने (१८१०) रामायण, चारु पंडित ने भव्यजन चिंतामणि एव इसी समय देवचद्र ने राजवली कथाकोष की रचना की है। पंप का युग चपू-युग के नाम से प्रसिद्ध है तो रत्नाकर के युग को सागत्य-युग के नाम से निस्सदेह पुकार सकते हैं। सचमुच, ये दोनों साहित्य-जगत् के युगपुरुष है।

विभिन्न विषयों को जैन साहित्यकारों की देन

नृपतुंग द्वारा विरचित कविराज मार्ग से जैन कवियो की साहित्य-सेवा पर यथेष्ट प्रकाश पडता है। छद, अलंकार, वैद्य, ज्योतिष, सिद्धांत, न्याय, व्याकरण,

आयर्वेद निमित्त शकुन आदि सब विषयो पर कर्नाटक साहित्यकारो ने ग्रथ-निर्माण किया है। सैकड़ो ग्रथ आज उपलब्ध नही है। इसमे हमारे समाज का प्रमाद ही कारण है परन्तु यह मात्र सत्य है कि हमारे पूवज विद्वान सवविषयो मे प्रभुत्व रखते थे। उनकी कृतियो से हम इस विषय का अनुमान कर सकते है।

नागवम ने छदोदधि नामक छन्द-ग्रन्थ की रचना की। अन्य नागवम ने कर्नाटक भाषा भषण नामक व्याकरण-ग्रथ की रचना की। इसी प्रकार अलकार विषयक काव्या वलोकन कोष विषयक वस्तु-कोष भी अवलोकनीय है। भट्टाकलक का शब्दानुशासन केशिराज का मणिदपण साल्व का रसरत्नाकर (आयर्वेद) देवोत्तम का नानार्थ रत्नाकर शृगार कवि का कनाटक मजीवन आदि ग्रथ विविध विषयो के उल्लेख नीय ग्रथ है। इसी प्रकार ज्योतिष वैद्यक व सामद्रिक विषयो के भी ग्रथो की रचना इन कवियो द्वारा हुई है। शिवमारदेव का हस्त्यायर्वेद देवद्र मनिका बालग्रह चिकित्सा चद्रराज का मदन तिलक जन्न का स्मर-तत्र चामडराय का सामद्रिक शास्त्र जयबधु नदन का सूप शास्त्र अहददास का शकुन शास्त्र भी उल्लेखनीय है। इससे ज्ञात होता है कि साहित्य के सब अगो को कर्नाटक के साहित्यकारो ने हृष्ट पुष्ट किया है।

इस तरह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कर्नाटक-साहित्य कवल प्राचीनता की दृष्टि से ही नही महत्ता की दृष्टि से भी आज सर्वोत्तम है। आज जन जैनेतर समाज इसीलिए जन साहित्य का बहत आदर स देखता है। विश्वविद्यालयो की उच्च तर कक्षाओ म विशषत जैन साहित्य के भाग को ही विद्यार्थियो का अध्ययन करने के लिए दिया जाता है।

प्राय सभी ग्रन्थकारो ने ग्रथ के प्रमेय का प्रतिपादन करते हुए यत्र-तत्र जैन धम के अनकरणीय तत्त्वो का उपदेश दिया है। सवसाधारण के जीवन मे व तत्त्व कितने हितकर है इस बात को अच्छी तरह प्रतिबिबित कराया है अत जैनधम के विकास मे अन्य भाषा के साहित्यकारो का जैसा योगदान रहा है उसी प्रकार कर्नाटक साहित्यकारो का भी बहुत बडा योगदान रहा है।

महर्षि विद्यानन्द मुनि इसी पुण्य भूमि के है। यद्यपि सर्वसग-परित्याग करने के बाद प्रान्त देश जाति की विवक्षा नही रहती है तथापि कर्नाटक प्रान्त का एसी देन का स्वाभिमान तो हो ही सकता है। ○○○

जो द यथ को अर्थ
वह सिद्ध वही समथ

—क ला सेठिया

मध्यप्रदेश का जैन पुरातत्त्व

बीरसिंगपुर-पाली में सिद्धबाबा के नाम से ज्ञात ऋषभनाथ प्रतिमा खुले मैदान में तमाम ग्रामवासियों द्वारा पूजी जाती है।

☐ बालचन्द्र जैन

जैन पुरातत्त्व मे मध्यप्रदेश बहुत धनी है। इसके गाँवों मे यत्र-तत्र जैन अवशेष बिखरे पडे हैं। मुक्तागिरि मक्सी ऊन बावनगजा सिद्धवरकट सोनागिर, पपौरा रेशन्दीगिरि द्रोणगिरि अहार जैसे विख्यात और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र इसी भू-भाग मे स्थित है जिनकी धम-यात्रा भारत के विभिन्न प्रदेशो के यात्रिक हजारो की सख्या मे प्रति वष किया करते हैं।

मध्यप्रदेश मे प्राचीनतम जिन प्रतिमाएँ विदिशा मे प्राप्त हुई है। विदिशा प्राचीनकाल मे न केवल सास्कृतिक अपितु राजनैतिक कारणो से भी अत्यन्त महत्त्व-पूण रहा है। गुप्तवशीय सम्राटो के समय मे विदिशा के निकटवर्ती प्रदेश मे भार-तीय कला का अनूठा विकास हुआ। गुप्तकाल मे विदिशा का प्रदेश जैनो का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था इसके पुरातात्त्विक प्रमाण अब एकाधिक प्राप्त हो चुके हैं। उदयगिरि की गफा क्रमाक २० म उत्कीर्ण भित्ति-लेख से स्पष्ट है कि कुमारगुप्त के राज्यकाल म इस गुफा मे भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा का निर्माण कराया गया था। विदिशा के ही एक मुहल्ले मे हाल मे प्राप्त तीन तीर्थंकर प्रतिमाओ की चरण-चौकी पर उत्कीर्ण लेखो ने यह सिद्ध कर दिया है कि महाराजधिराज श्री रामगुप्त के आदेश से वहाँ कई जिन-प्रतिमाओ का निर्माण हुआ था। दो प्रतिमाओ पर क्रमश चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त के नाम पढे गये हैं। मध्यकाल मे भी विदिशा का क्षेत्र जैनो का प्रमुख केन्द्र बना रहा। ग्यारसपुर और बडोह पठारी मे जैन पुरातत्व की सामग्री आज भी विद्यमान है। विदिशा के जिला-सग्रहालय मे एकत्र की गयी जैन प्रतिमाओ मे से यक्षी 'अम्बिका की मध्यकालीन प्रतिमा एक उत्कृष्ट कला-कृति है।

गुना, शिवपुरी, ग्वालियर और दतिया जिले के कई स्थान प्राचीन जैन कला-कृतियों से समृद्ध हैं। तुमैन (प्राचीन तुम्बवन) में लगभग ६५० ईस्वी की पार्श्व-नाथ प्रतिमा प्राप्त हुई है। कदवाहा के निकटवर्ती ईदौर नामक ग्राम मे कई भव्य

शिल्पकृतियाँ उपेक्षित पड़ी हुई हैं। नरवर की सैकड़ो जिन-प्रतिमाएँ अब शिवपुरी के जिला-सग्रहालय मे प्रदर्शित, अथवा सुरक्षित हैं। नरवर से ही प्राप्त एक पट्ट में चतुर्विशति तीर्थंकरों की सलांछन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं, जो अपने प्रकार की अनूठी कृतियाँ हैं। ग्वालियर का किला चारों ओर से विशाल तीर्थंकर-प्रतिमाओं से समन्वित है। तोमरवंशी राजाओ के राज्यकाल में निर्मित उन प्रतिमाओं से गोपाचल गढ पुण्यभूमि बन गया है।

मालवा की भमि मे जैनत्व का खूब प्रचार-प्रसार हुआ था। अवन्ती और उज्जयिनी का उल्लेख जैन ग्रंथो मे सम्मान के साथ मिलता है। परमार-वंश के नरेशो के समय मे मालवा मे स्थान-स्थान पर जिन-मंदिरों का निर्माण हुआ, जिनमें से कई तो आज तक विद्यमान हैं। भोजपुर के प्राचीन मंदिर मे राजा भोज के राज्यकाल मे निर्मित उत्तुग प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं। भोपाल के ही निकट स्थित समसगढ के जैन मदिरो मे प्राचीन जैन-पुरातत्त्व सामग्री का विपुल सग्रह है। ऊन के जैन-मदिरो का उल्लेख बहुधा किया जाता है। धारा नगरी की सुज्ञात सरस्वती की प्रतिमा को अनेक विद्वानो ने जैन सरस्वती का रूपाकन स्वीकार किया है।

बुदेलखण्ड के गाँव-गाँव मे प्राचीन स्थापत्य के नमूने देखने को मिलते है। चन्देरी किसी समय जैन मूर्ति एव स्थापत्य-कला का एक समृद्ध केन्द्र था। आज भी वह उतना ही महत्त्वपूर्ण है। बूढी चदेरी के प्राचीन जिन-मदिरो की बहुत-सी प्रतिमाएँ अब चन्देरी के शिल्प-मण्डप (स्कल्प्चर शेड) मे लाकर जमा की गयी हैं। चन्देरी के निकटवर्ती गुहा मदिरो मे तेरहवी शताब्दी की उत्तुग तीर्थंकर-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। उसी प्रदेश मे थबौन तीर्थक्षेत्र है, जिसकी वदना के लिए प्रतिवर्ष हजारो यात्री आते है।

खजुराहो धर्म-समवाय का एक विशिष्ट केन्द्र रहा है। वहाँ शैवो और वैष्णवो के मदिरो के साथ जैन-मदिरो का भी निर्माण किया गया था। उन मदिरो मे से कुछ देवालय आज भी विद्यमान है। शान्तिनाथ मदिरो का अब प्राचीन रूप तो नही बचा पर उस मन्दिर मे एकत्रित कला-सामग्री चन्देल-कालीन जैन-वैभव का परिचय दे सकने मे समर्थ है। देवलिकाओ के गर्भ-गृह की बाह्य पट्टी पर जिन-माता के स्वप्नो का रूपाकन खजुराहो की विशेषता है। शान्तिनाथ मदिर मे ही क्षेत्रपाल की कायरूप प्रतिमा जैन प्रतिमा-विज्ञान के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

खजुराहो के पार्श्वनाथ मदिर की शिल्पकृतियो की उत्कृष्टता सभी कला-पारखियों ने एक स्वर मे स्वीकार की है। आदिनाथ मंदिर मे यक्ष-यक्षियो की विभिन्न

मूर्तियाँ जैन-देववाद के अध्ययन में विशेष सहायक हैं। चन्देल राजाओं के राज्यकाल में बुंदेलखण्ड में जैनों के कई केन्द्र स्थापित हो गये थे, इसका प्रमाण भिन्न-भिन्न स्थानों में प्राप्त अवशेषों में मिलता है। छतरपुर के निकट ऊर्दमऊ मे चन्देलकालीन जैन मंदिर है, जिसमें सोलहवे तीर्थंकर शान्तिनाथ की उत्तुंग किन्तु भव्य प्रतिमा विराजमान है। ऊर्दमऊ की कुछ मनोरम प्रतिमाएँ अब छतरपुर मे डेरापहाड़ी के मंदिरो मे लाकर स्थापित की गयी है। अहार और अजयगढ की जैन-पुरातत्त्व सामग्री चन्देलकालीन जैन-कला के अध्ययन के लिए विपुल न्यास समुपस्थित करती है। नौगाव के निकट स्थापित शासकीय संग्रहालय मे चन्देलकालीन जैन-प्रतिमाओ का सग्रह है। उन प्रतिमाओ मे से कई एक पर तात्कालीन लेख भी उत्कीर्ण है। इन लेखो का सग्रह प्रकाशित किया जाना आवश्यक है। पन्ना के निकट मोहेन्द्रा मे बहुत-सी जैन प्रतिमाएँ अरक्षित अवस्था मे बिखरी पडी बतायी जाती है। थोडी-सी जैन प्रतिमाएँ पन्ना के छत्रसाल पार्क मे भी एकत्र की गयी हैं।

रीवा और शहडोल का बहुत-सा इलाका त्रिपुरी के कलचुरि राजवश के साम्राज्य का अग रहा है। कलचुरि राजाओ की धर्म-सहिष्णु नीति के फलस्वरूप कलचुरि साम्राज्य के विभिन्न केन्द्रो मे जैन मंदिरो का निर्माण हुआ था। बीरसिंगपुर-पाली मे सिद्धबाबा के नाम से ज्ञात ऋषभनाथ प्रतिमा खुले मैदान मे तमाम ग्रामवासियो द्वारा पूजी जाती है। शहडोल के मदिर मे भी कुछ प्राचीन मूर्तियाँ प्रतिष्ठित है। सतना के निकट रामबन के सग्रहालय मे आसपास के स्थानो मे सगृहीत जैन-शिल्प सुरक्षित है। मैहर-नागौद क्षेत्र की जैन कृतियाँ भी उल्लेखनीय है। नागौद के निकट-वर्ती एक स्थान से प्राप्त अम्बिका की भव्य प्रतिमा इलाहाबाद के सग्रहालय मे सुरक्षित है। उस प्रतिमा मे अम्बिका के साथ अन्य तेईस शासन-यक्षियो की भी प्रतिमाएँ हैं जिनके नीचे उनके नाम उत्कीर्ण हैं।

कलचुरि काल मे जबलपुर जिले के तेवर (प्राचीन त्रिपुरी), कारीतलाई, बिलहरी, बहुरीबद आदि स्थान प्रसिद्ध जैन केन्द्र रहे। कारीतलाई की अनेक जैन प्रतिमाएँ अब रायपुर के सग्रहालय मे प्रदर्शित हैं जबकि बिलहरी और तेवर के जैन शिल्प के नमूने जबलपुर के सग्रहालय मे देखे जा सकते है। बहुरीबद की शान्तिनाथ प्रतिमा पर तत्कालीन लेख उत्कीर्ण है। टोला ग्राम की जैन प्रतिमाएँ भी अब प्रकाश मे आ चुकी हैं। सिवनी जिले में लखनादौन, छपारा और घुनसौर मे सुन्दर जैन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। नरसिंहपुर के निकट बरहठा की तीर्थंकर प्रतिमाएँ विशाल एवं भव्य हैं।

छत्तीसगढ में मल्लार, रत्नपुर, सिरपुर, आरंग, राजिम, नगपुरा और कवर्धा आदि स्थानों मे जैन पुरातत्त्व का विपुल सग्रह है। रत्नपुर के कलचुरि राजाओं के राज्य-

काल मे निर्मित आरग का जैन मदिर आज भी दर्शनीय है। दक्षिण कोसल की प्राचीन राजधानी श्रीपुर (आधुनिक सिरपुर) मे प्राप्त पार्श्वनाथ प्रतिमा रायपुर के सग्रहालय मे प्रदर्शित है। नगपुरा (जिला दुर्ग) की पार्श्वनाथ प्रतिमा अति सुन्दर और आकर्षक है पर उपेक्षित दशा मे पड़ी हुई है। मल्लार मे ऊँची-ऊँची तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। रत्नपुर की कुछ जिन-प्रतिमाएँ रायपुर के सग्रहालय मे सुरक्षित है पर शेष वही ग्राम मे यत्र-तत्र पडी हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि तमाम जैन-सामग्री का व्यवस्थित सर्वेक्षण और उनकी सुरक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाए।

मध्यप्रदेश कई सास्कृतिक भूखण्डो का एक मिला-जुला प्रदेश है। यहाँ प्राचीन काल मे भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे भिन्न-भिन्न राजवशो ने राज्य किया था इसलिए मध्य-प्रदेश की कला मे स्थानीय वैशिष्ट्य के दर्शन होते है। □□

दुःख यदि ना पावे तो

दु:ख यदि ना पाबे तो दु:ख तोमार घुचबे कबे ?
विषके विषेर दाह दिये दहन करे मारते हबे ।।
ज्वलते दे तोर आगुन टारे, भय किछु ना करिस तार,
छाई हये से निभबे जखन ज्वलबे ना आर कभे तबु ।।

—रवीन्द्रनाथ

दु:ख पायेगा नहीं, तो दु:ख तेरा जायेगा कैसे ?
मारना होगा विष को विष की ज्वाला से दग्ध करके ।।
ज्वाला दु:ख की भड़कती है, तो भडकने दे, उसका क्या भय,
राख होकर ठण्डी पड़ जाएगी वह, और फिर कभी नहीं भड़केगी ।

प्राचीन मालवा के
जैन सारस्वत और उनकी रचनाएं

मालवा मे जैन सारस्वतों की कमी नहीं रही है। यदि अनुसधान किया जाए तो जैन सारस्वतों और उनके ग्रन्थों पर एक अच्छी सन्दर्भ-पुस्तक लिखी जा सकती है।

–डा. तेजसिह गौड़

मालवा भारतीय इतिहास मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। साहित्य के सम्बन्ध मे भी यह पिछडा हुआ नही रहा है। कालिदास-जैसे कवि इस भूखण्ड की ही देन है। प्राचीन मालवा मे जैन विद्वानो की भी कमी नही रही है। प्रस्तुत निबन्ध मे मालवा से सम्बन्धित जैन विद्वानो के संक्षिप्त परिचय के साथ उनकी कृतियो का भी परिचय देने का प्रयास किया गया है। इनके सम्बन्ध मे सामग्री जहाँ-तहाँ बिखरी पडी है। तथा आज भी जैनधर्म से सम्बन्धित कई ग्रथ ऐसे है जो प्रकाश मे नही आये हैं, फिर भी उपलब्ध जानकारी के अनुसार जैन सारस्वत और उनकी रचनाएँ इस प्रकार है

१. आचार्य भद्रबाहु आचार्य भद्रबाहु के विषय मे अधिकाश व्यक्ति जानकारी रखते है। ये भगवान् महावीर के पश्चात् छठवें थेर माने जाते हैं। इनके ग्रथ "दसाउ" और "रम निज्जुत्ति" के अतिरिक्त कल्पसूत्र का जैनधार्मिक साहित्य में बहुत महत्त्व है।

२. क्षपणक : ये विक्रमादित्य के नवरत्नो मे से एक थे। इनके रचे हुए न्यायावतार दर्शनशुद्धि, सन्मतितर्कसूत्र और प्रमेयरत्नकोष नामक चार ग्रथ प्रसिद्ध है। इनमे न्यायावतार ग्रथ अपूर्व है। यह अत्यन्त लघु ग्रथ है, किन्तु इसे देखकर 'गागर मे सागर' की कहावत याद आ जाती है। ३२ श्लोको मे इस काव्य में क्षपणक ने सारा जैन न्यायशास्त्र भर दिया है। न्यायावतार पर चन्द्रप्रभ सूरि ने 'न्यायावतार निवृत्ति' नामक विशद टीका लिखी है।

३. आर्यरक्षित सूरि : आपका जन्म मन्दसौर मे हुआ था। पिता का नाम सोमदेव तथा माता का नाम रुद्रसोमा था। लघु भ्राता का नाम फल्गुरक्षित था, जो स्वय भी आर्यरक्षित सूरि के कहने से जैन साधु हो गया था। पिता सोमदेव स्वय एक अच्छे

विद्वान् थे। आर्यरक्षित की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर पिता के द्वारा हुई फिर वे आगे अध्ययनार्थ पाटलिपुत्र चले गये। पाटलिपुत्र से अध्ययन समाप्त कर उनका जब दशपुर-आगमन हुआ तो स्वागत के समय माता रुद्रसोमा ने कहा "आर्यरक्षित, तेरे विद्याध्ययन से मुझे तब सन्तोष एव प्रसन्नता होती जब तू जैन दर्शन और उसके साथ ही विशेषत दृष्टिवाद का समग्र अध्ययन कर लेता।"

माँ की मनोभावना एव उसके आदेशानुसार आर्यरक्षित इक्षुवाटिका गये जहाँ आचार्य श्री तोसलीपुत्र विराजमान थे। उनसे दीक्षा-ग्रहण कर जैन दर्शन एव दृष्टिवाद का अध्ययन किया। फिर उज्जैन मे अपने गुरु की आज्ञा से आचार्य भद्रगुप्त-सूरि एव तदनतर आर्यवज्रस्वामी के समीप पहुँच कर उनके अन्तेवासी बनकर विद्याध्ययन किया।

आर्यवज्रस्वामी की मृत्यु के उपरान्त आर्यरक्षित सूरि १३ वर्ष बाद तक युग-प्रधान रहे। आपने आगमो को चार भागो मे विभक्त किया (१)करणचरणानुयोग, (२)गणितानुयोग, (३) धर्मकथानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग। इसके साथ ही आचार्य आर्यरक्षित सूरि ने अनुयोगद्वार सूत्र की भी रचना की, जो कि जैन दर्शन का प्रति-पादक महत्त्वपूर्ण आगम माना जाता है। यह आगम आचार्यप्रवर की दिव्यतम दार्श-निक दृष्टि का परिचायक है।

आर्यरक्षित सूरि का देहावसान दशपुर मे वीर निर्वाण सवत् ५८३ मे हुआ।

४. सिद्धसेन दिवाकर : प सुखलालजी ने श्री सिद्धसेन दिवाकर के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा है "जहाँ तक मै जान पाया हूँ, जैन परम्परा म तर्क का और तर्क-प्रधान सस्कृत वाङमय का आदि प्रणेता है सिद्धसेन दिवाकर।' उज्जैन के साथ इनका पर्याप्त सम्बन्ध रहा है। इसकी कृतियाँ इस प्रकार हैं १ "सन्मति प्रकरण" प्राकृत मे है। जैन दृष्टि और मन्तव्यो को तर्क-शैली म स्पष्ट करने तथा स्थापित करने मे जैन वाङमय मे यह सर्वप्रथम ग्रथ ह, जिसका आश्रय उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर-दिगम्बर विद्वानो ने लिया है। सिद्धसेन दिवाकर ही जैन परम्परा का आद्य सस्कृत स्तुतिकार है। २ 'कल्याण मदिर स्तोत्र ४४ श्लोको मे है। यह भगवान् पार्श्वनाथ का स्तोत्र है, इसकी कविता मे प्रसाद गुण कम और कृत्रिमता एव श्लेष की अधिक भरमार है। परन्तु प्रतिभा की कमी नही है। ३ 'वर्धमान द्वात्रिंशिका स्तोत्र' ३२ श्लोको मे भगवान् महावीर की स्तुति है। इसमे कृत्रिमता एव श्लेष नही है। प्रसादगुण अधिक है। इन दोनो स्तोत्रो मे सिद्धसेन दिवाकर की काव्यकला ऊची श्रेणी की पायी जाती है। ४ 'तत्वार्थाधिगम सूत्र की टीका" बडे-बडे जैनाचार्यो ने की है। इसके रचनाकार को दिगम्बर सम्प्रदाय वाले "उमास्वामिन्" और श्वेता-म्बर सम्प्रदाय वाले "उमास्वाति" बतलाते है, उमास्वाति के ग्रथ की टीका सिद्धसेन दिवाकर ने बडी विद्वत्ता के साथ लिखी है।

५. **जिनसेन :** ये आदिपुराण के कर्त्ता श्रावकधर्म के अनुयायी एवं पंचस्तूपान्वय के जिनसेन से भिन्न हैं। ये कीर्तिषेण के शिष्य थे।

जिनसेन का "हरिवंश" इतिहास-प्रधान चरित-काव्य-श्रेणी का ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना वर्धमानपुर (वर्तमान बदनावर, जिला धार) में की गयी थी। दिगम्बर कथाकोश सम्प्रदाय के कथा-संग्रहों मे इसका तीसरा स्थान है।

६. **हरिषेण :** पुन्नाट संघ के अनुयायियो में एक दूसरे आचार्य हरिषेण हुए। इनकी गुरु-परम्परा मौनी भट्टारक श्री हरिषेण भारतसेन, हरिषेण इस प्रकार बैठती है। अपने कथा-कोश की रचना इन्होने वर्धमानपुर या बढ़वाण (बदनावर) में विनायकपाल राजा के राज्यकाल मे की थी। विनायकपाल प्रतिहार वश का राजा था, जिसकी राजधानी कन्नौज थी। इसका ९८८ बि. स. का एक दानपात्र मिला है। इसके एक वर्ष पश्चात् अर्थात् वि. स ९८९ शक स. ८५३ मे कथाकोश की रचना हुई। हरिषेण का कथाकोश साढे बारह हजार श्लोक परिमाण का बृहद् ग्रंथ है।

७. **मानतुंग :** इनके जीवन के सम्बन्ध मे अनेक विरोधी मत हैं। इनका समय ७ वी या ८ वी सदी के लगभग माना जाता है। इन्होने मयूर और बाण के समान स्तोत्र-काव्य का प्रणयन किया। इनके भक्तामर स्तोत्र का श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो ही सम्प्रदाय वाले समान रूप से आदर करते है। कवि की यह रचना इतनी लोकप्रिय रही कि इसके प्रत्येक अन्तिम चरण को लेकर समस्यापूर्त्यात्मक स्तोत्र काव्य लिखे जाते रहे। इस स्तोत्र की कई समस्या-पूर्तियाँ उपलब्ध हैं।

८. **आचार्य देवसेन :** माघ सुदि १० वि. स ९९० को धारा मे निवास करते हुए पार्श्वनाथ के मदिर मे "दर्शनसार" नामक ग्रथ समाप्त किया। इन्होंने "आराधनासार" और "तत्वसार" नामक ग्रथ भी लिखे है। "आलापपद्धति", "नयचक्र" ये सब रचनाएँ आपने धारा मे ही लिखी अथवा अन्यत्र यह रचनाओ पर से ज्ञात नही होता है।

९. **आचार्य महासेन :** ये लाड बागड़ सघ के पूर्णचन्द्र थे। आचार्य जयसेन के प्रशिष्य और गुणाकरसेन सूरि के शिष्य थे। इन्होने ११ वी शताब्दी के मध्य भाग मे "प्रद्युम्न-चरित" की रचना की। ये मुज के दरबार मे थे तथा मुज द्वारा पूजित थे। न तो इनकी कृति मे ही रचना-काल दिया हुआ है और न ही अन्य रचनाओं की जानकारी मिलती है।

१०. **अमितगति :** ये माथुर सघ के आचार्य और माधवसेन सूरि के शिष्य थे। वाक्पतिराज मुज की सभा के रत्न थे। विविध विषयो पर आपके द्वारा लिखी गयी रचनाएँ उपलब्ध हैं १. सुभाषित रत्न सदोह की रचना वि. सं. ९९४ में हुई। इसमे

३२ परिच्छेद है, जिनमे प्रत्येक मे साधारणत एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है। इसमे जैन नीति-शास्त्र के विभिन्न दृष्टिकोणो पर आपातत विचार किया गया है, साथ-साथ ब्राह्मणो के विचार और आचार के प्रति इसकी प्रवृत्ति विसवादात्मक है। प्रचलित रीति के ढग पर स्त्रियो पर खूब आक्षेप किये गये है। एक पूरा परिच्छेद वेश्याओ के सम्बन्ध मे है। जैनधर्म के आप्तो का वर्णन २८ वे परिच्छेद मे किया गया है। ब्राह्मण धर्म के विषय मे कहा गया है कि वे उक्त आप्तजनो की समानता नही कर सकते, क्योकि वे स्त्रियो के पीछे कामातुर रहते हैं, मद्य सेवन करते है और इन्द्रियासक्त होते है। २ धर्मपरीक्षा बीस साल अनन्तर लिखा गया है। इसमे भी ब्राह्मण धर्म पर आक्षेप किये गये है और अधिक आख्यान-मूलक साक्ष्य की सहायता ली गयी है। ३ पचसग्रह विक्रम सवत् १०७३ मे मसूतिकापुर (वर्तमान मसूदाविलोदा) मे जो धार के समीप है, लिखा गया था। ४ उपासकाचार, ५ आराधना सामयिक पाठ, ६ भावनाद्वात्रिशतिका, ७ योग-सार प्राकृत (जो उपलब्ध नही है)।

११. **माणिक्यनंदी** : धार के निवासी थे और वहाँ दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते थे। इनकी एकमात्र रचना परीक्षामुख' नामक एक न्याय-सूत्र ग्रथ है, जिसमे कुल २०७ सूत्र है। ये सूत्र सरल, सरस और गभीर अर्थद्योतक है।

१२ **नयनंदी** : ये माणिक्यनदी के शिष्य थे। इनकी रचनाएँ है १ 'सुदर्शन चरित्र एक खण्डकाव्य हे जो महाकाव्यो की श्रेणी मे रखने योग्य है। २ सकल विहिविहाण एक विशाल काव्य है। इसकी प्रशस्ति मे इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गयी है। इसमे कवि ने ग्रथ की रचना मे प्रेरक हरिसिह मुनि का उल्लेख करते हुए अपने से पूर्ववर्ती जैन-जैनेतर और कुछ समसामयिक विद्वानो का भी उल्लख किया है। समसामयिका मे श्रीचन्द, प्रभाचन्द्र, श्री श्रीकुमार का उल्लेख किया है।

राजा भोज तथा हरिसिह के नामो के साथ बच्छराज और प्रभु ईश्वर का भी उल्लेख किया है। कवि ने वल्लभराज का भी उल्लेख किया है, जिसने दुर्लभ प्रतिमाओ का निर्माण कराया था। यह ग्रथ इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व का है। कवि के उक्त दोनो ग्रथ अपभ्रश भाषा मे है।

१३. **प्रभाचन्द्र** : माणिक्यनदी के शिष्यो मे प्रभाचन्द्र प्रमुख रहे। माणिक्यनदी के 'परीक्षामुख' नामक सूत्र ग्रथ के कुशल टीकाकार थे। दर्शन-साहित्य के अतिरिक्त वे सिद्धान्त के भीविद्वान थे। आपको भोज के द्वारा प्रतिष्ठा मिली थी। इन्होंने कई विशाल दार्शनिक ग्रथो के निर्माण के साथ-साथ अनेक ग्रथो की रचना की। इनके ग्रथ इस प्रकार है: १. प्रमेय कमलमार्तण्ड : एक दार्शनिक ग्रथ है जो कि

माणिक्यनदी के 'परीक्षामुख' की टीका है। यह ग्रथ राज भोज के राज्यकाल में लिखा गया, २ न्यायकुमुदचन्द्र : न्याय-विषयक ग्रन्थ है, ३. आराधना कथाकोश : गद्य ग्रथ है, ४. पुष्पदंत के महापुराण पर टिप्पण, ५ समाधितंत्रटीका (ये सब राजा जयसिह के राज्यकाल मे लिखे गये), ६ प्रवचन सरोजभास्कर, ७. पचास्तिकायप्रदीप, ८. आत्मानुशासन तिलक, ९. क्रियाकलापटीका, १०. रत्नकरण्डटीका, ११. बृहत स्वयम्भू स्तोत्र टीका, १२ शब्दाम्भोज टीका। ये सब कब और किसके राज्यकाल मे रचे गये कोई जानकारी उपलब्ध नही है। इन्होंने देवनदी की तत्त्वार्थवृत्ति के विषम पदों का एव विवरणात्मक टिप्पण लिखा है। इनका समय ११ वी सदी का उत्तरार्ध एव १२ वीं सदी का पूर्वार्ध ठहरता है।

इनके नाम से अष्टपाहुड पजिका, मूलाचार टीका, आराधना टीका आदि ग्रंथो का भी उल्लेख मिलता है, जो उपलब्ध नही है।

१४. आशाधर : सस्कृत साहित्य के अपारदर्शी विद्वान् थे। ये माडलगढ के मूल निवासी थे। मेवाड पर मुसलमान बादशाह शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमणों से त्रस्त होकर मालवा की राजधानी धारा मे अपनी स्वय एव परिवार की रक्षार्थ अन्य लोगो के साथ आकर बस गये। ये जाति के बघेरवाल थे। पिता सल्लक्षण एव माता का नाम श्री रत्नी था। पत्नी सरस्वती से एक पुत्र छाहड हुआ। इनका जन्म वि स १२३४-३५ के आसपास अनुमानित है। ये नालछा मे ३५ वर्ष तक रहे और उसे अपनी गतिविधियो का केन्द्र बनाया। **रचनाएँ :** १ सागारधर्मामृत . सप्त व्यसनो के अतिचार का वर्णन। श्रावक की दिनचर्या और साधक की समाधि व्यवस्था आदि इसके वर्ण्य विषय हैं, २ प्रमेयरत्नाकर · स्याद्वाद विद्या की प्रतिष्ठापना, ३ भरतेश्वराभ्युदय . महाकाव्य मे भरत के ऐश्वर्य का वर्णन है। इसे सिद्धचक्र भी कहते हैं क्योंकि इसके प्रत्येक सर्ग के अत मे सिद्धिपद आया है; ४ ज्ञानदीपिका, ५ राजमति विप्रलम्भ-खण्डकाव्य; ६ आध्यात्म रहस्य, ७ मूलाराधना टीका, ८. इष्टोपदेश टीका, ९ भूपाल चतुर्विंशतिका टीका, १०. आराधनासार टीका, ११.अमरकोष टीका, १२ क्रियाकलाप, १३. काव्यालकार टीका, १४ सहस्रनाम स्तवन सटीक, १५. जिनयज्ञ कल्प सटीक-यह प्रतिष्ठा सारोद्धार धर्मामृत का एक अग है। १६. त्रिषष्टि स्मृतिशास्त्र सटीक, १७ नित्य महोद्योत-अभिषेकपाठ स्नान शास्त्र, १८. रत्नत्रय विधान, १९ अष्टाग हृदयीद्योतिनी टीका-वाग्भट्ट के आयुर्वेद ग्रथ अष्टाग हृदयी की टीका, २० धर्मामृत-मूल और २१ भव्य कुमुदचन्द्रिका (धर्मामृत पर लिखी गयी टीका)।

१५. श्रीचन्द्र : ये धारा के निवासी थे। लाड़ बागड़ संघ और बलात्कारगण के आचार्य थे। इनके ग्रंथ इस प्रकार हैं : १. रविषेण कृत पद्मचरित पर टिप्पण; २. पुराणसार; ३. पुष्पदंत के महापुराण पर टिप्पण (उत्तरपुराण पर टिप्पण);

४ शिवकोटि की भगवतीआराधना पर टिप्पण । पुराणसार संवत् १०८० मे, पद्मचरित की टीका वि स १०८७ मे उत्तरपुराण का टिप्पण वि. स. १०८० मे राजा भोज के राज्यकाल मे रचा । टीकाप्रशस्तियो मे श्रीचन्द्र ने सागरसेन और प्रवचनसेन नामक दो सैद्धान्तिक विद्वानो का उल्लेख किया है, जो धारा निवासी थे। इससे स्पष्ट विदित होता है कि उस समय धारा मे अनेक जैन विद्वान और आचार्य निवास करते थे। इनके गुरु का नाम श्रीनंदी था।

१६. कवि दामोदर विक्रम सवत १२८७ मे ये गुर्जर देश से मालवा में आये और मालवा के सल्लखणपुर को देखकर सतुष्ट हो गये। ये मोडोत्तम वश के थे। पिता का नाम कवि माल्हण था, जिसने दल्ह का चरित्र बनाया था। कवि के ज्येष्ठ भ्राता का नाम जिनदेव था। कवि दामोदर ने सल्लखणपुर मे रहते हुए पृथ्वीधर के पुत्र रामचन्द्र के उपदेश एव आदेश से तथा मल्हपुत्र नागदेव के अनुरोध से नेमिनाथ चरित्र वि स १२८७ मे परमारवशीय राजा देवपाल के राज्य मे बनाकर समाप्त किया।

१७. भट्टारक श्रुतकीर्ति ये नदी सघ बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान् थे । त्रिभुवनर्मात के शिष्य थे । अपभ्रश भाषा के विद्वान् थे। आपकी उपलब्ध सभी रचनाओ मे अपभ्रश भाषा के पद्धाडया छन्द मे रची गयी है। इनकी चार रचनाएँ उपलब्ध है १ हरिवश पुराण जेरहट नगर के नेनिमाथ चैत्यालय मे सवत् १५५२ माघ कृष्ण पचमी सोमवार के दिन हस्त नक्षत्र के समय पूर्ण किया, २. धर्म-परीक्षा इस ग्रथ को भी सवत् १५५२ मे बनाया। क्योकि इसके रचे जाने का उल्लेख अपने दूसरे ग्रथ परमेष्ठि प्रकाशसार मे किया है, ३ परमेष्ठिप्रकाशसार इसकी रचना वि स १५५३ की श्रावक गुरुपचमी के दिन माडवगढ के दुर्ग और जोरहट नगर के नेमिश्नर जिनालय मे हुई, ४ योगसार · यह ग्रथ सवत् १५५२ मार्गसर महीने के शुक्ल पक्ष मे रचा गया। इसमे गृहस्थोपयोगी सैद्धान्तिक बातो पर प्रकाश डाला गया है। साथ मे कुछ चर्चा आदि का भी उल्लेख किया गया है।

१८. कवि धनपाल मूलत ब्राह्मण थे। लघु भ्राता से जैनधर्म मे दीक्षित हुए। पिता का नाम सर्वदेव था। वाक्पतिराज मुञ्ज की विद्वत्सभा के रत्न थे। मुञ्ज द्वारा इन्हे 'सरस्वती' की उपाधि दी गयी थी। सस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओ पर इनका समान अधिकार था। मुज के सभासद होने से इनका समय ११ वी सदी मे निश्चित है। इन्होने अनेक ग्रथ लिखे, जो इस प्रकार हैं

१ पाइअलच्छी नाममाला–प्राकृतकोश, २ तिलकमजरी . सस्कृत गद्यकाव्य, ३ अपने छोटे भाई शोभन मुनिकृत स्तोत्र, ग्रथ पर संस्कृत टीका, ४ ऋषभ पंचाशिका-प्राकृत, ५ महावीर-स्तुति, ६. सत्यपुरीय, ७. महावीर-उत्साह-अप्रभ्रश और ८ वीरथुई।

१९. **मेरुतुंगाचार्य** : इन्होंने अपना प्रसिद्ध ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण ग्रन्थ प्रबन्ध-चिन्तामणि वि. सं. १९३१ में लिखा। इसमें पाँच सर्ग हैं। इसके अतिरिक्त विचारश्रेणी, स्थविरावली और महापुरुष चरित या उपदेशशती जिसमे ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान तीर्थंकरो के विषय मे जानकारी है, की रचना की।

२०. **तारणस्वामी** : तारण पंथ के प्रवर्तक आचार्य थे। इनका जन्म पुहुपावती नगरी में सन् १४४८ में हुआ था। पिता का नाम गढ़ा साव था। वे दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी के दरबार में किसी पद पर कार्य कर रहे थे। आपकी शिक्षा श्री श्रुतसागर मुनि के पास हुई। आपने कुल १४ ग्रंथो की रचना की, जो इस प्रकार हैं : १ श्रावकाचार, २. मालाजी, ३ पडित पूजा, ४. कलम बत्तीसी, ५ न्याय समुच्चयसार, ६ उपदेशशुद्धचार, ७. त्रियंगीसार, ८ चौबीस ठाना, ९ नमल पाहु, १०. मुन्न स्वभाव, ११ सिद्ध स्वभाव, १२ रवात का विशेष, १३ छद्मस्थ वाणी और १४ नाममाला।

२१. **मंत्रिमण्डन** : मंत्रीमण्डन ब्राह्मण का प्रपौत्र और बाहड़ का पुत्र था। यह चहुँमुखी प्रतिभावान था। मालवा के सुलतान होशग गौरी का प्रधानमंत्री भी था। इसके द्वारा लिखे गये ग्रंथो का विवरण इस प्रकार है. १ काव्य मण्डन. इसमे पाडवो की कला का वर्णन है, २ शृगार मण्डन यह शृगार रस का ग्रथ है, इसमे १०८ श्लोक हैं, ३ सारस्वत मण्डन यह सारस्वत व्याकरण पर लिखा गया ग्रथ है, इसमे ३५०० श्लोक है; ४ कादम्बरी मण्डन यह कादम्बरी का सक्षिप्तीकरण है, जो सुलतान को सुनाया गया था। इस ग्रथ की रचना स १५०४ मे हुई थी, ५ चम्पूमण्डन यह ग्रथ पाडव और द्रोपदी के कथानक पर आधारित जैन सस्करण है, रचना-तिथि स १५०४ है, ६ चन्द्रविजय प्रबन्ध : इस ग्रथ की रचना-तिथि स १५०४ है। इसमे चन्द्रमा की कलाएं, सूर्य के साथ युद्ध और चन्द्रमा की विजय आदि का वर्णन है, ७ अलकारमण्डन. यह साहित्य-शास्त्र का पाच परिच्छेद मे लिखित ग्रथ है। काव्य के लक्षण, भेद और रीति, काव्य के दोष और गुण, रस और अलकार आदि का इसमे वर्णन है। इसकी रचना-तिथि भी संवत् १५०४ है; ८. उपसर्गमण्डन. यह व्याकरण रचना पर लिखित ग्रथ है, ९. सगीतमण्डन सगीत से सम्बन्धित ग्रथ है, १०. कविकल्पद्रुमस्कन्ध. इस ग्रथ का उल्लेख मण्डन के नाम से लिखे ग्रथ के रूप मे पाया जाता है।

२२. **धनदराज** : यह मण्डन का चचेरा भाई था। इसने शलकत्रय (नीति, शृगार और वैराग्य) की रचना की। नीतिशतक की प्रशस्ति से विदित होता है कि ये ग्रंथ उसने मंडपदुर्ग में स १४९० मे लिखे।

अति विस्तार मे न जाते हुए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मालवा में जैन सारस्वतों की कमी नहीं रही है। यदि अनुसधान किया जाये तो जैन सारस्वतो और उनके ग्रथों पर एक अच्छी सदर्भ पुस्तक लिखी जा सकती है। □□

इस अंक के लेखक

वासुदेव अनन्त मागळे मुनिश्री विद्यानन्दजी के शिक्षा-गुरु, श्री शान्तिसागर, छात्रावास शेडवाल, जि बेलगाव (कर्नाटक)।

वीरेन्द्रकुमार जैन कवि, कथाकार, सपादक, गोविन्द निवास, सरोजिनी रोड, विले पारले (पश्चिम), बम्बई-५६।

उमेश जोशी कवि, पत्रकार, साहित्य-सगम फीरोजाबाद के सस्थापक एव अध्यक्ष।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' सस्मरणकार, 'नया जीवन' (मासिक) के सपादक, विकास लिमिटेड रेलवे रोड, सहारनपुर (उ प्र)।

नरेन्द्र प्रकाश जैन वक्ता, आचार्य पी डी जैन इण्टर कॉलिज, सपादक, 'पद्मावती सन्देश' (मासिक), १०८ नई बस्ती, फीरोजाबाद (आगरा), उ प्र

डा. दरबारीलाल कोठिया जैन तत्वज्ञ, रीडर दर्शनशास्त्र, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, अध्यक्ष, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्, चमेली कुटीर, १/१२८, डुमराव कॉलोनी, अस्सी, वाराणसी-५ (उ प्र)।

मिश्रीलाल जैन कवि, कहानीकार, एडवोकेट; पृथ्वीराजमार्ग, गुना (म प्र)।

श्रीमती रमा जैन अध्यक्षा, भारतीय ज्ञानपीठ, ६, सरदार वल्लभभाई पटेल मार्ग, नई दिल्ली-२१।

कल्याणकुमार जैन 'शशि' आशुकवि, वैद्य, जैन फार्मेसी, रामपुर (उ प्र)।

डा. अम्बाप्रसाद 'सुमन' समीक्षक, भाषाविद्, डी. लिट्; अध्यक्ष हिन्दी विभाग, अलीगढ विश्वविद्यालय, अलीगढ, ८/७, हरिनगर, अलीगढ (उ प्र.)।

देवेन्द्रकुमार शास्त्री अपभ्रश के विद्वान्, लेखक, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय, नीमच, शकर मिल के सामने, नई बस्ती, नीमच (म प्र)।

गजानन डेरोलिया पत्रकार, श्रीमहावीरजी, जि सवाई माधोपुर (राजस्थान)।

डा. निजाम उद्दीन : लेखक, समीक्षक; अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इस्लामिया कॉलिज, श्रीनगर (कश्मीर)।

नाथूलाल शास्त्री : प्राचार्य सर हुकुमचन्द दि जैन संस्कृत महाविद्यालय, इन्दौर; संपादक 'सन्मति-वाणी', मोतीमहल, सर हुकुमचन्द मार्ग, इन्दौर-२ (म प्र)।

रघुवीरशरण 'मित्र' · कवि, पत्रकार; २०४ ए, कला भवन, पुलिस स्ट्रीट, सदर मेरठ (उ. प्र)।

डा. ज्योतीन्द्र जैन नृतत्वशास्त्री (एन्थ्रापोलॉजिस्ट), 'भारत में जैन कला और सस्कृति' पर प्रलेखन-कार्य मे संलग्न; वर्तमान पता : वीरेन्द्रकुमार जैन, गोविन्द निवास, सरोजिनी रोड, विले पारले (पश्चिम), बम्बई-५६।

स्व. डा. नेमिचन्द्र जैन शास्त्री : ज्योतिष एव जैनवाङमय के विद्वान्, भू. पू. अध्यक्ष सस्कृत तथा प्राकृत विभाग, एच डी जैन महाविद्यालय, आरा (बिहार), 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा' नामक मरणोपरान्त प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ के रचयिता।

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल लेखक, निदेशक जैन साहित्य शोध संस्थान, महावीर भवन, सवाई मानसिह हाईवे, जयपुर-३।

माणकचन्द पाड्ग्या . समाजसेवी; कोषाध्यक्ष, श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर, मंत्री, श्री जैन सहकारी पेढी मर्यादित, इन्दौर, १०/२, मल्हारगज, इन्दौर-२।

जयचन्द जैन कवि, ४२, शान्तिनगर, रेल्वे रोड, मेरठ।

बाबूलाल पाटोदी . राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, वक्ता, मत्री, श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर, ७०।३, मल्हारगज, इन्दौर-२।

पद्मचन्द्र जैन शास्त्री . प्राकृत के विद्वान्, प्राचार्य प्राकृत विद्यापीठ, पचकूला (हरियाणा)।

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री : लेखक, संपादक 'जैनबोधक' (मराठी), 'जैनगजट' (हिन्दी), कल्याण भवन, पूर्व मगलवार (पेठ) सोलापुर-२ (महाराष्ट्र)।

नईम : नवगीतकार; सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय, देवास; राधागज, देवास (म. प्र.)।

भानीराम 'अग्निमुख' लेखक; सहायक सपादक 'अणुव्रत', अणुव्रत कार्यालय, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नईदिल्ली-१ ।

माणकचन्द कटारिया · लेखक; सपादक 'कस्तूरबा-दर्शन' ; कस्तूरबाग्राम, जि इन्दौर (म प्र) ।

मुनि रूपचन्द जैनदर्शन के चिन्तक, द्वारा भानीराम 'अग्निमुख', दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नईदिल्ली-१ ।

डा. नरेन्द्र भानावत लेखक, प्राध्यापक जयपुर विश्वविद्यालय, सपादक 'जिनवाणी', सी-२३५-ए, तिलकनगर, जयपुर (राजस्थान) ।

डा. महावीरसरन जैन प्राध्यापक एव अध्यक्ष हिन्दी और भाषा-विज्ञान विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर ।

धन्नालाल शाह पत्रकार, हाथीखाना, भोपाल ।

सरोजकुमार कवि, वक्ता, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, गुजराती महाविद्यालय, इन्दौर, ६८, वीर सावरकर मार्केट, इन्दौर ।

भवानीप्रसाद मिश्र कवि, सपादक, सर्वोदय (साप्ताहिक), गाधीमार्ग (त्रैमासिक), १९, राजघाट कॉलोनी, नई दिल्ली-१ ।

दिनकर सोनवलकर कवि, सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय, जावरा, जी-३, स्टाफ क्वार्टर्स, जावरा (रतलाम) ।

जयकुमार 'जलज' कवि, लेखक, भाषाविद्, प्राध्यापक एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय, रतलाम, सहयोग भवन, पावर हाउस रोड, रतलाम (म प्र)।

डा प्रेमसागर जैन लेखक, समीक्षक, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दिगम्बर जैन कॉलेज, बडौत (उ प्र) ।

डा. प्रेमसुमन जैन लेखक, प्रवक्ता, प्राकृत-सस्कृत विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, ३४ अशोक नगर, उदयपुर (राजस्थान) ।

नेमीचन्द पटोरिया लेखक, ७७ पथरिया घाट स्ट्रीट, कलकत्ता-६ ।

बालचन्द्र जैन पुरातत्त्ववेत्ता, उपसचालक, पुरातत्त्व एव सग्रहालय पूर्वी क्षेत्र, मध्यप्रदेश, रानी दुर्गावती सग्रहालय, जबलपुर (म प्र) ।

डा. तेजसिंह गौड़ : लेखक, छोटा बाजार, उन्हेल (उज्जैन) ।

☐

विज्ञापनदाता

१ ध्रागध्रा केमिकल वर्क्स लि , बम्बई
२. मध्यप्रदेश लघु उद्योग निगम, भोपाल
३. दि नन्दलाल भडारी मिल्स, इन्दौर
४ पी पी प्रोडक्ट्स, अलीगढ (उ. प्र)
५ माधोलाल सुवालाल जैन, मेरठ
६ गुलाबचन्द बसन्तकुमार, भोपाल
७. श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर
८ दि हीरा मिल्स लिमिटेड, उज्जैन
९ श्री जैन सहकारी पेढी मर्यादित, इन्दौर
१० टी मोनी गारमेन्टस, इन्दौर
११ लोक स्वास्थ्य सचालनालय (परिवार नियोजन) मध्यप्रदेश, भोपाल
१२ मध्यप्रदेश स्टील इण्डस्ट्री, इन्दौर
१३ रामगोपाल चिरजीलाल, इन्दौर
१४ उद्योग सचालनालय, मध्यप्रदेश, भोपाल
१५. भेरूलाल कपूरचन्द एण्ड कम्पनी, इन्दौर
१६. दी बिनोद मिल्स कम्पनी लिमिटेड, उज्जैन
१७. दी इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लि , इन्दौर
१८. दी यूनाइटेड ट्रान्सपोर्ट केरियर, इन्दौर
१९. दी बैंक ऑफ राजस्थान लि , जयपुर
२०. रीगल इडस्ट्रीज, इन्दौर
२१. दीपक इजीनियरिंग कारपोरेशन, जयपुर
२२. सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय, मध्यप्रदेश, भोपाल

२३. किशोर कम्पनी, इन्दौर

२४ पाटोदी एड कम्पनी, इन्दौर
नरेन्द्र पाटोदी एड कम्पनी, इन्दौर
नविता ट्रेडिंग कम्पनी, इन्दौर

२५. होटल शीशमहल, इन्दौर

२६. मित्तल उद्योग, इन्दौर

२७ दि स्वदेशी कॉटन एड फ्लोअर मिल्स लिमिटेड, इन्दौर

२८ पर्यटन सचालनालय, मध्यप्रदेश, भोपाल

२९. कल्याणमल मिल्स , इन्दौर

३० हरकचन्द फ्लोअर मिल्स, सीतापुर (उ प्र)

३१ अहिमा मन्दिर, दिल्ली

३२ होटल शाकाहार, दिल्ली

३३ भारतीय ज्ञानपीठ, नईदिल्ली

३४ श्रमण जैन भजन प्रचारक सघ, दिल्ली

३५ अशोक मार्केटिंग लिमिटेड, दिल्ली

३६ 'इलेक्ट्रा' परतापुर (मेरठ)

३७ न्यू मर्चेन्ट सिल्क मिल्स, इन्दौर

३८ भारत कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज लिमिटेड, बिरलाग्राम, नागदा (म प्र)

३९ फूलचन्द सेठी, दीमापुर (नागालैण्ड)

४० नन्दलाल मागीलाल जैन, दीमापुर (नागालैण्ड)

४१ चुन्नीलाल किशनलाल सेठी, दीमापुर (नागालैण्ड)

४२ मदनलाल सेठी, दीमापुर (नागालैण्ड)

४३ रायबहादुर चुन्नीलाल एड कम्पनी, दीमापुर (नागालैण्ड)

४४ दीमापुर प्रोविजन स्टोर्स, दीमापुर (नागालैण्ड)

४५. हीरालाल कन्हैयालाल सेठी एण्ड सन्स, दीमापुर (नागालैण्ड)

४६. मोतीलाल डूगरमल, दीमापुर (नागालैण्ड)

४७. राधाकिशन बालकिशन मुछाल, इन्दौर
कमल कम्पनी, इन्दौर
टेक्स्टाइल ट्रेडर्स, इन्दौर
राधाकिशन बालकिशन मुछाल एण्ड कम्पनी, देहली

४८. रामदास रामलाल, इन्दौर

४९. दीनानाथ एण्ड कम्पनी, इन्दौर
नरेन्द्रकुमार प्रकाशचन्द्र एण्ड कम्पनी, इन्दौर
सरस्वती ट्रेडिंग कम्पनी, इन्दौर

५०. रतनचद कोठारी, इन्दौर
कोठारी एण्ड कम्पनी, इन्दौर
सुरेश एण्ड कम्पनी, इन्दौर

५१. मोहनलाल रामचन्द्र आगार, इन्दौर
कैलाशचन्द्र मोहनलाल आगार, इन्दौर

५२. श्रीमत दानवीर सिताबराय लक्ष्मीचन्द्र जैन ट्रस्ट, विदिशा (म. प्र.)

५३ लाला अजितप्रशाद जैन जौहरी, देहली

५४ साड कम्पनी, इन्दौर
पेरामाउन्ट ट्रेडर्स, इन्दौर
जेठमल बख्तावरमल एण्ड कम्पनी, इन्दौर
ब्लेंकेट ट्रेडिंग कम्पनी, इन्दौर

५५. राधाकिशन काशीराम, इन्दौर

५६. रतनलाल नानूराम, इन्दौर
सामरिया कम्पनी, इन्दौर
प्रेम टेक्स्टाइल, इन्दौर

५७. नवीनचंद एण्ड सन्स, इन्दौर
अनिल टेक्स्टाइल एजेन्सी, इन्दौर

५८. हिन्दुस्तान ऑक्सीजन एण्ड एसेटीलेस कम्पनी, चिकम्बरपुर (गजियाबाद)

५९. सुरेशकुमार चांदमल, इन्दौर

६०. नवयुग सीमेंट प्रॉडक्ट्स, इन्दौर

६१. असवनि एण्टरप्राइजेज, मेरठ
पैंव (इण्डिया), परतापुर (मेरठ)

६२. सेठ हीरालाल घासीलाल काला, इन्दौर

६३. शाह फतेचन्द मूलचन्द पाटनी, इन्दौर
फेशन फेब्रिक बिक्री लि., इन्दौर
सुमतिप्रकाश सुशीलकुमार, इन्दौर

६४. रमेशचन्द्र मनोहरलाल बाहेती, इन्दौर
घनश्याम एण्ड कम्पनी, इन्दौर

६५ राधाकिशन झँवर, इन्दौर

६६. सिधुराम लछमनदास, इन्दौर
खेमचन्द गणेशदास, इन्दौर
गणेशदास राजकुमार, इन्दौर
गणेशदास सिधुराम, इन्दौर

६७ लखमीचन्द मुछाल, इन्दौर

६८ गम्भीरमल गुलाबचन्द, इन्दौर

६९ पवनकुमार एण्ड कम्पनी, दिल्ली

७० धूमीमल विशालचन्द, दिल्ली

७१ श्री दिगम्बर जैन वीर पुस्तकालय, श्रीमहावीरजी (राजस्थान)

७२ गिरधर ग्लास वर्क्स, फीरोजाबाद

७३ हरकचन्द रतनचन्द सेखावत, इन्दौर

७४ भगवानदास शोभालाल जैन, सागर

७५ नेतराम एण्ड सन्स, आगरा
हीरालाल एण्ड कम्पनी, आगरा

७६ भोजराज खेमचन्द भाटिया, इन्दौर

७७ गोधाराम छबीलदास, इन्दौर

७८ विनयकुमार एण्ड कम्पनी, इन्दौर

७९ नवलमल पुनमचन्द, इन्दौर

८० दि राजकुमार मिल्स लि , इन्दौर

८१. श्री महावीर इजीनियरिंग वर्क्स, बड़ौत

८२ महेन्द्रकुमार एण्ड सन्स, मेरठ

८३. दि हुकमचन्द मिल्स लि , इन्दौर

८४ गोयल एग्रीकल्चरल इण्डस्ट्री, बड़ौत

८५ बडौत इण्डस्ट्रीज, बडौत

८६ एस कुमार एण्टरप्राइजेज (सिनफेक्स) प्रा.लि , बम्बई

८७ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी (राजस्थान)

□□

एक पंख से पक्षी उड़ नहीं सकता और चारित्र बिना, ज्ञान और दर्शन का रथ घूम नहीं सकता।

—मुनि विद्यानन्द

'एक घूट पानी के लिए तरसकर मरने वाले के शव पर सहस्र कलशों का पानी उलीचना जैसे व्यर्थ है, वैसे समय चले जाने पर किया जाने वाला पुरुषार्थ भी फलशून्य हो जाता है।

—मुनि विद्यानन्द

जैसे सहस्र-छिद्र चालनी से पानी निकल जाता है, वैसे ही इन्द्रिय-वशवर्ती का आयुष्य समाप्त हो जाता है।

—मुनि विद्यानन्द

मध्यप्रदेश की यात्रा कीजिये

"तीर्थ-यात्राओं की पावन भूमि"

सांची : जहां भगवान् बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र और महामोग्ला-यन के अवशेष स्थित हैं।

उज्जैन : भगवान् महाकालेश्वर की नगरी, पृथ्वी के केन्द्र 'बारह ज्योति-र्लिगों में से एक।

अमरकंटक : पतित-पावनी नर्मदा का उद्‌गम स्थान।

चित्रकूट : जहा भगवान् राम ने बनवास-अवधि का कुछ काल व्यतीत किया और गोस्वामी तुलसीदास को दर्शन दिये।

ओंकारमान्धाता : पुण्यतोया नर्मदा के बीच ओम गिरिक पर अवस्थित बारह ज्योतिर्लिगों मे से एक।

महेश्वर : आद्य शकराचार्य की चरण-धूलि से पुनीता, महिष्मती की पुरातन नगरी।

मध्यप्रदेश मे तीर्थ-यात्रा एव दृश्यावलोकन के और भी
अनेक दर्शनीय स्थल

(पर्यटन सचालनालय, मध्यप्रदेश द्वारा प्रसारित)

सू प्र स ७१९।७४-इ

समय . चिन्तामणि, कामधेनु

समय चिन्तामणि है, कामधेनु है, वांछित धन है। उससे कुछ भी मांगो पा जाओगे। समय श्रमाग्नि में तपकर सुवर्ण बन जाता है, अवसर की सीपी से गर्भ धारण कर मुक्ताफल हो जाता है, दुरधिगम समुद्र को मथकर रत्नराशि निकाल लाता है। ससार मे जो कुछ किया गया है तथा किया जा सकता है, वह समय द्वारा ही सम्भव है।

—मुनि विद्यानन्द

जहाँ महावीर ने जन्म लिया वहाँ वैशाली नहीं है, वह विशाल वैशाली हमारे हृदय में है। पावापुरी में सरोवर हमारा निर्मल मन है। सच्चा निर्वाणोत्सव हमें यहीं मनाना है, और महावीर के कामों को, उपदेशों को अपने तथा औरों के जीवन मे उतारना है।

—मुनि विद्यानन्द

स्वतंत्रता का स्थान

जैसे सूर्य के पीछे प्रकाश आता है, बादलों के साथ-साथ विद्युत् स्फुरण होता है और जल के साथ शीतलता चली आती है, वैसे ही स्वाधीनता के साथ सभ्यता, संस्कृति, आत्मगौरव, शक्ति और सर्वगुण-सम्पन्नता के समूह चले आते हैं। शरीर में जो स्थान प्राणों का है, वही संसार में स्वतंत्रता का है।

—मुनि विद्यानन्द

ज्ञानवान् सर्वज्ञ हो जाता है। जिस विषय का स्पर्श करता है, वह उसे अपनी गाथा स्वयं गाकर सुना देता है। दर्पण में जैसे बिम्ब दिखता है वैसे ही उसकी आत्मा मे सब कुछ झलकने लगता है।

—मुनि विद्यानन्द

ज्ञान : प्रतिक्षण नूतन

ज्ञान की पिपासा कभी शान्त नहीं होती । ज्ञान प्रतिक्षण नूतन है, वह कभी जीर्ण या पुराना नहीं पड़ता । स्वाध्याय, चिन्तन, तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि उपायों से ज्ञान-निधि को प्राप्त किया जाता है ।

—मुनि विद्यानन्द

अहिंसा का उदय

'कृषि और ऋषि' तथा 'जिओ और जीने दो' संस्कृति का यशोगान कृतयुग से लेकर आज के विज्ञान-युग तक होने लगा है। संस्कृति के बिना मनुष्य 'मत्स्य' न्याय से ऊपर कहाँ उठ पाता है ? अहिंसा का उदय श्रमण संस्कृति की भावधारा से हुआ है। ज्ञान मार्ग पर प्रेरणा के पाठ संस्कृति द्वारा लिखे हुए हैं। चिन्तन और ध्यान की गहराइयाँ संस्कृति के स्व-समय में ही पा सकते हैं। विश्व की संपूर्ण संपदाओं के प्रति अमोह, अनासक्ति, संस्कृति से प्राप्त सम्यग्दृष्टि का परिणाम है।

—मुनि विद्यानन्द

राष्ट्र का मूल धन : श्रेष्ठ मानव

राष्ट्र को कल-कारखानों से, कोलतार-लिपी हुई सड़कों से, गगनचुम्बी भवनों से, निर्माण-पथ पर अग्रसर नहीं माना जा सकता। उसका मूलधन तो श्रेष्ठ मानव है। वह मानव जो सत्य, अहिंसा, अद्रोह, लाभ-हानि में समदर्शी है, जो विश्व के सुख-दुःख में सहभागी है। सबका प्यारा, सबसे न्यारा है। स्वरूपाचरणनिष्ठ, जिससे संसार सुखमय हो, परलोक सुगम हो, मुक्ति-पथ प्रशस्त हो।

—मुनि विद्यानन्द

सात्त्विकता : जीवन का समतल

जो महान् होना चाहता है, दीर्घ जीवन की कामना करता है, कुछ कर दिखाने का संकल्प रखता है, उसे सात्त्विक होना होगा। सात्त्विकता जीवन का वह समतल है, जिस पर प्रगति के पदचिह्न आसानी से अंकित किये जा सकते हैं।

—मुनि विद्यानन्द

स्वयं चलकर बतायें

हम भगवान राम के अनुयायी हैं, इक्ष्वाकुवंशी है, मनु के वंशधर हैं। इन्हीं वंशों के अनुरूप हम चलते आये हैं, चल रहे हैं, चलते जाएँगे, और आगे चलने के लिए देश को, दुनिया को सन्देश देते रहेंगे, स्वयं चलकर बतायेंगे।

—मुनि विद्यानन्द

समय के साथ खेलनेवालों से समय भी खेलता है, किन्तु समय की धूप (आतप) के साथ लगी हुई छाया को देखकर जो प्रकाश का समय रहते उपयोग कर लेते हैं, उन्हें अंधकार घिरने पर अकृतित्व, अभाव और अपनी अस्तित्व-समाप्ति का भय नहीं रहता ।

—मुनि विद्यानन्द

चरित्र खेत, सद्धर्म बीज

भारत धर्मभूमि है। अनादि काल से यहाँ के धर्म-कृषक अपने चरित्र के खेत मे धर्म के बीज बोते आये हैं। भारतीयों के चतुर्विध पुरुषार्थ मे प्रथम पुरुषार्थ धर्म है। यहाँ धर्म को उत्कृष्ट मगल, पवित्र आचाराग, न्याय का आधार, जीवन की गन्तव्य दिशा, आदरणीयता का प्रमुख अग, चिन्तन का सर्वोच्च आधार, वरेण्य, स्वस्तिप्रद, कल्याणकृत तथा परम सम्मान्य माना है।

—मुनि विद्यानन्द

विश्वधर्म-प्रवर्तक महान् आध्यात्मिक संत

मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज

के पावन चरणों में

शत-शत नमन

लखमीचन्द मुछाल

म. तु. क्लॉथ मार्केट, इन्दौर सिटी (म. प्र.)

तार 'क्लाथ' फोन ३१४०५

अभीक्षण ज्ञानोपयोग

स्वाध्याय ज्ञानोपयोग का व्यवहार-मार्ग है और मैं शुद्ध, मुक्त परमात्मा हूँ। आत्मस्वरूप हूँ, वह ज्ञानोपयोग का निश्चय परिणाम है। जैसे हम ग्रन्थ के अक्षरों को अर्थरूप मे परिणत कर उपयोगी बना लेते हैं वैसे ज्ञान से विश्व के समस्त पदार्थ अपने वास्तविक स्वभाव मे प्रतीत होने लगते है। अभीक्षण ज्ञानोपयोग अज्ञान के अन्धकार मे नहीं डूबता क्योंकि ज्ञानोपयोगरूप सूर्य को जाग्रत रखता है।

—मुनि विद्यानन्द

जो चिन्तन के समुद्र पी जाते हैं, स्वाध्याय की सुधा का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं, संयम पर सुमेरु के समान अचल-स्थिर रहते हैं, वे ज्ञान-प्रसाद के अधिकारी होते हैं।

—मुनि विद्यानन्द

'तप मनुष्य को सभी क्षेत्रों मे समुन्नति देता है और उसे मनुज बनाता है, परन्तु तप से रहित को पतन का मार्ग ही देखना पडता है। 'तप' की विलोम स्थिति 'पत' है जिसका अर्थ है पतन। अपने परिश्रम का परिणाम गुजा और मणि दोनों मे यदि मिल सकता है, तो कौन बुद्धिमान मणि छोडकर गुजा ग्रहण करना चाहेगा ?'

—मुनि विद्यानन्द

जो समय का मूल्य रखता है, समय उसका सम्मान करता है और जो समय खो देता है वह समय मे खो जाता है।

—मुनि विद्यानन्द

हार्दिक शुभकामनाएँ

दि राजकुमार मिल्स लि., इन्दौर-२

(रिटेल शॉप मिल-प्रागण-प्रतिदिन ११ से ४)

अहिंसा, माता की गोद के समान समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाली है।

—मुनि विद्यानन्द

मन, वचन और काय-संयम से ज्ञान का अकम्प दीपक जलता है
इन तीनों को त्रिवेणी-संगम नहीं दे सकता, उसके चचल मन की
ज्ञान-दीपक को बुझाने का प्रयत्न करती रहती है। सद-असद का
ज्ञान द्वारा ही सभव है।

—मुनि विद्या